प्रकाशक :
मंत्री-श्री जवाहर साहित्य समिति
भीनासर (बीकानेर, राजस्थान)

द्वितीय सस्करण
अगस्त १९७०

मूल्य : दो रुपया पचहत्तर पैसा

मुद्रक :
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा सचालित)
रांगडी मोहल्ला, बीकानेर
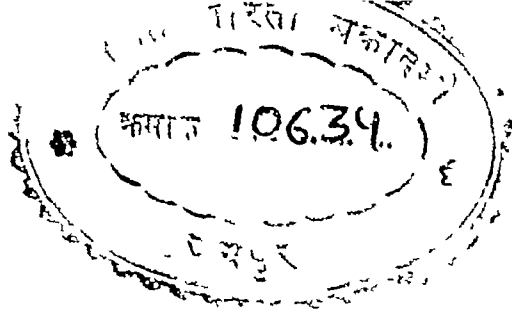
भूमिका

श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के प्रवचनो से सकलित किरण 'बीकानेर के व्याख्यान' का यह द्वितीय सस्करण है। आत्मविकास की पूर्णता और लोक जीवन की सफलता के लिये जिन विचारो, मान्यताओ और धारणाओ की आवश्यकता है, वे सब प्रस्तुत पुस्तक मे यत्र-तत्र-सर्वत्र उपलब्ध हैं। हाँ, इसकी उपलब्धि के लिये पात्रता एव योग्यता की आवश्यकता है। जिसकी जितनी योग्यता और पात्रता है, वह उतना इसमे से प्राप्त कर सकता है।

स्वपर-कल्याण श्रमण-सस्कृति की महान परपरा है और अपने उद्देश्य का अक्षुण्ण एव अबाध रुप से निर्वाह करती आ रही है। अवांछनीय तत्व एव विकट परिस्थितिया इसके उपासको को अपने मार्ग से च्युत नही कर सकी हैं। इतिहास साक्षी है कि इसके उपासको ने समाजविकास मे और बुराईयो के प्रतीकार मे अपना जीवन समर्पित किया है। प्राकृतिक एव भौगोलिक बाधायें भी इनके मार्ग को अवरुद्ध नही कर सकी हैं। इनके प्रयासो के सकेत यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। फिर भी उन्होंने प्रतिदान मे कोई आकाक्षा नही सजोयी। वे जहा भी गये, मात्र इस भावना से कि दिग्भ्रांत मानव सत्पथ का अनुसरण करें और सत्य, अहिंसा, विश्वबधुत्व की भावना का प्रसार हो।

आज भी श्रमणसस्कृति की यह परपरा जीवित है। बिना

किसी ऐहिक आकांक्षा और लालसा के शत-शत निर्ग्रन्थ सत-सतिया पदविहार करते हुए देश के इस छोर से उस छोर तक जन-जीवन के उत्थान, विकास मे सहयोग देने के लिये सलग्न है। अपनी निर्भीकता, सहिणुता के द्वारा जनसाधारण में आत्मविश्वास की अखड ज्योति जगाने मे क्रियाशील हैं।

श्रीमज्जवाहराचार्य इसी श्रमणसस्कृति के एक ज्योतिर्धर जवाहर हैं, प्रतिनिधि हैं। प्रस्तुत मे इन्ही की प्रवचन-वाणी का एक अंश सकलित किया गया है। ये प्रवचन, मात्र प्रवचन नही हैं, किन्तु मानव समुदाय को कर्तव्य-बोध करने वाले सकेत हैं। इनमे साहित्यिक शब्द-चमत्कार या भावोच्छ्वास नही किन्तु अनासक्त आत्मनिरीक्षण के सूत्र सकलित है। जिससे समस्याओ और ग्रन्थियो को सुलझाने की साहजिक चेतना प्राप्त हो जाती है और कैसा भी विक्षिप्त मानस शाति की अनुभूति करता है।

राष्ट्र की समृद्धि का अर्थ धन-वैभव की वृद्धि और ऐहिक भोग साधने की पूर्ति नही है। किन्तु उसके निवासियो मे धार्मिकता और आत्मविश्वास का विकास और उसकी पूर्ति है।

आचार्य श्रीजी इसकी पूर्ति मे पूर्णरूपेण सफल हैं। उन्होने अपनी समग्र जीवनशक्ति सद्धर्म के प्रचार एव जनमानस के उद्धार के लिये समर्पित कर दी और उनके उद्बोधक प्रेरक सदेश से समाज व राष्ट्र को आशातीत लाभ पहुचा है। उन्होंने धार्मिकता की प्रतिष्ठा करने के साथ-साथ समाज-जीवन मे घुसी हुई कुरूढियो का उन्मूलन करके नवजागरण का सन्देश दिया। फलत समाज और धर्म-जागृति के द्वारा राष्ट्र की जागृति हुई।

आचार्यश्री के इस चिन्तन की धर्मप्रिय, गभीर विचार-

शील विद्वानो और जनसाधारण ने एक स्वर से प्रशसा की है। धर्मनिष्ठ जैन समाज के लिये तो यह स्वाध्याय की उत्तम सामग्री सिद्ध हुआ है। इतना होने पर भी इस बात का सकेत कर देना चाहेगे कि जवाहर साहित्य का जितना विक्रय होना चाहिये, वह नही हो रहा है। इस ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। आशा है कि साहित्य प्रेमी पाठक ध्यान देकर हमारे उत्साह की वृद्धि करेंगे।

आज देश मे उच्छृखलता, उद्दाम वृत्तिया बढती जा रही हैं। राष्ट्र-जीवन का प्रत्येक अग रोगाक्रात है। उसकी धमनियो मे नई स्फूर्ति के सचार की आवश्यकता है। यदि विकृतियो के विनाश और आत्मीयता का प्रसार नही हुआ तो गौरवमयी सस्कृति और हजारो वर्षों से प्रवाहित सभ्यता का स्रोत सदैव के लिये सूख जायेगा। अत ऐसे समय मे विज्ञ विचारको और मनीषियो का कर्तव्य हो जाता है कि जनमानस की प्रतिक्रिया को निर्माणकारी बनाने के लिये जुट जायें। युवापीढी के उत्साह को क्रियाशील बनाने के लिये यह जरुरी है कि उसकी मानसिक-धारा मे परिवर्तन करने के लिये सत्साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की वृत्ति को प्रोत्साहन दें। युवापीढी की बौद्धिक प्रतिभा विश्वस्त भूमिका के आश्रय-प्राप्ति के लिये उत्सुक है।

आशा है पाठक हमारे उक्त सकेतो पर गभीरता से विचार करेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम सस्करण देशनोक निवासी सेठ श्री पीरदानजी रावतमलजी गुलगुलिया की ओर से प्रकाशित हुआ था। उक्त सस्करण के अप्राप्य हो जाने से पुन यह द्वितीय सस्करण निर्धारित नीति के अनुसार—पुस्तक विक्रय से प्राप्त राशि से पुन नवीन सस्करण प्रकाशित करना—श्री जवाहर साहित्य समिति की ओर से

द्वितीय सस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है पाठकगण इसमे प्रदर्शित विचारो और आदर्शो पर चलकर अपना जीवन सफल बनायेंगे।

पुस्तक की मुद्रण व्यवस्था करने मे श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ और उसके द्वारा सचालित जैन आर्ट प्रेस के कार्यकर्ताओ का सहयोग प्राप्त हुआ है। एतदर्थ उनका आभार मानते हुए धन्यवाद देते हैं। भविष्य मे भी इसी प्रकार से सहयोग प्राप्ति की आकाक्षा है, जिससे समिति द्वारा साहित्य प्रकाशन के प्रयास होते रहे।

भीनासर   **चंपालाल बांठिया**

दि० १ अगस्त १६७०   मत्री—श्री जवाहर साहित्य समिति

बीकानेर के व्याख्यान

विषय-सूची
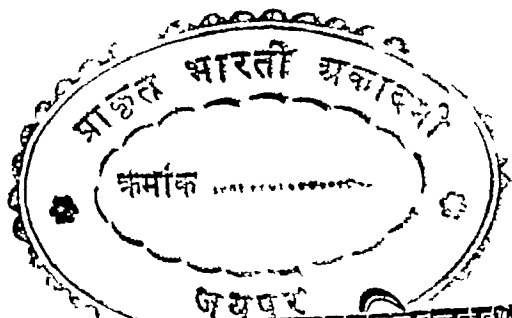
१—भगवान् शान्तिनाथ

विश्व के असख्य प्राणी निरन्तर प्रवृत्ति में रत रहते हैं। अगर सामान्य रूप से उनकी प्रवृत्तियो के मूल उद्देश्य को खोजा जाय तो इसी परिणाम पर पहुंचना होगा कि सभी प्राणी शांति प्राप्त करने के एक मात्र ध्येय की पूर्ति करने के लिए उद्योग में लगे हैं। जिसके पास धन नही है या कम है वह धन प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक करता है। जिसे मकान की आवश्यकता है, वह मकान खडा करने के लिए नाना प्रयत्न करता है। जिसके हृदय मे सत्ता की भूख जागी है वह सत्ता हथियाने की चेष्टा कर रहा है। इस प्रकार प्रणियो के उद्योग चाहे भिन्न-भिन्न हो पर उन सबका एक मात्र उद्देश्य शाति प्राप्त करना ही है। यह बात दूसरी है कि अधिकाश प्राणी वास्तविक ज्ञान न होने के कारण ऐसे प्रयत्न करते हैं कि उन्हे अपने प्रयत्नो के फलस्वरूप शाति के बदले उलटी अशान्ति ही प्राप्त होती है, लेकिन अशाति कोई चाहता नही। चाहते हैं सभी शाति।

शाति के लिए प्रयत्न करने पर भी अधिकाश प्राणियो को अशाति क्यो प्राप्त होती है, इसका कारण यही है कि उन्होने शाति के यथार्थ स्वरूप को नही समझा है। वास्तविक शान्ति क्या है ? कहाँ है ? उसे प्राप्त करने का

साधन क्या है ? इन बातो को ठीक-ठीक न जानने के कारण ही प्राय शाति के वदले अशाति पल्ले पडती है। अतएव यह आवश्यक है कि भगवान् शातिनाथ की शरण लेकर शाति का सच्चा स्वरूप समझ लिया जाय और फिर शाति प्राप्त करने के लिए उद्योग किया जाय ।

भगवान् शान्तिनाथ का स्वरूप समझ लेना ही शाति के स्वरूप को समझ लेना है । गणधरो ने भगवान् शाति-नाथ के स्वरूप को ऊचा वतलाया है । उस स्वरूप मे चित्त को एकाग्र करके लगा दिया जाय तो कभी अशाति न हो। मित्रो ! आओ, आज हम लोग मिल कर भगवान् के स्वरूप का विचार करे और सच्ची शाति प्राप्त करने का मार्ग खोजें ।

भगवान् शान्तिनाथ के सम्बन्ध मे शास्त्र का कथन है—

चइत्ता भारहं वास चक्कवट्टी महड्ढियो ।
सन्ती सन्ति करे लोए, पत्तोगइमणुत्तर ॥

यहाँ भगवान् के विषय मे कहा गया है— 'सती सतीकरे लोए ।' अर्थात् शान्तिनाथ भगवान् लोक में शाति करने वाले हैं । वाक्य बडा महत्त्वपूर्ण है । यह छोटा-सा वाक्य इतना पूर्ण है कि मानो सब ज्ञान इसी मे समाप्त हो जाता है । शान्ति क्या है और वह किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, इस विषय पर मैं कई बार कह चुका हू और आज फिर इसी विपय मे कह रहा हू, क्योकि शाँति प्राप्त करना ही जगत् के प्राणियो का एकमात्र ध्येय है ।

कई लोग विपमभाव— मे पक्षपात में शाति देखते हैं । लेकिन जहाँ विषमभाव है वहाँ वास्तविक शाँति नही

रह सकती। वास्तविक शांति तो समभाव के साथ ही रहती है।

बहुत-से लोग अपनी कुशल के आगे दूसरे की कुशल की कोई कीमत ही नही समझते। वे दूसरो की कुशल की उपेक्षा ही नही करते वरन् अपनी कुशल के लिए दूसरो को घोर अकुशल भी कर डालते हैं। उन्हे समझना चाहिए कि शाति प्राप्त करने का मार्ग यह नही है। यह तो शाति के घात करने का ही तरीका है। सच्ची शाति तो भगवान् शान्तिनाथ को पहिचानने से ही प्राप्त की जा सकती है। जिस शान्ति मे से अशान्ति का अकुर न फूटे जो सदा के लिए अशान्ति का अन्त कर दे वही सच्ची शान्ति है। सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए 'सर्वभूतहिते रत' अर्थात् प्राणीमात्र के कल्याण मे रत होना पडता है।

कुछ लोग दुर्गापाठ आदि करके, होम करके यहाँ तक कि जीवो का बलिदान तक करके शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं। दुखविपाक सूत्र देखने से पता चलता है कि कुछ लोग तो अपने लडको का होम करके भी शान्ति प्राप्त करना चाहते थे। कुछ लोग आज भी पशुबलि, यहाँ तक कि नरबलि मे शान्ति बतलाते हैं। इस प्रकार शान्ति के नाम पर न जाने कितनी उपाधियाँ खडी कर दी गई है। लेकिन गणधरो ने एक ही वाक्य मे वास्तविक शान्ति का सच्चा चित्र अकित कर दिया है--

सती सतिकरे लोए।

नरमेध करने वालो ने नरमेध मे ही शान्ति मान रक्खो है। लेकिन नरमेध से क्या कभी ससार मे शान्ति हो सकती है? मारने वाला और मरने वाला-दोनो ही

मनुष्य हैं । मारने वाला शक्ति चाहता है तो क्या मरने
वाले को शान्ति की अभिलाषा नही है ? फिर उमे अशाति
पहुचा कर शाति की आशा करना कितनी मूर्खतापूर्ण
बात है ।

नरमेध करने वाले से पूछा जाय कि तू ईश्वर के
नाम पर दूसरे मनुष्य का वध करता है तो क्या ईश्वर
तेरा ही है ? ईश्वर मरने वाला का नही है ? अगर मरने
वाले से पूछा जाय कि हम ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए
तेरा बलिदान करना चाहते है तो वह क्या उत्तर देगा ?
क्या वह बलि चढना पसद करेगा ? क्या वह स्वीकार
करेगा कि जो इस प्रकार की बलि लेकर प्रसन्न होता है
वह ईश्वर है ? और इस बलि का विधान जिसमे किया
गया है वह क्या शास्त्र है ? वह तो यही कहेगा कि ऐसी
बलि की आज्ञा देने वाला ईश्वर नही हो सकता, कोई
हिंसालोलुप अनार्य हो सकता है और ऐसा शास्त्र भी किसी
अनार्य का ही कहा हुआ है ।

किसी जमाने मे नरमेध भी किया जाता था और
पशुमेध तो माधारण बात हो गई थी । नरमेध मे मनुष्य
की और पशुमेध मे पशुओ की बलि दी जाती थी । नरमेध
की बात जाने दीजिए । वह तो घृणित है ही, पर पशुमेध
भी कम घृणित नही है । निर्दयता के साथ पशुओ को
आग मे झोक देना शाति प्राप्त करने का कैसा ढोग है,
यह बात एक आख्यान द्वारा समझना ठीक होगा ।

एक राजा पशु का यज्ञ करने लगा । राजा का
मन्त्री न्यायशील, दयालु और पक्षपातरहित था । उसने
विचार किया— शाति के नाम पर बध करना कौन-सी

शाति है ? क्या दूसरो को घोर अशाति पहुचना ही शाति प्राप्त करना है ? अपनी शाति की आशा से दूसरो के प्राण लेना जघन्यतम स्वार्थ है। क्या इसी निकृष्ट स्वार्थ मे शाति विराजमान रहती है ? शातिदेवी की सौम्य मूर्ति इस विकराल और अधम कृत्य मे नही रह सकती। उसने यज्ञ कराने वाले पुरोहित से पूछा— आप इन मूक पशुओ को अशाति पहुचाकर शाति किस प्रकार चाहते हैं ?

पुरोहित ने कहा— इन बकरो का परमात्मा के नाम पर बलिदान किया जायगा। इस बलिदान के प्रताप से सबको शाति मिलेगी।

मन्त्री—ईश्वर अगर सबका स्वामी है तो इन बकरो का भी स्वामी है या नही ? और जैसे सब लोग शाति चाहते हैं उसी प्रकार ये शाति चाहते है या नही ?? अगर यह भी शाति चाहते है तो इन्हे क्यो मारा जा रहा है ?

पुरोहित, मन्त्री के प्रश्न का समुचित उत्तर नही दे सका। अतएव उसने क्रोध मे आकर कर्कश स्वर मे कहा— आप नास्तिक मालूम होते है। यहाँ से दूर चले जाइए, अन्यथा यज्ञ अपवित्र हो जायगा।

मन्त्री—मैं नास्तिक नही, आस्तिक हू। परन्तु यह जानना चाहता हू कि जिन जीवो के लिए तुम शाति चाह रहे हो, उनमे यह बकरे भी हैं या नही ?

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउ न मरिज्जिउ।

अर्थात्—सभी जीव जीवित रहना पसन्द करते हैं। मरना कोई नही चाहता।

जब सभी जीव जीना चाहते हैं और मरना नही

चाहते तो उन्हे अशांति पहुंचा कर, मारकर शाति चाहना कहाँ का न्याय है ? तुम भी शाति चाहते हो, यह बकरे भी शान्ति चाहते हैं, फिर इन्हे क्यों मारते हो ?

पुरोहित के पास इस सरल प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था । वह ऊटपटाग बात करके मन्त्री को टालने का उपाय करने लगा ।

मन्त्री ने विचार किया कि यह यज्ञ राजा की आज्ञा से हो रहा है । पुरोहित लोग यो कहने से नही मानेगे । अतएव उसने प्रधान पुरोहित से कहा—मैं लौटकर आता हू तब तक इन पशुओं को मारने का काम बन्द रक्खा जाय । यह मेरी अधिकृत आज्ञा है ?

मन्त्री सीधा राजा के पास पहुचा । उसने राजा से कहा— महाराज ! नगर मे बडा अत्याचार हो रहा है ।

राजा—तो आप किस काम के लिए है ? अत्याचार को रोकते क्यो नही ।

मन्त्री—अत्याचार करने वाले तो स्वय राजगुरू हैं । उनके सम्बन्ध मे जब तक आप विशेष आज्ञा न दे, मैं क्या कर सकता हू ?

राजा—राजगुरु क्या अत्याचार कर रहे हैं ?

मन्त्री—लोगो के बच्चो को जबर्दस्ती मूँडकर साधु बना रहे हैं । सब बच्चे और उनके माँ-बाप रो रहे हैं । आप जैसी आज्ञा दे वैसा ही किया जाय ।

राजा को राजगुरु की जबर्दस्ती अच्छी नही लगी । उसने मत्री से कहा—इस अत्याचार को जल्दी रोको । न माने तो कानून के अनुसार उचित कार्रवाई करो ।

राजा की आज्ञा प्राप्त कर मत्री फिर यज्ञस्थल पर आया। उसने यज्ञ करने वाले पुरोहितों से कहा—इन पशुओ को छोड दो। इनका हवन नही किया जायगा।

प्र० पुरोहित—क्यो ?

मत्री—इनकी आत्मा नही चाहती।

प्र० पुरोहित—आप शास्त्र की बात नही समझते। हम लोग इन पशुओ की कुछ भी हानि नही कर रहे हैं। हम तो इन्हें सीधे स्वर्ग भेज रहे हैं। स्वर्ग में पहुच कर इन्हे दिव्यसुख प्राप्त होगा। न आप यह बात जानते हैं और न बकरे ही जानते हैं। हम ज्ञानी हैं। हमने शास्त्र पढे हैं। अतएव इन बकरो की भलाई मे बाधा मत डालिए।

मत्री—आपका ज्ञान तो आपके कामों से और आपकी बातो से प्रकट ही है। परन्तु जब यह पशु स्वर्ग चाहते हो, तब तो इन्हे स्वर्ग भेजना उचित भी कह सकते थे। मगर यह स्वर्ग नही चाहते। जबर्दस्ती करके क्यो भेज रहे हो ?

आखिर बकरे बचा लिये गये। पुरोहित घबराया। उसकी दुकानदारी जो उठ रही थी ! फिर उन्हे पूछता ही कौन ! वे भी राजा के पास पहुचे। कहने लगे—अन्नदाता ! शाति के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया गया था। परन्तु यज्ञ में बलि दिये जाने वाले बकरो को मन्त्री ने छुड़ा लिया और यज्ञ रोक दिया।

राजा असमजस में पड गया। सोचने लगा—मामला क्या है ! आखिर उसने मन्त्री को बुलवाया। बकरे छुडवाने के विषय मे प्रश्न करने पर मत्री ने उत्तर दिया—

महाराज ! मैंने आपकी आज्ञा से पशुओ को मरने से बचाया है ।

राजा–मैंने यह आज्ञा कब दी है ?

मत्री–आपने आज्ञा दी थी कि जवर्दस्ती साधु न बनाया जाय ।

राजा–वह तो साधु वनाने के विषय मे थी । बकरो के विषय मे तो कोई आज्ञा नही दी गई ।

मत्री–जैसे दूसरे लोग कहते हैं कि हम साधु बनाकर स्वर्ग भेजते हैं, उसी प्रकार इनका कहना है कि हम बकरो को मार कर स्वर्ग भेजते है । जब जबर्दस्ती साधु नही बनाने दिया जाता तो फिर जवर्दस्ती बकरों को कैसे स्वर्ग भेजा जा सकता है ?

राजा विवेकवान् था । उसने मत्री की बात पर विचार किया । विचार करने पर उसे जचा कि मत्री की बात सही है ।

राजा ने फिर पुरोहित को बुलवाया । पुरोहितो के आने पर राजा ने पूछा–उन पशुओ को मारने का उद्देश्य क्या है ? उन्हे अमर क्यो न रक्खा जाय ? उन्हे अमर रखने से क्या ईश्वर प्रसन्न नही होगा ?

प्रधान पुरोहित ने कहा– महाराज, आप भी भ्रम मे पड गये है । हम पशुओ को मारते नही, स्वर्ग भेजते हैं ।

मत्री ने कहा– महाराज, मै पशुओ की ओर से कुछ निवेदन करना चाहता हू । उन पशुओ ने वडी ही दीनता के साथ प्रार्थना की है । वह प्रार्थना यह है–

कहे पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहिं,
होमत हुतासन में कौन सी वडाई है ।

स्वर्गसुख मैं न चहू देहु मुझे यो न कहूं,
घास खाय रहू मेरे दिल यही भाई है।
जो तू यह जानत है वेद यो बखानत है,
यज्ञ–जरौ जीव पावे स्वर्ग–सुखदायी है।
डारो क्यो न वीर ! या मैं अपने कुटुम्ब ही को,
मोहि जिन जारै जगदीस को दुहाई है॥

पशुओ की यह प्रार्थना है। वे दीन से दीन स्वर में यज्ञ करने वाले से कहते हैं–क्या तुम ईश्वर के भक्त हो ? जिस वेद के नाम पर तुम हमें होमते हो उसमे कहे हुए अहिंसा धर्म को छिपा कर हमें होमने मे तुम्हारी कौन-सी बडाई है ? मैं स्वर्ग का सुख नही चाहता। मैं तो घास खाकर जीवित रहना चाहता हूं। हे याज्ञिक ! अगर तू सच्चे दिल से समझता है कि यज्ञ मे होमा हुआ जीवधारी स्वर्ग मे जाता है तो अपने कुटुम्ब को ही स्वर्ग भेजने के लिए क्यो नही होम देता ? हम मूक पशुओ से क्यो रूठा है !

एक आदमी अपने हाथ मे हरी–हरी घास लेकर खडा हो और दूसरा स्वर्ग मे भेजने के लिए तलवार लिए खडा हो तो इन दोनो मे से पशु किसे पसद करेगा ? वह किसकी ओर मुह लपकाएगा ?

'घास वाले की ओर !'

इससे प्रकट है कि पशु स्वर्ग जाने के लिए मरना नही चाहता और घास खाकर जीवित रहना चाहता है। मन्त्री कहता है–अगर यज्ञ करने वाले कहते है कि पशुओ को अज्ञान है और हम ज्ञानी हैं, इसीलिए उन्हे स्वर्ग भेजते है, तो इसके उत्तर मे पशुओ का कहना है कि हमे तो

इस बात पर विश्वास है नही, अगर इन्हे विश्वास है तो ये लोग अपने कुटुम्ब को स्वर्ग भेजे। अगर इन्होने अपने बेटे को इस प्रकार मार कर स्वर्ग भेजा होता तो हमे विश्वास हो जाता कि ये दिल से ऐसा मानते हैं। मगर जब यज्ञ करने वाले अपने माता-पिता और पुत्र आदि को स्वर्ग-सुख से वंचित रखकर हमे स्वर्ग भेजने की बात कहते हैं तो हमे इनकी बात पर विश्वास नही होता। इसलिए हमे मारने वाले को परमात्मा की दुहाई है।

मंत्री कहता है—उन पशुओ की तरफ से यह फरियाद है और वे इसका उत्तर माँगते हैं।

राजा ने यज्ञ करने वाले पुरोहितो से पूछा—क्या आप लोग अपने परिवार को यज्ञ मे होम सकते हैं ?

पुरोहित—शास्त्र मे पशुओ को होमने का विधान है, कुटुम्ब को होमने का कही विधान नही है।

राजा—तब तो कहना पडेगा कि आपका शास्त्र भी पक्षपात से भरा है। बस, अब रहने दीजिये। क्षमा कीजिये, मे ऐसी शाति नही चाहता। मेरा उद्देश्य किसी को अशाति पहुचाकर शान्ति प्राप्त करना नही है। मेरा कर्त्तव्य मुझे सबको शाति पहुचाने के लिए प्रेरित करता है।

मतलब यह है कि किसी भी जीव का हवन करने से शाति प्राप्त नही हो सकती। किसी भी प्राणी को दुःख न पहुचाने से ही वास्तविक शाति प्राप्त हो सकती है। आज तो जैन-परम्परा के अनुयायी भी नाना प्रकार से आरम्भ—समारम्भ करते हैं और होम आदि करते हैं मगर उसमे वास्तविक शाति नही है। लोगो ने शाति प्राप्त

का, कृत्रिम नही अकृत्रिम, जीव परमेश्वर है।

तुम्हारी देह अगर मन्दिर है तो दूसरे जीवो की देह भी मन्दिर है या नही ?

'हाँ।'

यदि केवल अपनी ही देह को मन्दिर माना, दूसरे की देह को मन्दिर नही माना तो तुम पक्षपात मे पडे होने के कारण ईश्वर को नही जान सकते। ईश्वर ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापी और सबकी शान्ति चाहने वाला है। अगर आप भी सबकी शान्ति चाहते है, सबकी देह को देवालय मानते हैं तो आपकी देह भी देवालय है, अन्यथा नही।

जिस मकान को देवालय मान लिया, उस मकान के ईंट-पत्थर कोई विवेकी खोदना चाहेगा ?

'नही !'

अगर कोई खोदता है तो कहा जायगा कि इसने देवालय की आसातना की। लेकिन जब सभी जीवो के शरीर को देवालय मान लिया तो फिर किसी के शरीर को तोडना-फोडना क्या देवालय को तोडना-फोडना नही कहलाएगा ?

मित्रो ! परमात्मा से शान्ति चाहने के लिए दूसरे जीवो को कष्ट पहुचाना, उनका घात करना कहाँ तक उचित है ? देवालय के पत्थर निकालकर कोई आसपास दीवाल बनावे और कहे कि हम देवालय की रक्षा करते है तो क्या यह रक्षा करना कहलाएगा ? इसी प्रकार शान्ति के लिए जीवो का घात करना क्या शान्ति प्राप्त करना है ? शाति तो उसी समय प्राप्त होगी जब ज्ञान-दीपक से उजेला करके

आत्मा को वैर-विकार से रहित बनाओगे। सर्वदेशीय शाति ही वास्तविक शाति है—

शातिनाथ भगवान् की प्रार्थना मे कहा गया है—

श्री शाति जिनेश्वर सायब सोलवाँ,
जनमत शाति करी गिज देश मे।
मिरगी मार निवार हो सुभागी॥
तन मन वचना शुध करि ध्यावता,
पूरे सगली हाम हो सुभागी॥श्री०॥

उन शातिनाथ भगवान् को पहिचानो, जिन्होने माता के उदर मे आते ही ससार मे शाति का प्रसार कर दिया था। उस समय की शाति, सूर्योदय से पहले होने वाली उषा के समान थी।

उषा प्रात काल लालिमा फैलने और उजेला होने को कहते हैं। भगवान् शातिनाथ का जन्मकाल शातिप्रसार का उषाकाल था। इस उषाकाल के दर्शन कब और कैसे हुए, इत्यादि बाते समझाने के लिए शातिनाथ भगवान् का जन्मचरित सक्षेप मे बतला देना आवश्यक है। जिस प्रकार सूर्योदय की उषा से सूर्य का सम्बन्ध है, उसी प्रकार भगवान् शातिनाथ के उषाकाल से उनका सम्बन्ध है। अतएव उसे जान लेना आवश्यक है।

हस्तिनापुर मे महाराज अश्वसेन और महारानी अचला का अखड राज्य था। हस्तिनापुर नगर अधिकतर राजधानी रहा है। प्राचीनकाल मे उसकी बहुत प्रसिद्धि थी। आजकल हस्तिनापुर का स्थान देहली ने ले लिया है।※

※ **हस्तिनापुर के परिचय के लिए देखिए, किरण १७, (पाडव-चरित) पृष्ठ ६।**

भगवान् शान्तिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से च्युत होकर महारानी अचला के गर्भ मे आये। गर्भ मे आते समय महारानी अचला ने जो दिव्य स्वप्न देखे, वे सब उस उषा-काल की सूचना देने वाले थे। मानो स्वप्न मे दिखाई देने वाले पदार्थों मे कोई भी स्वार्थी नही है। हाथी, वृषभ, सिह और पुष्पमाला कहते हैं कि आप हमे अपने मे स्थान दीजिए। चन्द्रमा और सूर्य निवेदन कर रहे हैं कि हमारी शाति और तेज, हे प्रभो! तेरे मे ही है।

उग्गए विमले भाणू।

हे प्रभो! हमारे प्रकाश से अधकार नही मिटता है, अतएव आप ही प्रकाश कीजिए।

उधर फहराती हुई ध्वजा कहती है– मैं तीन लोक की विजयपताका हू। मुझे अपनाइए। मगलकलश कहता है– मेरा नाम तभी सार्थक है जब आप मुझे ग्रहण करले। मानसरोवर कहता है– यह मगलकलश मेरे से ही बना है। मै और किसके पास जाऊ? मैं ससार के मानस का प्रति-निधि होकर आया हू और प्रार्थना करता हू कि तू सबके मानस मे प्रवेश कर और उसे उज्ज्वल बना। क्षीरसागर कहता है– यह सरोवर तो छोटा-सा है। लेकिन अगर आप मुझे न धारण करेंगे तो मै कहाँ रहूगा? प्रभो! इस ससार को अमृतमय कर दो। ससार मुझ से अतृप्त है, अत आप तृप्त कीजिए।

इस प्रकार उषाकाल की सूचना देकर भगवान् शातिनाथ सर्वार्थसिद्ध विमान से महारानी अचला के गर्भ मे आये। सब देवी–देवताओ ने भगवान् से प्रार्थना की–

प्रभो ! सब लोग अपने-अपने पक्ष मे पड़े हुए हैं। आप ससार का उद्धार कीजिये। हमारे सिर पर भी आशीर्वाद का हाथ फेरिये।

लोकोत्तर स्वप्नो ने मानों अचला महारानी को बधाई दी। उसके बाद अचला महारानी के गर्भ मे भगवान् का आगमन हुआ। क्रमश गर्भ की वृद्धि होने लगी।

जिन दिनों भगवान् शान्तिनाथ गर्भ में थे, उन्हीं दिनो महाराज अश्वसेन के राज्य में महामारी का रोग फैल गया।

प्रश्न हो सकता है कि जब भगवान् गर्भ में आये तो रोग क्यो फैला ? मगर वह रोग नही, उषाकाल की महिमा को प्रकट करने वाला अन्धकार था। जैसे उषाकाल से पहले रात्रि होती है और उस रात्रि से ही उषाकाल की महिमा जानी जाती है, उसी प्रकार वह महामारी भगवान् शातिनाथ के उषाकाल के पहले की रात्रि थी। उसका निवारण करने के कारण ही भगवान् 'शातिनाथ' पद को प्राप्त हुए। यद्यपि भगवान् गर्भ मे आ चुके थे और उस समय रोग फैलना नही चाहिए था, फिर भी रोग के फैलने के वाद भगवान् के निमित्त से उसकी शाति होने के कारण भगवान् की महिमा का प्रकाश हुआ। इससे भगवान् के आने की सूचना और भगवान् के प्रताप का परिचय उनके माता-पिता को मिल गया।

राज्य मे मरी रोग फैलने की सूचना महाराज अश्व-सेन को मिली। महाराज ने यह जानकर कि मरी रोग के कारण लोग मर रहे हैं, रोग की उपशाति के अनेक उपाय किये। मगर शाति न मिली।

यह मरी लोगो की कसौटी थी। इसी से पता चलता था कि लोग मार्ग पर है या मार्ग भूले हुए हैं। यह मरी शाति से पहले होने वाली क्राति थी।

उपाय करने पर भी शाति न होने के कारण महाराज बडे दुखी हुए। वह सोचने लगे—'जिस प्रजा का मैंने पुत्र के समान पालन किया है, जिसे मैंने अज्ञान से सज्ञान, निर्धन से धनवान् और निरुद्योगी से उद्योगवान् बनाया है, वह मेरी प्रजा असमय मे ही मर रही है! मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ हो रहा है! मेरे राजा रहते प्रजा को कष्ट होना मेरे पाप का कारण है।' पहले के राजा, राज्य मे दुष्काल पडना, रोग फैलना, प्रजा का दुखी होना आदि अपने पाप का ही फल समझते थे।

रामायण मे लिखा है कि एक ब्राह्मण का लडका बचपन मे ही मर गया। ब्राह्मण उस लडके को लेकर रामचन्द्रजी के पास गया और बोला— आपने क्या पाप किया है कि मेरा लडका मर गया?

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि पहले के राजा प्रजा के कष्ट का कारण अपना ही पाप समझते थे। इसी भावना के अनुसार महाराज अश्वसेन मरी फैलने का अपना ही दोष मान कर दुखी हुए। उन्होने एकान्त मे जाकर निश्चय किया कि जब तक प्रजा का दुख दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नही करूँगा।

सुदृढ निश्चय मे बडा बल होता है। भक्त तुकाराम ने कहा है—

निश्चयाचा बल तुका म्हणे तो च फल।

निश्चय के बिना फल की प्राप्ति नही होती ।

इस प्रकार निश्चय करके महाराज अश्वसेन ध्यान लगा कर बैठ गये । भोजन का समय होने पर महारानी अचला ने दासी को भेजा कि वह महाराज को भोजन करने के लिए बुला लावे । दासी गई, किन्तु महाराज को ध्यानमुद्रा में बैठा देखकर वह सहम गई । भला उसका साहस कैसे हो सकता था कि वह महाराज के ध्यान के भग करने का प्रयत्न करे ! वह धीमे-धीमे स्वर से पुकार कर लौट गई । उसके बाद दूसरी दासी आई, फिर तीसरी आई, मगर ध्यान भग करने का किसी को साहस न हुआ । महारानी अचला बार-बार दासियो को भेजने के अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करके कहने लगी- स्वामी को बुलाने के लिए दासियो का भेजना उचित नही था, स्वय मुझे जाना चाहिए था । यद्यपि मैंने पति से पहले भोजन करने की भूल नही की है, लेकिन स्वयं उन्हे बुलाने न जाकर दासियो को भेजने की भूल अवश्य की है ।

समय अधिक हो जाने के कारण भोजन ठण्डा हो गया था । इस कारण दासियो को दूसरा भोजन बनाने की आज्ञा देकर महारानी अचला स्वय महाराज अस्वसेन के समीप गई ।

महारानी सोच रही थी- पत्नी, पति की अर्धांगिनी है । उसे पति की चिन्ता का भी भाग बँटाना चाहिए । जो स्त्री पति की प्रसन्नता मे भाग लेना चाहती है और चिन्ता मे भाग नही लेना चाहती, वह आदर्श पत्नी नही हो सकती । ऐसी स्त्री पापिनी है ।

अचला देवी ने जो विचार किया, क्या वह स्त्री का

धर्म नही है ? अवश्य । किन्तु आजकल तो वचपन मे ही लडकियो को उलटी शिक्षा दी जाती है । कन्या को ऐसा विनयशील होना आवश्यक है, जिससे गृहस्थावस्था मे वह अपने परिवार को शाति दे सके, स्वय शाति-प्राप्त कर सके और कुटुम्बजीवन पूरी तरह आनन्दमय हो सके ।

बीकानेर मे लडकियो को लडके के भेप मे रखने की प्रथा देखी जाती है । मेरी समझ मे ही नही आता कि ऐसा करने से क्या लाभ है ? पुरुष की पोशाक पहिनने से कोई स्त्री पुरुष तो हो ही नही सकती ! सभव है है, कन्या के माता-पिता उसे लड़के की पोशाक पहना कर सोचते हो– लडके की पोशाक पहिनकर हम कन्या की लडका होने की भावना पूरी कर रहे हैं ! मगर ऐसा करने से क्या हानि होती है, इस बात पर उन्होने विचार नही किया । लडकी को लडका बनाने का विचार करना प्रकृति से युद्ध करना है । प्रकृति से युद्ध करके कोई विजय नही पा सकता । फल यह होता है कि ऐसा करने से लडकी के सस्कार बिगड जाते हैं । कोई–कोई वचपन के मूल्य को नही समझते । वे वाल्यावस्था को निरर्थक ही मानते है । पर वाल्यावस्था मे ग्रहण किये हुए सस्कारो के आधार पर ही बालक के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण होता है । जिसका वालकपन बिगड गया उसका सारा जीवन बिगड गया और जिसका वालकपन सुधर गया उसका सारा जीवन सुधर गया । किसी कवि ने कहा है–

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।

कच्चे घड़े पर वेलवूटे वना दिये जाते है वे घडे के पकने पर भी नही मिटते । लेकिन पके घडे पर बनाये

हुए बेलबूटे कायम नही रहते । यही बात बाल्यावस्था के विषय मे है । अतएव जीवन निर्माण की दृष्टि से बाल्यावस्था का मूल्य बहुत अधिक है। माता-पिता को यह बात दिल मे बिठा लेना चाहिए कि बालक के सस्कार, चाहे वे भले हो या बुरे हो, जीवनभर जाने वाले नही है । अतएव उन्हे बुरे सस्कारो से बचाकर अच्छे सस्कारों से सुसस्कृत करना चाहिए । अगर बालको को प्रारम्भ से ही खराब बोलचाल और खानपान से बचाते रहो तो आगे चलकर वे इतने उत्तम बनेंगे कि आपका गृहस्थजीवन सुखमय, शातिमय और सन्तोषमय बन जायगा ।

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबन्ध मे लिखा है कि पाच वर्ष तक के बालक को सिला हुआ कपडा पहनाना उसकी वृद्धि मे बाधा डालना है । खुले शरीर मे जो काति आ सकती है, वह सिले कपडो से बन्द किये हुए शरीर मे नही आ सकती । चुस्त कपडो से बालक के शरीर का विकास भी रुक जाता है । ऐसी स्थिति मे यह समझना कठिन नही है कि गहनो से भी वालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है । जो बालक 'सोना' शब्द घा उच्चारण भी नही कर सकता, न सोनें को पहिचानता ही है, उसे सोना पहिनाने से क्या लाभ है? सोना बालक के प्राणो का ग्राहक भले ही वन सकता है, लाभ तो उससे कुछ भी दिखाई नही देता । वालक को जब सिला कपडा पहिनाया जाता है तो वह रोने लगता है । वह रोकर मानो कहता है कि मुझे इस वन्धन मे मत डालो । मगर कौन बालको की पुकार सुनता है !

जरा विचार कीजिए कि आप लोग अपने वालको

को नाना प्रकार के आभूषण और गोटा-किनारी के कपड़े पहिनाये बिना संतोष नही मानते, मगर अगरेजो के कितने लडको को आपने गहने पहिने देखा है ?

आप बालको को बचपन से ही ऐसी विकारयुक्त रुचि का बना देते हैं कि आगे चलकर उनकी रुचि का सुधरना कठिन हो जाता है। बडे होने पर कदाचित् उन्हे गहने न मिले तो वे दुःख का अनुभव करते है। उनकी दृष्टि ही विकृत हो जाती है। उनका जीवन दुःखमय बन जाता है। माता-पिता को तो चाहिए कि वे बालक को सादगी और स्वच्छता का सबक सिखावे, जिससे उनका अगला जीवन सुख और सतोष के साथ व्यतीत हो सके।

बहुत से लोग लडको पर अच्छा भाव रखते है परतु लडकियाँ उन्हे आफत की पुडियाँ मालूम होती है। लडका उत्पन्न होने पर वे प्रसन्न होते हैं और लडकी के जन्म पर मातम-सा मनाने लगते है--उदास हो जाते है। फिर उसके पालन-पोषण मे भी ऐसी लापरवाही की जाती है कि लडकी अपने भाग्य से ही बडी हो पाती है। लडकी बडी हो जाती है तो उसके शिक्षण का वैसा प्रबध नही किया जाता जैसा लडके का। लेकिन उसे लडके के वेष मे रक्खा जाता है, जिससे उसका नम्रता का गुण कम हो जाता है।

जहाँ इस प्रकार का पक्षपात हो, समझना चाहिए कि वहा भगवान् शातिनाथ के समझने का प्रयत्न ही नही किया गया है। इसलिए मैं कहता हू कि पक्षपात को दूर करो। यह पक्षपात गृहस्थजीवन का घोर अभिशाप है। लडकियो के विरुद्ध किया जाने वाला ऐसा पक्षपात अत्यत भयकर परिणाम पैदा करने वाला है। किसी नवयुवती

कन्या को बूढे के साथ ब्याह देना क्या कम अत्याचार है ? पैसे के लोभ मे आकर अपनी कन्या के साथ ऐसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार करने वाले लोग किस प्रकार भगवान् शातिनाथ की उपासना कर सकते है ? अपनी ही सतान को जो लोग अशाति की आग मे झोकते नही हिचकते उन्हे किस प्रकार शान्ति मिल सकती है ? अगर आप सच्ची शाति चाहते हैं तो अपने समग्र जीवनक्रम का विचार करे और उसमें अशाति पैदा करने वाले जितने अ श हैं, उन्हे हटा दे । इससे आप, आपका परिवार, समाज और देश शाति प्राप्त करेगा । ऐसा करने पर ही भगवान् शॉतिनाथ की आराधना हो सकेगी ।

कन्या के बदले पैसे लेने वाले का कभी भला नही होता । मैं अपनी आखो देखी बात कहता हू । एक आदमी के पॉच लडकियॉ थी और एक लडका था । लडकियो के उसने मनचाहे रुपये लिये । यही नही वरन् किसी-किसी लडकी की सगाई एक जगह करके छोड दी और फिर दूसरी जगह की । इतना करने पर भी उसकी दरिद्रता दूर नही हुई और न उसके लडके का ही विवाह हुआ । उसके वश का नाश हो गया ।

मतलब यह है कि प्रकृति के नियमो को तोडकर रुपये के लोभ मे पडकर नवयुवती कन्या को बूढे के हवाले कर देना या अयोग्य धनवान् को लडकी देकर योग्य धनहीन को वचित रखना योग्य नही है । भगवान् ने तो दासी बेचने को भी बडा पाप कहा है, फिर कन्या को बेच देना कितना बडा पाप न होगा !

महारानी अचला को बाल्यावस्था से ही सुन्दर सस्कार

मिले थे। वह अपने पत्नीधर्म को भलीभाँति समझती थी। इस कारण वह भोजन किये बिना ही महाराज अश्वसेन के समीप पहुचीं। वहाँ जाकर देखा कि महाराज अश्वसेन गभीर मुद्रा धारण करके ध्यान मे लीन है। महारानी ने हाथ जोड़कर धीमे और मधुर किन्तु गभीर स्वर मे महाराज का ध्यान भग करने का प्रयत्न किया। महारानी का गभीर स्वर सुनकर महाराज का ध्यान टूटा। उन्होंने आख खोलकर देखा तो सामने महारानी हाथ जोडे खड़ी नजर आई। महाराज ने इस प्रकार खड़ी रहने और ध्यान भग करने का कारण पूछा। महारानी ने कहा--आप आज अभी तक भोजन करने नही पधारे। इसका क्या कारण है ?

महाराज सोचने लगे-- जिस उपद्रव को मैं दूर नही कर सकता, उसे महारानी स्त्री होकर कैसे दूर कर सकती है ? फिर अपनी चिन्ता का कारण कहकर इन्हे दु खी करने से क्या लाभ है ? इस प्रकार विचार कर वह चुप ही रहे। कुछ न बोले।

पति को मौन देखकर महारानी ने कहा-- जान पडता है, आप किसी ऐसी चिन्ता मे डूबे हैं, जिसे सुनने के लिए मैं अयोग्य हूं। सम्भवत इसी कारण आप बात छिपा रहे हैं। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो आज्ञा दीजिए कि मैं यहाँ से टल जाऊँ। ऐसा न हो तो कृपया अपनी चिन्ता का कारण बतलाइए। आपकी पत्नी होने के कारण आपके हर्ष-शोक मे समान रूप से भाग लेना मेरा कर्त्तव्य है।

महाराज अश्वसेन ने कहा-- मेरे पास कोई चीज नहीं है जो तुमसे छिपाने योग्य हो। मैं ऐसा पति नही कि अपनी पत्नी से किसी प्रकार का दुराव रक्खूं। मगर

मैं सोचता हूं कि मेरी चिन्ता का कारण सुन लेने से मेरी चिन्ता तो दूर होगी नही तुम्हे भी चिन्ता हो जायगी। इससे क्या लाभ होगा ?

महारानी—अगर बात कहने से दुख नही मिटेगा तो उदास होने से भी नही मिटेगा। इस समय सारा दुख आप उठा रहे हैं, लेकिन जब आप, अपनी इस अर्धांगिनी से दुख का कारण कह देंगे तो आपका आधा दुःख कम हो जायगा।

महाराज—तुम्हारी इच्छा है तो सुन लो। इस समय सारी प्रजा महामारी की बीमारी से पीडित है। मुझसे ही कोई अपराध बन गया है, जिसके कारण प्रजा को कष्ट भुगतना पड रहा है। ऐसा न होता तो मेरे सामने प्रजा क्यो दुखी होती ?

महारानी—जिस पाप के कारण प्रजा दुख पा रही है, वह आपका ही नही है, मेरा भी है।

महारानी की यह बात सुनकर महाराज को आश्चर्य हुआ। फिर उन्होने कुछ सोचकर कहा—ठीक है। आप प्रजा की माता हैं। आपका ऐसा सोचना ठीक ही है। मगर विचारणीय बात तो यह है कि यह दुख किस प्रकार दूर किया जाय ?

महारानी—पहले आप भोजन कर लीजिए। कोई न कोई उपाय निकलेगा ही।

महाराज—मैं प्रतीज्ञा कर चुका हू कि जब तक प्रजा का दुख दूर न होगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नही करूगा।

महारानी—जिस नरेश मे इतनी दृढता है, जो प्रजा-

हित के लिए आत्मवलिदान करने को उद्यत है, उसकी प्रजा कदापि दु खी नही रह सकती । लेकिन जव तक आप भोजन नही कर लेते, मै भी भोजन नही कर सकती ।

महाराज—तुम अगर स्वतन्त्र होती और भोजन न करती, तव तो कोई वात ही नही थी । लेकिन तुम गर्भवती हो । तुम्हारे भूखे रहने से गर्भ को भी भूखा रहना होगा और यह अत्यन्त ही अनुचित होगा ।

गर्भ की याद आते ही अचला महारानी ने कहा—नाथ ! अव मै महामारी के मिटाने का उपाय समझ गई । यह महामारी उपा के पूर्व का अन्धकार है । मै इसे मिटाने का उपाय करती हू ।

महारानी अचला महल के उपर चढ गई और अमृत-दृष्टि से चारो ओर देखकर कहने लगी—प्रभो ! यदि यह महामारी शान्त न हुई तो पति जीवित नही रहेगे । पति के जीवित न रहने पर मैं भी जीवित नही रह सकूंगी और इस प्रकार यह गर्भ भी नष्ट हो जायगा । इसलिए हे महामारी ! मेरे पति के लिए, मेरे लिए और इस गर्भ के लिए इस राज्य को शीघ्र छोड दे ।

उपा के आगे अन्धकार कैसे ठहर सकता है ? महारानी के चारो ओर देखते ही महामारी हट गई । उसके वाद महाराज अश्वसेन को सूचना मिली कि राज्य मे शाति हो गई है । महाराज आश्चर्यचकित रह गए । वे महारानी के महल मे आये । मालूम हुआ कि वे महल के उपर है । महाराज वही पहुचे । उन्होने देखा कि अचला महारानी अचल ध्यान मे खडी हैं । चारो ओर अपनी दिव्य दृष्टि फिराती हैं, किन्तु मन को नही फिरने देती ।

महाराज अश्वसेन ने थोडी देर यह दृश्य देखा। उसके बाद स्नेह की गम्भीरता के साथ कहा—'देवी शात होओ !

पति को आया जान महारानी ने उनका सत्कार किया। महाराज ने अतिशय सतोष और प्रेम के साथ कहा—समझ मे नही आया कि तुम रानी हो या देवी ? तुम्हारी जितनी प्रशसा की जाय, थोडी है। तुम्हारे होने से ही मेरा बडप्पन है। तुम्हारी मौजूदगी से ही मेरा कल्याण-मगल हुआ। तुमने देश मे शाँति का प्रसार करके प्रजा के और मेरे प्राणो की रक्षा की है।

पति के मुख से अपनी अलकारमय प्रशसा सुनकर रानी कुछ लज्जित हुई। फिर रानी ने कहा—नाथ यह अलकार मुझे शोभा नही देते। ये इतने भारी है कि मै इनका बोझ नही उठा सकती। मुझमे इतनी शक्ति ही कहाँ है, जितनी आप कह रहे है ? थोडी-सी शक्ति है भी तो वह आपकी ही शक्ति है। काच की हडी मे दीपक रखने पर जो प्रकाश होता है वह काच की हडी का नही, दीपक का ही है। इसलिए आपने प्रशसा के जो अलकार मुझे प्रदान किये है, उन्हे आभार के साथ मै आपको ही समर्पित करती हू। आप ही इनके योग्य है। आप ही इन्हे धारण कीजिए।

महाराज—रानी, यह भी तुम्हारा एक गुण है कि तुम्हे अपनी शक्ति की खबर ही नही ! वास्तव मे जो अपनी शक्ति का घमड नही करता वही शक्तिमान होता है। जो शक्ति का अभिमान करता है उसमे शक्ति रहती ही नही ! बडे-बड़े ज्ञानी, ध्यानी और वीरो की यही आदत

होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते। मैंने तुम्हे जो अलकार दिये है उन्हे तुम मेरे लिए लौटा रही हो किन्तु पुरुष होने के कारण मैं उन्हे पहिन नही सकता। साथ ही मुझे खयाल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है, न हमारी है हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकीनाथ का ही यह प्रताप है। वह नाथ, जन्म धारण करके सारे ससार को सनाथ करेगा। आज के इस चमत्कार को देखते हुए, इन अलकारो को गर्भस्थ प्रभु के लिए सुरक्षित रहने दो। जन्म होने पर इनका 'शातिनाथ' नाम रक्खेगे। 'शातिनाथ' नाम एक सिद्धमन्त्र होगा, जिसे सारा ससार जपेगा और शाति-लाभ करेगा। देवी, तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शातिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे।

रानी—नाथ, आपने यथार्थ कहा। वास्तव में बात यही है। यह अपनी शक्ति नही, उसी की शक्ति है। उसी का प्रताप है, जिसे मैंने गर्भ मे धारण किया है।

प्रार्थना मे कहा है—

अश्वसेन नृप अचला पटरानी,
तस सुत कुल सिंगार हो सुभागी।
जन्मत शांति थई निज देश मे,
मिरगी मार निवार हो सुभागी॥

इस प्रकार शातिनाथ भगवान् रूपी सूर्य के जन्म धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया! अब शातिनाथ-सूर्य के उदय होने का वृतान्त कहना है। मगर समय कम होने के कारण थोडे ही शब्दो मे कहता हूं।

शातिनाथ भगवान् को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वदना नही करते हैं। वे इस कारण वन्दनीय हैं कि उन्होने दीक्षा धारण करके, केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् शातिनाथ ने लम्बेकाल तक ससार मे रह-कर अद्वितीय काम कर दिखाया। उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया। राज्य करके उन्होने अहकार नही सिखलाया। उनमे ऐसी–ऐसी अलौकिक शक्तियाँ थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालक को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का दूध पिलाने मे वह सुख कहाँ ? इसी प्रकार शातिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे परन्तु उन्हे शाति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शातिनाथ भगवान् ने ससार को क्या-क्या सिखाया और किस प्रकार महारभ से निकाल कर अल्पारभ मे लाये, यह कथा लम्बी है। अतएव इतनी सूचना करके ही सतोष करता हू।

प्रभो ! आप जन्म, जरा और मरण, इन तीन वातो मे ही उलझे रहते तो आप शान्तिनाथ न वनते ! लेकिन आप तो ससार को शान्ति पहुचाने वाले और शाति का अनुभव पाठ पढाने वाले हुए, इस कारण हम आपको भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हैं। आपने कौनसी शाति सिखलाई है, इस सम्बन्ध मे कहा है—

होती है कि वे अपनी शक्ति की खबर भी नही रखते। मैंने तुम्हे जो अलकार दिये है उन्हे तुम मेरे लिए लौटा रही हो किन्तु पुरुष होने के कारण मैं उन्हे पहिन नही सकता। साथ ही मुझे खयाल आता है कि वह शक्ति न तुम्हारी है, न हमारी है हमारी और तुम्हारी भावना पूरी करने वाले त्रिलोकीनाथ का ही यह प्रताप है। वह नाथ, जन्म धारण करके सारे ससार को सनाथ करेगा। आज के इस चमत्कार को देखते हुए, इन अलकारो को गर्भस्थ प्रभु के लिए सुरक्षित रहने दो। जन्म होने पर इनका 'शातिनाथ' नाम रक्खेगे। 'शातिनाथ' नाम एक सिद्धमन्त्र होगा, जिसे सारा ससार जपेगा और शाति-लाभ करेगा। देवी, तुम कृतार्थ हो कि ससार को शाति देने वाले शातिनाथ तुम्हारे पुत्र होगे।

रानी——नाथ, आपने यथार्थ कहा। वास्तव मे बात यही है। यह अपनी शक्ति नही, उसी की शक्ति है। उसी का प्रताप है, जिसे मैंने गर्भ मे धारण किया है।

प्रार्थना मे कहा है——

अश्वसेन नृप अचला पटरानी,
तस सुत कुल सिंगार हो सुभागी।
जन्मत शांति थई निज देश मे,
मिरगी मार निवार हो सुभागी॥

इस प्रकार शातिनाथ भगवान् रूपी सूर्य के जन्म धारण करने से पहले होने वाली उषा का चमत्कार आपने देख लिया। अब शातिनाथ-सूर्य के उदय होने का वृतात कहना है। मगर समय कम होने के कारण थोडे ही शब्दो मे कहता हूं।

शातिनाथ भगवान् को गर्भ मे रहने या जन्म धारण करने के कारण आप वदना नही करते हैं। वे इस कारण वन्दनीय हैं कि उन्होने दीक्षा धारण करके, केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की।

भगवान् शातिनाथ ने लम्बेकाल तक ससार मे रह-कर अद्वितीय काम कर दिखाया। उन्होने स्वय राज्य करके राज्य करने का आदर्श जनता के समक्ष उपस्थित किया। राज्य करके उन्होने अहकार नही सिखलाया। उनमे ऐसी-ऐसी अलौकिक शक्तियाँ थी कि जिनकी कल्पना भी हमारे हृदय मे आश्चर्य उत्पन्न करती है। लेकिन उन्होने ऐसी शक्तियो का कभी प्रयोग नही किया। माता अपने बालक को कामधेनु का दूध पिलाकर तृप्त कर सकती हो तो भी उसे अपना दूध पिलाने मे जिस सुख का अनुभव होता है, कामधेनु का दूध पिलाने मे वह सुख कहाँ ? इसी प्रकार शातिनाथ शक्ति का प्रयोग कर सकते थे परन्तु उन्हे शाति और प्रेम से काम लेने मे ही आनन्द आता था।

शातिनाथ भगवान् ने ससार को क्या-क्या सिखाया और किस प्रकार महारभ से निकाल कर अल्पारभ मे लाये, यह कथा लम्बी है। अतएव इतनी सूचना करके ही सतोष करता हू।

प्रभो! आप जन्म, जरा और मरण, इन तीन बातो मे ही उलझे रहते तो आप शान्तिनाथ न बनते! लेकिन आप तो ससार को शान्ति पहुचाने वाले और शाति का अनुभव पाठ पढाने वाले हुए, इस कारण हम आपको भक्ति-पूर्वक वन्दना करते हैं। आपने कौनसी शाति सिखलाई है, इस सम्बन्ध मे कहा है—

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढिश्रो ।

चक्रवर्ती की विशाल समृद्धि प्राप्त करके भी आपने विचार किया कि ससार को शाति किस प्रकार पहुचाई जा सकती है ? इस प्रकार विचार कर आपने शाति का मार्ग खोजा और ससार को दिखलाया । जैसे माता कामधेनु का नही वरन् अपना ही दूध बालक को पिलाती है, उसी प्रकार आपने शाति के लिए यत्र-मत्र-तत्र आदि का उपयोग नही किया किन्तु स्वय शातिस्वरूप बनकर ससार के समक्ष शाति का आदर्श प्रस्तुत किया । आपके आदर्श से ससार ने सीखा कि त्याग के बिना शाति नही प्राप्त की जा सकती । आपने ससार को अपने ही उदाहरण से बतलाया है कि सच्ची शाति भोग मे नही त्याग मे है और मनुष्य सच्चे हृदय से ज्यो-ज्यो त्याग की ओर बढता जायगा त्यो-त्यो शाति उसके समीप आती जाएगी ।

त्याग का अर्थ यदि आप ससार छोडकर साधु बनना समझे तो वह गलत अर्थ नही होगा । परन्तु यहाँ इतना समझ लेना आवश्यक है कि कस्तूरी किसी के घर हजार मन हो और किसी के घर एक कन हो तो चिन्ता नही, पर चाहिए सच्ची कस्तूरी । एक तोला रेडियम धातु का मूल्य साढे चार करोड रुपया सुना जाता है । उसके एक कण से भी बहुत-सा काम निकल सकता है पर शर्त यही है कि वह नकली नही असली हो । इसी प्रकार पूर्ण शाति प्राप्त करने के लिए आप पूर्ण त्याग कर सके तो अच्छा ही है । अगर पूर्ण त्याग करने की आप मे शक्ति नही है तो आशिक त्याग तो करना ही चाहिए । मगर ध्यान रखना कि जो त्याग करो, वह सच्चा त्याग होना चाहिए ।

लोक-दिखावे का द्रव्य-त्याग आत्मा के उत्थान मे सहायक नही होगा। आत्मा के अन्तरतर से उद्भूत होने वाली त्यागभावना ही आत्मा को ऊचा उठाती है। त्याग भले ही शक्ति के अनुसार थोडा हो परन्तु असली हो और शुद्ध हो जो कि भगवान् शातिनाथ को चढ सकता हो।

जिन देवो ने त्याग करके शाति नही प्राप्त की उन्होने ससार को शाति नही सिखाई। महापुरुषो ने स्वय त्याग करके फिर त्याग का उपदेश दिया है और सच्ची शाति सिखाई है। महापुरुष त्याग के इस अद्भुत रेडियम को यथाशक्ति ग्रहण करने के लिए उपदेश देते हैं। अतएव आप भी पापो का भी त्याग करो। जिस समय कोई आप पर क्रोध की ज्वालाए फैके उस समय आप शान्ति के सागर बन जाइए। शातिनाथ भगवान् का नाम लीजिए। फिर आप देखेगे कि क्रोध करने वाला किस प्रकार परास्त हो जाता है।

भगवान् शातिनाथ का जाप तो लोग आज भी करते हैं, परन्तु उसका प्रयोजन दूसरा होता है। कोई मुकदमा जीत लेने के लिए शातिनाथ को जपते हैं तो कोई किसी दूसरी झूठी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिए। इस प्रकार अशाति के लिए शातिनाथ को जपने मे कोई लाभ नही होगा। कोई भी अशाति उत्पन्न करने वाली चीज भगवान् शातिनाथ को स्वीकृत नही हो सकती।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या विवाह आदि के अवसर पर भगवान् शातिनाथ का स्मरण नही करना चाहिए ? इसका उत्तर यह है कि स्मरण तो करना चाहिए लेकिन यह समझ कर कि विवाह बधन की चीज है, इस-

लिए हे प्रभो ! तू ऐसी शक्ति मुझे प्रदान कर कि मैं इस बधन मे ही न रहू। गृहस्थावस्था मे विवाह से फलित होने वाले चतुर्थ अणुव्रत का पालन कर सकूँ और शक्ति आने पर भोग को निस्सार समझ कर पूण ब्रह्मचर्य को धारण कर सकूँ। इस प्रकार की धर्मभावना के साथ भगवान् का नाम जपने से आपका कल्याण ही होगा।

व्यापार के निमित्त बाहर जाते समय आप मागलिक सुनते है और मुनि सुनाते हैं। इसका यह अर्थ नही होना चाहिए कि व्यापार मे खूब धन कमाने के लिए आप सुने और मुनि सुनावे। व्यापार करते समय आप धन के चक्कर में पडकर धर्म को न भूल जाए। आपको धन ही शरण-भूत, मगलमय और उत्तम न दिखाई दे वरन् धर्म को उस समय भी आप मगलमय माने। इसी भावना से मुनि आपको मंगलपाठ सुनाते हैं और आपको भी इसी भावना से उसे सुनना चाहिए।

भोजन करते समय भी आप भगवान् शातिनाथ को स्मरण रक्खो और विचार करो कि– 'प्रभो ! मुझे भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार रहे।' मगर आज ऐसा कौन करता है ? लोग बेभान होकर अभक्ष्य भक्षण करते हैं और ठूस-ठूस कर आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं। वे सोचते हैं—अजीर्ण होगा तो औषधो की क्या कमी है ! मगर औषध के भरोसे न रह कर भगवान् शातिनाथ को याद करो और सोचो कि मैं शरीर का ढाँचा रखने के लिए ही खाऊ और खाने मे बेभान न हो जाऊ।

एक प्रोफेसर का कहना है कि मैं जब उपवास करता हू तो मेरी एकाग्रता बढ जाती है और मैं अवधान कर

सकता हूं । अगर उपवास न करूं तो अवधान नहीं कर सकता ।

अगर आप अधिक उपवास न कर सकें तो महीने में चार उपवास तो किया करे । चार उपवास करने से भी औषध लेने की आवश्यकता नहीं रहेगी । अगर प्रसन्नता और सद्‌भावना से उपवास करोगे तो धर्म का भी लाभ होगा । अगर आपने स्वेच्छा से उपवास न किये तो प्रकृति दूसरी तरह से उपवास करने के लिए आपको बाध्य करेगी । ज्वर आदि होने पर भोजन त्यागना पडेगा ।

भगवान् शांतिनाथ ने छह खड का राज्य त्याग कर संसार को सिखाया है कि त्याग कैसे किया जाता है और त्याग में कितनी निराकुलता तथा शान्ति है । मगर तुमसे और कुछ नही बन पडता तो शान्तिनाथ भगवान् के नाम पर क्रोध करने का ही त्याग कर दो । जहाँ क्रोध का अभाव है वहाँ ईश्वरीय शान्ति उपस्थित रहती है । आप शान्ति चाहते हैं तो उसे पाने का कुछ उपाय भी करो । एक भक्त कहते हैं—

> **कठिन कर्म लेहि जाहि मोहि जहाँ**
> **तहाँ-तहाँ जन छन . . . . .**

प्रभो ! क्रूर कर्म न जाने कहाँ-कहा मुझे घसीट कर ले जाते हैं । इसलिए हे देव ! मैं आपसे यह याचना करता हू कि जव कर्म मुझे परायी स्त्री और पराये धन आदि की ओर ले जावे तव मै आपको भूल न जाऊँ । आपकी दृष्टि मुझ पर उसी प्रकार वनी रहे जिस प्रकार मगर या कछुई की दृष्टि अपने अडो पर उन्हे पालने के लिए वनी रहती है ।

गाधीजी ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि मेरी माता जैनधर्मी सन्त की भक्त थी। विलायत जाते समय मेरी माता मुझे उन सन्त के पास ले गई। वहाँ उसने कहा— मेरा यह लडका दारू, मास और परस्त्री का त्याग करे तव तो मै इसे विलायत जाने दे सकती हू, अन्यथा नही जाने दूँगी। गाधीजी माता की आज्ञा को पर्वत से भी उच्च मानते थे। इसलिए उन्होने महात्मा के सामने मदिरा, मास और परस्त्री का त्याग किया।

गाधीजी लिखते हैं कि उस त्याग के प्रभाव से वे कई बार भ्रष्ट होने से वचे। एक बार जब वे जहाज से सफर कर रहे थे, अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण ही बच सके। गाधीजी जहाज से उतरे थे, कि उन्हे उनके एक मित्र मिल गए। उन मित्र ने दो-एक स्त्रिया रख छोडी थी, जिन्हे जहाज से उतरने वाले लोगो के पास भेजकर उन्हे भ्रष्ट कराते और इस प्रकार अपनी आजीविका चलाते थे। उन मित्र ने पैसे कमाने के उद्देश्य से तो नही पर मेरा आतिथ्य करने के लिए एक स्त्री को मेरे यहाँ भी भेजा। वह स्त्री मेरे कमरे मे आकर खडी रही। मै उस समय ऐसा पागल-सा हो गया, मानो मुझे बचाने के साक्षात् परमात्मा आ गये हो। वह कुछ देर खडी रही और फिर निराश होकर लौट गई। उसने मेरे मित्र को उलाहना भी दिया कि तुमने मुझे किस पागल के पास भेज दिया! उस बाई के चले जाने पर जब मेरा पागलपन दूर हुआ तब मै वहुत प्रसन्न हुआ और परमात्मा को धन्यवाद देने लगा कि—प्रभो! तुम धन्य हो। तुम्हारी कृपा से मै वच गया।

भक्त लोग कहते है---नाथ, तू इसी प्रकार मुझ पर दृष्टि रखकर मेरी रक्षा कर ।

गाधीजी ने एक घटना और लिखी है। वे जिस घर मे रहते थे उस घर की स्त्री का आचरण वेश्या सरीखा था । एक मित्र का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध था । उन मित्र के आग्रह से मैं उस स्त्री के साथ ताश खेलने बैठा। खेलते-खेलते नियत बिगडने लगी । पर उन मित्र के मन मे आया कि मैं तो भ्रष्ट हू ही इन्हे क्यो भ्रष्ट होने दू ! इन्होने अपनी माता के सामने जो प्रतिज्ञा की है वह भग हो जायगी । आखिर उन्होने गाधीजी को वहाँ से उठा लिया । उस समय मुझे बुरा तो अवश्य लगा लेकिन विचार करने पर बाद मे बहुत आनन्द हुआ ।

मित्रो ! अपने त्याग की दृढता के कारण ही गाधीजी दुष्कर्मो से बचे रहे और इसी कारण आज सारे ससार मे उनकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा है । उन्होने गुरु से त्याग की बानगी ही ली थी । उसका यह फल निकाला तो पूरे त्याग का कितना फल न होगा ? आप पूरा त्याग कर सके तो कीजिए । न कर सके तो त्याग की बानगी ही लीजिए । और फिर देखिए कि जीवन कितना पवित्र और आनन्दमय बनता है !

गाधीजी लिखते हैं कि मुझ पर आये हुए सकट टल जाने से मुझे मालूम हुआ कि परमात्मा की सत्ता अवश्य है । अगर आप लोग भी शातिनाथ भगवान् को याद रक्खे तो आपको भी परमात्मा के साक्षात् दर्शन होगे ।

भाइयो और वहिनो ! कुकर्म जहर से बढकर है । जब इनकी ओर आपका चित्त खिचने लगे तब आप भगवान्

शातिनाथ का स्मरण किया करो। ऐसा करने से आपका चित्त स्वस्थ होगा, विकार हट जाएगा और पवित्र भावना उत्पन्न होगी। आप कुकर्म से बच सकेंगे और आपका जीवन पवित्र रहेगा। भगवान् शातिनाथ का नाम पापो से बचने का महामन्त्र है।

शातिनाथ भगवान् ने केवलज्ञान प्राप्त करके पच्चीस हजार वर्ष तक सब जीवो को शाति प्रदान की। आप भी अपनी योग्यता के अनुसार दूसरो को शाति पहुचाएँ। कोई काम ऐसा मत कीजिए जिससे किसी को अशाति पहुचती हो। आपका ज्ञान, ध्यान, पठन-पाठन आदि सब ऐसे होने चाहिएं जो शातिनाथ को पसद हो। अगर आप 'शातिनाथ' भगवान् को हृदय मे धारण करके प्राणीमात्र को शाति पहुचाएँगे तो आपको भी लोकोत्तर शाति प्राप्त होगी।

२—मंगल-पर्व

पर्युषण पर्व जैनो के लिए महाकल्याण का पवित्र पर्व है। आत्मा के असली स्वरूप को समझने के लिए, आत्मा मे आई हुई विकृतियो को और उनके कारणो को हटाने के लिए और स्वाभाविक शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए पर्युषण से बढकर दूसरा अवसर कौन हो सकता है? पर्युषण के दिनो मे दुष्कर्मों की आहुति दी जाती है और अन्तिम दिन—सवत्सरी का दिन—पूर्णाहुति का दिन है। अपने पापो को ध्यान मे लेकर, ध्यानाग्नि के द्वारा पापो को जलाना ही पर्युषण पर्व का महान् सदेश है। जैनधर्म की आराधना का यह पवित्र दिन इतनी प्रभावशाली भावनाओ मे व्यतीत होना चाहिए कि उन भावनाओ का असर जीवनव्यापी बन जाय, कम से कम एक वर्ष तक तो उन भावनाओ का प्रभाव आत्मा पर रहना ही चाहिए।

सवत्सरी का दिन आयुबध का सर्वश्रेष्ठ अवसर है। अगर आज नवीन आयु का बध हो जाय तो आत्मा निहाल हो जायगा। मित्रो! आज प्राणीमात्र के प्रति मित्र-भावना कायम करो और हृदय मे किसी भी प्रकार का विकार मत रहने दो। जीवनमात्र के प्रति प्रेम के ऐसे प्रबल सस्कार बाँधो कि वे टूट न सके। अगर आपके इस सस्कार मे सच्चाई, स्वाभाविकता और दृढता हुई तो आपके

जीवन मे परिवर्तन हुए बिना नही रहेगा और आप प्राणी-मात्र के मित्र होगे। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने पर आप अपूर्व समता, निराकुलता और तृप्ति का अनुभव करने लगेगे।

यह पवित्र दिन पुराने पापों को धोने और नये पाप न करने के दृढ सकल्प का दिन है। नये पाप न करने के सकल्प का अर्थ यह मत समझिये कि मैं सब को साधु बन जाने के लिए कह रहा हू। मेरा आशय यह है कि लोभ के कारण सासारिक कामो मे भी धर्म-सम्बन्धी जो त्रुटिया रहती हो, उन्हे दूर करने का सकल्प कीजिए और भविष्य मे वह त्रुटियाँ मत रहने दीजिए। अपवित्रता को दूर करके आत्मा को पवित्रता के सरोवर मे स्नान कराइए। बहुत-से लोगो की धारणा है कि धर्मोपदेश सुन लेने से ही आत्मा पवित्र हो जाएगी। पर इस भ्रम को आज दूर कर देना चाहिए। धर्मोपदेश के श्रवण का फल यह है कि आपके अन्त करण मे तत्त्व का ज्ञान जागृत हो। उस तत्त्वज्ञान के प्रकाश मे आप हिताहित का निर्णय करे और अहित के मार्ग को त्याग कर हित के मार्ग पर चले। बिना क्रिया के श्रवण या ज्ञान पूर्ण लाभप्रद हो सकता। आप धर्म का जो उपदेश सुनते है सो सिर्फ सुनने के लिए ही न सुने बल्कि उसे यथाशक्ति अमल मे लावे। धर्म मुख्य रूप से आचरण करने की वस्तु है। अतएव आप जो धर्मोपदेश सुनते है, उसका आचरण कीजिए।

अन्तगडसूत्र मे जो आदर्श बतलाये है, उनका पालन वीर क्षत्रिय ही कर सकते है। आप लोग भी क्षत्रिय ही है, मगर बनिया बन रहे हैं। आपको बनिया नही बनाया

गया था, महाजन बनाया गया था। परन्तु आज आपकी वीरता और धीरता कहाँ गई ? आज आपको जब बनिया कहा जाता है तब भी आपका क्षत्रित्व जोश नही खाता ? पूर्वकालीन वीरता जागृत करने के लिए आपको अन्तगड-सूत्र सुनाया गया है। जिसकी कथा आपने सुनी है और मैंने सुनाई है, उन्होने प्रबल पुरुषार्थ करके अपनी सम्पूर्ण अशुद्धता हटा दी और अनन्त मगल प्राप्त किया। अभी आपके और हमारे कर्मों का नाश होना शेष है। हमे अपनी तमाम आत्मिक विकृतियों को दूर करना है। इस महान् उद्देश्य को सफल करने के लिए हमें आदर्श महा-पुरुषो के पथ का अनुसरण करना चाहिए। उस पथ को समझने के लिए ही कथाओ का कथन और श्रवण किया जाता है।

अन्तगडसूत्र में, अन्त मे दस महारानियो की जो कथा है, वह अत्यन्त गभीर है और जैनधर्म की कथाओ पर शिखर के समान है। यह दसो महारानियाँ वैभव और भोगो मे डूबी हुई थी। ससार के सर्वश्रेष्ठ भोग उन्हे सुलभ थे। कभी किसी वस्तु का अभाव उन्होने जाना ही नही था। लेकिन भगवान् महावीर के प्रताप से उन्होंने समस्त भोगो का परित्याग कर दिया। वे साध्वियाँ हो गई और आध्यात्मिक साधना मे लीन रहने लगी। भिक्षा द्वारा अपना शरीर निर्वाह करने लगी। इनमे से भी कृष्णा महा-रानी के चरित का स्मरण करके तो रोमाच हो आता है। कहाँ राजसी वैभव और कहाँ दुष्कर तप ! कहाँ उनकी फूल-सी कोमल काया और कहाँ पद-पद पर परिषहो का सहन करना ! कैसी अनोखी उत्क्राति का सदेश है !

मै धर्मशास्त्र सुना रहा हूं, इतिहास नही सुना र
हूं। जिसके हृदय मे भक्ति है वह तो धर्मशास्त्र की क
को ऊची समझेगा ही, परन्तु लोकदृष्टि से देखने वाला
इतना अवश्य कहेगा कि राजरानी साध्वी बने—स्वेच्छा
भिक्षुणी के जीवन को अगीकार करे, यह कल्पना ही कित
उच्च है! जिस मस्तिष्क ने यह कल्पना की है वह व
असाधारण नही होगा ?

जैनधर्म और बौद्धधर्म की कथाओ से विदित हो
है कि भारतवर्ष मे अनेक राजरानियाँ साध्वी बनी है
महाराजा अशोक की बहिन भी भिक्षुणीसघ मे प्रविष्ट
थी। सुना जाता है कि उसके नाम का पीपल आज
सीलोन मे विद्यमान है। ऐसी साध्वियाँ जब ससार मे घू
घूम कर जनता को जागृत करती होगी, तब भारत मे अ
भारत के प्रति दूसरे देशो मे किस प्रकार की भावना उत्प
होती होगी, यह कौन कह सकता है! सचमुच भारत
इतिहास का वह स्वर्णकाल अनूठा था! एक राजरा
स्वेच्छापूर्वक वैभव को लात मार कर भिक्षुणी बनती अ
घर-घर फिरती है! जीवन के किसी अभाव ने उसे भिक्षु
बनने को बाध्य नही किया था। किसी अपूर्व अन्त प्रेरण
से प्रेरित होकर ही उन्होने ऐसा किया था। और ऐ
करके वे क्या दुखी थी? नही। भोगो मे अतृप्ति
त्याग मे तृप्ति थी। भोगो मे असतोप, ईर्षा और कलह
कीटाणु छिपे थे, त्याग मे सतोप की शाति थी, निराकुल
का अद्भुत आनन्द था, आत्मरमण की स्पृहणीयता थी
इसी सुख का अनुभव करती हुई वह भिक्षुणियाँ अपने जी
को दिव्य मानती थी। उनका त्याग महान् था।

आप कितने भाग्यशाली हैं कि यह महान् आदर्श आपके सामने उपस्थित है। आप पूर्ण रूप से अगर इस आदर्श पर नही चल सकते तो भी उसी ओर कदम तो बढा सकते है। कम से कम विपरीत दिशा मे तो न जाए। मगर आप इस ओर कितना लक्ष्य देते हैं? आपसे तो अभी तक बारीक वस्त्रों का भी मोह नही छूट सकता। इन वस्त्रो के लिए चाहे किसी की चमडी जाती हो, पर आप पतले कपडे नही छोड सकते। अगर आप इतना-सा भी त्याग नही कर सकते तो राजसी वैभव और राजसी भोगो का त्याग करने वाले सन्तों और ऐसी ही सतियो का चरित सुनकर क्या लाभ उठाए गे? क्या आपको उन त्यागमूर्त्ति महासतियो का स्मरण भी आता है?

महासेन कृष्णा विदुसेन कृष्णा,
राम कृष्णा शुद्धमेवजी।
नित-नित बदूं रे समणी,
त्रिकरण-शुद्ध त्रिकालजी,

कवि ने यह वदना किस काली को की है? और आप यह वदना किस काली को कर रहे हैं? भारत की इन महाशक्तियो को भगवान् ने किस भाव से शास्त्र मे स्थान दिया है? आप इन सतियो को किस प्रकार वदना कर सकते हैं? सासारिक भोगो के प्रति हृदय मे जब तक तिरस्कार की भावना उत्पन्न न हो जाय तब तक मनुष्य इन्हे वन्दना करने का सच्चा अधिकारी किस प्रकार हो सकता है? हम किसी के कहने से या भावावेश में आकर उन सतियो के नाम पर चाहे मस्तक झुका ले, किन्तु वास्तव मे उन्हे वन्दना करने योग्य तभी समझे जाए गे,

जब उनके त्याग को पहिचानेगे। उनके त्याग को पहचान कर वदना करने पर आपके पाप जलकर भस्म हो जाएंगे।

सेठानियाँ, सेठानियो को तो बहिन बनाती है, मगर किसी दिन किसी गरीबनी को भी बहिन बनाया है ?

काली और सुकाली के हृदय मे अपना कल्याण करने की भावना उत्पन्न हुई। तब वे कहने लगी—'यह राजमहल आत्मा के लिए कारागार है और यह बहुमूल आभरण हथकड़ियाँ—वेडियाँ है। इनके सेवन से आत्मा अशक्त बनता है, गुलाम बनता है। ऊपरी सजावट के फेर मे पडकर हम आन्तरिक सौन्दर्य को भूल जाते है। स्वाभाविकता की ओर अर्थात् आत्मा के असली स्वरूप की ओर हमारी दृष्टि ही नही पहुच पाती। ससार के भोगोपभोग और सुख के साधन असलियत को भुलाने वाले है। यह इतने सारहीन है कि अनादिकाल से अब तक भोगने पर भी आत्मा इनसे तृप्त नही हो पाया। अनन्तकाल तक भोगने पर भी भविष्य में तृप्ति होने की सभावना नही है। अलबत्ता, इन्हे भोगने के दड—स्वरूप नरक और तिर्यंच गतियो के घोर कष्ट सहन करने पडते है। इन भोगविलासो के चक्कर मे पडने वाला स्वार्थी बन जाता है। वह अपनी ही सुख—सुविधा का विचार करता है और अपने दीन-दुखी पडौसी की तरफ नजर भी नही डालता।'

रानियाँ कहती है—'जिन गरीबो की बदौलत हम राजरानी कहलाती है, उन्ही गरीबो को हमने भुला रक्खा है। यही नही, वरन् एक प्रकार से उनके प्रति वैर-विरोध कर रक्खा है। राजमहल मे रह कर हम उन बहिनो से नही मिल सकती, जिन्होने हमे महारानी बनाया है। इन

चकाचौध करने वाले गहनों और कपडों के कारण वे हमारे पास नही आ सकती—नजदीक आते डरती है ।'

अगर कोई स्त्री फटे–पुराने कपडे पहनकर किसी महारानी से मिलने जाना चाहे तो क्या पहरेदार उसे भीतर घुसने देंगे ? नहीं । अगर धक्के मार कर न भगा देगे तो डाट-फटकार बताये बिना भी नही रहेगे । मगर रानी से पूछा जाय कि तुमने जो वस्तु और आभूषण धारण किये है सो वे आये कहाँ से हैं ? वे गरीबो के पसीने से ही बने है या राजा की तिजोरी में उगे हैं ? रानी इस प्रश्न का क्या उत्तर देगी ?

यह बात सिर्फ रानी–महारानी को ही लागू नही होती । बढिया और कीमती गहने–कपड़े पहनने वाला, फिर वह कोई भी क्यो न हो, बढिया गहनो–कपडो वालो को ही चाहता है । उसे बिना जेवर का गरीब प्यारा नही लगता । यही विकार है । बढिया वस्त्रो मे और आभूषणो मे अगर विकार न हो तो भगवान् महावीर को शायद ही सादा वेश चलाने की आवश्यकता पडती । जिसकी मैत्री-भावना विकसित हो गई है, उसी के हृदय मे इस प्रकार की सद्भावनाए जागृत होती हैं और वही वस्त्र–आभूषण का त्याग करता है ।

महारानी काली के हृदय मे मित्रभावना विकसित हुई । अतएव उन्होने विचार किया—मुझे अपनी सब बहिनो से समान रूप से मिलना चाहिए । मेरे और उनके बीच मे जो बडी दीवाल खडी है, उसे मैं गिरा दूंगी । मैं सारे भारत को जगाना चाहती हूं और भेदभाव की काल्पनिक दीवालो को धूल मे मिला देना चाहती हू । यह विचार

कर महारानी काली ने उत्तम वस्त्र उतार कर सादे वस्त्र धारण किये, इन्द्रानी सरीखा मनोहर श्रृंगार हटा दिया और जिस केशराशि को बड़े चाव से सजाया करती थी और सुगन्धित तेल-फुलेल से नहलाया करती थी, उसी केशराशि को नौच कर फेंक दिया। उन्होंने स्वदेश की बनी सादी खादी से अपना शरीर सजा लिया। महारानी काली ने साध्वी होकर सफेद वस्त्र धारण किये।

आज अगर कोई विधवा बाई भी सफेद वस्त्र धारण कर लेती है तो होहल्ला मच जाता है। काली रानी का वह तेज आज बहिनों मे नही रहा। न जाने कब और कैसे गायब हो गया है ?

आखिर काली रानी ने ससार त्याग दिया। ससार त्याग कर उन्होने जो अवस्था अपनाई, वह वर्णनातीत है। महाकृष्ण काली नामक सती ने आंबिल तपस्या करना आरम्भ किया। चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिनो तक आंबिल तप करके उन्होंने अपनी कोमल और कान्त काया को झुलसा डाला। एक उपवास और उसके बाद आंबिल, फिर उपवास और दूसरे दिन फिर आंबिल, इस प्रकार उनकी तपस्या निरन्तर जारी रही।

'आंबिल' प्राकृत भाषा का शब्द है। सस्कृत मे इसे 'आचाम्ल' व्रत कहते है। इस व्रत का अनुष्ठान करने वाला सरस भोजन का त्याग करके नीरस और नमकहीन रूखा-सूखा भोजन करता है। पके हुए चावलो को पानी से धोकर उन्हे स्वादहीन बना कर दिन भर मे एक बार खा लेना और फिर दूसरे दिन उपवास करना, यह महासती काली का तप था।

मित्रो ! आपके यहाँ ऐसी शक्तियाँ भरी पडी हैं। फिर भी न मालूम क्यो आप मे बल नही आता ! आप मेरी दी हुई मात्रा का सेवन करो। चाहे यह कटुक हो पर इससे रोग का अवश्य ही विनाश होगा, इस मे सन्देह नही।

काली महासती अपने समस्त स्वर्गोपम सुखो को तिलाजलि देकर यह घोर तपस्या किस उद्देश्य से कर रही थी ?

'कर्मक्षय करने के लिए !'

यह उत्तर है तो ठीक, परन्तु आप पूरी तरह नहीं कह सकते। इस कारण इतनी-सी बात कह कर समाप्त कर देते हैं। कर्म का अर्थ दुष्कर्म समझना चाहिए। महासती विचारती हैं-- मैंने उत्तम से उत्तम भोजन खाया और इसी कारण अनेक गरीवो को दुत्कारा, मुसीबत मे डाला और अधिक गरीब बनाया है। यही मेरा दुष्कर्म है। इसका बदला चुकाने के लिए ही उन्होने बढिया कपडो का और उत्तम भोजन का त्याग करके सादे कपडे पहने और नीरस भोजन किया।

काली महारानी सफल कियो अवतार।
पायो छे भव-जल पार ॥काली०॥
कोणिक राजा की छोटी माता,
श्रेणिक नृप नी नार।
वीर जिणन्द की वाणी सुन ने,
लीनो है संयम-भार ॥काली०॥
चन्दनबाला सती मिली है गुरानी।

नित २ नमी चरणार, विनय कभी भणी
अंग इग्यारा जारी निर्मल वुद्धि अपार ॥काली०॥१॥

महासती काली कहती है कि मैने वढिया भोजन खाकर और वढिया कपडे पहन कर वहुत लोगो के साथ परोक्ष रूप से विरोध किया है। जिन गरीवों की कृपा से उत्तम वस्त्र और भोजन की प्राप्ति होती थी, उन गरीवो को मैने धक्के दिलवाये और निकम्मे, मसखरे लोग पड़े पडे माल खाते रहे। गरीवो के घोर परिश्रम के फलस्वरूप ही हमे दूध, घी, शक्कर और चावल आदि वस्तुएं प्राप्त होती थी, मगर जब उन्ही गरीवो मे से कोई मुट्ठी भर आटे की आशा से मेरे पास आता था तो उसे आटे के वदले धक्के मिलते थे कि दूध, घी और चावल-शक्कर खाने वालों को नजर न लग जाय!

मैं जब वच्चा था तब भोजन करते समय अगर भीलनी आ जाती तो किवाड वन्द कर जिमे जाते थे। इसका कारण यह था कि भीलनी को डाकिनी समझा जाता था। तारीफ यह है कि अनाज उन्ही के यहाँ से आता था। वही अनाज पैदा करते थे और उन्ही के प्रति ऐसी दुर्भावना थी। यह दुर्भावना किसी एक घर या कुटुम्व मे नही थी वरन् व्यापक रूप से घर-घर फैली हुई थी। आज सोचता हू—समाज का यह कितना जवर्दस्त अन्याय है! कितनी भीषण कृतघ्नता है!

अमीर लोग गरीवो को दुत्कारते हैं और दूसरे अमीर के आने पर उसकी मनुहार करते है। अपने पाप का प्रायश्चित्त करते हुए एक महाराष्ट्रीय कवि ने कहा है—

उत्तम जन्मा येऊनी रामा ! गेलो मीं वाया
दुष्ट पातकी शरण मीं आलो,
सत्वर तव पाया ।
आर्जविले बहुलवण भजने व्याह्या जेवाया
खुधित अतिथि कर्दी नाहीं घेतला,
उदार कर कधीं केला नाहीं प्रेमे जेवाया पैसा एक द्याया
नाम फुकटचे तेहि न आलें स्वामी वदनाया ।।उत्तम।।१।।

कवि कहता है—मैंने उत्तम जन्म व्यर्थ गँवा दिया। मेरा नाम उत्ताम है, जन्म उत्ताम कुल मे हुआ है, परन्तु काम मैंने अधम किये। इस कारण मैं पातकी हू।

मित्रो ! जिसे आत्मा और परमात्मा पर विश्वास होगा, वही अपना अपराध स्वीकार करेगा, उसके लिए पश्चात्ताप करेगा और उससे बचने की भावना आएगी।

कवि परमात्मा के सामने अपनी आलोचना करता हुआ कहता है—प्रभो ! मैं आपकी शरण आया हू। मेरी रक्षा करो। मैंने अपने सगे-सम्बन्धियो को पाहुने बनाकर जिमाने की बडी-वडी तैयारिया की। तरह-तरह के व्यजन और मिष्ठान तैयार करवाए। वे जीमने वैठे। जीमते-जीमते तृप्त हो गए और कहने लगे—वस, अब मत परोसिये। अव एक कौर भी नही निगल सकता। लेकिन वडप्पन के मद मे छक कर मैं नही माना। थोडा और खाने का आग्रह किया। न माने तो जवर्दस्ती करके थाल मे भोजन डाल दिया। फिर मुँह मे पकड कर खिलाया। उसी समय क्षुधा से पीडित व्यक्ति मेरे द्वार पर आया। भूख से उसकी आँखे निकल रही थी, विना मास के हाडो का पीजरा सरीखा उसका शरीर दिखाई देता था। जिस समय

सगे—सम्बन्धी भोजन परोसने के लिए मना कर रहे थे और मैं जबर्दस्ती उन्हे परोसने मे लगा था, ठीक उसी समय वह भूखा द्वार पर आया। उसने कहा—मेरे प्राण अन्न के अभाव मे भूख के मारे जा रहे हैं अगर थोडा भोजन हो तो दे दो' परन्तु हाय मेरी कठोरता ! मैंने टुकड़ा भी देने की भावना नही की और सगे-सम्बन्धी के गले ठूंसने मे ही व्यस्त रहा।

मित्रो ! कवि ने अपने पाप का प्रदर्शन किया है और ऐसा करके उसने अपने पाप को हल्का कर लिया है, ऐसा समझ लेना उपयुक्त नही होगा। कवि जनता की भावनाओं का प्रतिनिधि होता है। वह समाज की स्थिति का शाब्दिक चित्रण करता है। अतएव उसके कथन को समाज का चित्र समझना चाहिए। इस दृष्टि से मराठी कवि का उपर्युक्त कथन सारे समाज का चित्रण है—सपूर्ण समाज के पाप का दिग्दर्शन है। आप अपने ऊपर इस कथन को घटाइए। अगर आप पर वह घटित होता हो तो आप भी अपने दुष्कर्मों की आलोचना कीजिए और उनसे बचने का दृढ सकल्प कीजिए।

भूख के कारण जिसके प्राण निकल रहे हैं, उसे एक टुकडा मिल जाय तब भी उसके लिए बहुत है। मगर लोगो को उसकी ओर ध्यान देने की फुर्सत ही कहाँ ? आजकल के लोगो मे इतनी क्षुद्र, सकीर्ण और स्वार्थमय भावना घुसी हुई है, तिस पर भी धर्म के नाम पर इसी प्रकार का उपदेश मिल जाता है। बडे खेद की बात है कि लोगो को यह धर्म सिखलाया जा रहा है कि—

कोइ भेखधारी आवे द्वार जी,
शर्मा शर्मी दीजे आहार जी।
पीछे कीजे पश्चात्ताप जी,
तो थोडो लागे पाप जी ॥

खेद ! धर्म के नाम पर कैसा हलाहल विष पिलाया जा रहा है। अगर द्वार पर आये हुए को लोकलाज के कारण भोजन दिया तो घोर पाप लग जाएगा ! ! अलबत्ता, भोजन देकर अगर पश्चात्ताप कर लिया जाय तो पाप में कुछ कमी हो जाएगी ! स्वार्थपरता की हद हो गई ! धर्म के नाम पर यह जो शिक्षा दी गई है और दी जा रही है उससे धर्म को कितना आघात पहुंच रहा है, यह समझने की चिन्ता किसे है ? इससे लोग धर्म के प्रति घृणा करने लगते हैं और कहते हैं कि धर्म अगर इतनी निर्दयता, कठोरता, स्वार्थपरायणता और अमानुषिकता की शिक्षा देता है, तो धर्म का ध्वस हो जाना ही जगत् के लिए श्रेयस्कर है ! भाइयो, जरा उदारतापूर्वक विचार करो। धर्म के मौलिक तत्त्व को व्यापक दृष्टि से देखो। द्वेष से प्रेरित होकर हम यह नही कह रहे है, परन्तु धर्म के प्रति फैलती हुई घृणा का विचार करके और साथ ही लोगो मे आई हुई अनुदारता का ख्याल करके कह रहे है। यह धर्म नही है। धर्म के नाम पर अधर्म फैलेगा तो धर्म बदनाम होगा। अधर्म फैलाने वालो का भी हित नही होगा। अतएव निष्पक्ष दृष्टि से धर्म के स्वरूप पर विचार करो। धर्म ही पापो का नाश करने वाला है। अगर धर्म के ही नाम पर पाप किया जाएगा और उसी को धर्म समझ लिया जाएगा तो पापो का नाश किस प्रकार होगा ?

आपने अपने सम्बन्धियो को अनेक बार भोजन कराया होगा, पर याद आता है कि किसी दिन किसी गरीब को स्नेही–सम्बन्धियो की तरह जिमाया हो ?

'नही !'

लेकिन पुण्य किधर होता है ? अपनी श्रीमताई दिखाने के लिए सगे को जबर्दस्ती खिलाने से पुण्य का बध होता है या गरीब के प्राण बचाने के लिए उसे खिलाने से ?

'भूखे को खिलाने से !'

यह जानते और मानते हुए भी अपनी प्रवृत्ति बदलते क्यो नही ? फिर कहते हो कि हम पुण्य और पाप को जानते है ?

बात काली महारानी की चल रही है। उनके अन्त -करण मे वह भावना उत्पन्न हुई कि मैने उत्तम-उत्तम भोजन किये परन्तु गरीबो को देना तो दूर रहा, उ-टे उनकी नजर पडने से बचाव किया । अलबत्ता, मैंने अपनी सरीखी रानियो को बडे प्रेम से जिमाया है, पर उससे क्या हुआ ? वह तो मोह था या लोकव्यवहार था, दया नही थी । हृदय मे दया होती तो भूखे को खिलाया होता ! मैने यह पाप किया है। मैं इस पाप को सहन नही करूँगी। अब मैं ऐसा भोजन करूँगी जिसे गरीब भी पसद नही करते । ऐसा भोजन करके मैं ससार को दिखला दूँगी कि इस पाप का प्रायश्चित्त ऐसे होता है !

मित्रो ! बढ़िया भोजन की अपेक्षा सादा भोजन करने से दया कितनी अधिक हो सकती है, इस बात पर विचार करो । आपके घर बाजरे की घाट बनी होगी और

वह बच रहेगी तो किसी गरीब को देने की इच्छा हो जाएगी। अगर दाल का हलुआ बचा होगा तो शायद ही कोई देना चाहेगा! उसे तो किसी सम्बन्धी के घर भेजने की इच्छा होगी। इसलिए तो कहा है—

दया धर्म नावे तो कोई पुण्यवत पावे,
जाँने दया की बात सुहावेगी।
भारी कर्मी अनन्त ससारी,
जाने दया दान नहि आवे जी॥

विचार करो कि पुण्यवान कौन है? मिष्टान्न-भोजन करने वाला और अपने भोजन के लिए अनेको को कष्ट मे डालने वाला पुण्यवान् है या सादा भोजन करके दूसरो पर दया करने वाला पुण्यवान् है? सुनते है भारतीयो की औसत आमदनी डेढ आना प्रतिदिन है। इसे देखते हुए अगर प्रत्येक आदमी डेढ आने मे अपना निर्वाह करे तब तो सब को भोजन मिल सकता है, लेकिन आप कितने आने प्रतिदिन खर्च करते है? आपका काम तीन आने, छह आने या बारह आने मे भी चल जाता है?

'नही!'

अगर कोई चलाना चाहे तो चल क्यो नही सकता? हाँ, इतने व्यय मे वह मौज-शौक नही होगी, जो अभी आप कर रहे हैं। जब प्रति मनुष्य डेढ आने की दैनिक आय है तो तीन आना खर्च करने वाला एक आदमी को, छह आना खर्च करने वाला तीन आदमी को और बारह आना खर्च करने वाला सात आदमियो को भूखा रखता है! इससे स्पष्ट है कि अमीर लोग ज्यो-ज्यो अधिक मौज करते हैं, त्यो-त्यो गरीब ज्यादा तादाद मे भूखे मरते है।

एक लम्बी-चौडी दरी को समेट कर उस पर एक ही आदमी बैठ जाय और दूसरे को नही बैठने दे तो क्या उसका बडप्पन समझा जाएगा ? बडप्पन तो ओरो को बिठलाने मे हैं।

काली रानी कहती है—'मेरे गले मे वह अन्न कैसे उतरा जिसके लिए अनेक मनुष्यो को कष्ट मे पडना पडा।'

इस राजसत्ता ने कैसे-कैसे अनर्थ किये है ! जब मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो जाता है उसे न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म कुछ नही सूझता। एक हार और हाथी के लिए एक करोड अस्सी लाख मनुष्यो का घमासान हो गया ! लडाई तो अपनी मौज के लिए करे और नाम प्रजा की रक्षा का हो !

महासती महासेन कृष्णा एक आबिल एक उपवास, इस प्रकार क्रमश आबिल करती-करती सौ आबिल तक चढ गई। चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन मे उन्होंने अपना शरीर सुखा डाला।

काली महासती राजरानी थी। साध्वी के वेश मे जब वे लोगो के घर शिक्षा के लिए जाती होगी, तब लोगो मे त्याग के प्रति कितनी स्पृहा होती होगी ? लोग त्याग के प्रति कितनी आदरभावना अनुभव करते होगे ? एक राजरानी राजसी वैभव को ठुकरा कर, भोगोपभोगो से मुँह मोडकर, वस्त्रो और आभूषणो को छोडकर जब साध्वी का वेष अगीकार करती हैं, तो ससार को न मालूम कितना उच्च और महान् आदर्श सिखलाती है !

एक भाई ने मेरे शरीर पर खादी देखकर कहा—'पूज्यजी के शरीर पर खादी !' उसे शायद यह सोचकर

आश्चर्य हुआ कि इतने धनिक समाज का आचार्य होकर मैं खादी क्यो पहनूं ? मगर उस भोले भाई को पता नही कि खादी का कितना महत्त्व है ? महावीरचरित्र के अन्त में, उसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य का जीवनचरित दिया गया है। उसमे लिखा है कि आचार्य हेमचन्द्र एक बार अजमेर से पुष्कर गये थे । वहाँ एक श्राविका ने अपने हाथ से सूत कात कर खादी बुनी थी । खादी तैयार हुई ही थी कि हेमचन्द्राचार्य गोचरी के लिए वहाँ पहुचे । श्राविका ने बडी श्रद्धा-भक्ति के साथ आचार्य से खादी लेने की प्रार्थना की । हेमचन्द्राचार्य गुजरात के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल के गुरु थे । आपके विचार से हेमचन्द्राचार्य को खादी लेनी चाहिए थी ? पर यह स्वाग तो आप लोगो को ही सूझता है, उन्हे नही सूझता था ।

हेमचन्द्राचार्य ने बडे प्रेम से खादी का वस्त्र स्वीकार किया । उसे पहिन कर विहार करते-करते वे सिद्धपुर पाटन गये, जहाँ राजा कुमारपाल रहता था । राजा अपने साथियो के साथ उनका स्वागत करने आया । वन्दन-नमस्कार आदि करके कुमारपाल ने कहा—'गुरुदेव, कुमारपाल के गुरु के शरीर पर यह खादी शोभा नही देती ।'

हेमचन्द्राचार्य–मेरे खादी पहनने से तुम्हे लज्जा मालूम होती है ?

कुमारपाल–जी हाँ ।

हेम०—यह खादी मेरे सयम को बढाने वाली है । श्राविका बहिन ने बडे प्रेम से मुझे भेंट की है । ऐसी स्थिति मैं तुम्हे लज्जित होने की क्या आवश्यकता है ? लज्जा तो राजा को तब आनी चाहिए जब प्रजा भूखी

मरती हो और राजा भोगविलास में डूबा रहता हो। उनकी दुरावस्था और अपने आमोद-प्रमोद को देखकर लज्जित होना चाहिए, खादी से शर्मिंदा क्यों होता है ?

आचार्य हेमचन्द्र के इस कथन का राजा कुमारपाल पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने थोड़े ही दिनों मे अपने राज्य मे सुधार कर लिया। राजा के सुधारकार्य को देखकर आचार्य हेमचन्द्र ने उस श्राविका को धन्यवाद देकर कहा-- यह उस बहिन के प्रेम का ही प्रताप है। उसके दिये कपड़े के निमित्त से जो सुधार हो पाया वह मेरे उपदेश से भी होना कठिन था।

महारानी काली जब खादी के कपड़े पहनकर देश में घूमी होगी तब लोगों मे कितनी जागृति हुई होगी ? जनता के हृदय मे कैसी भावना का उदय हुआ होगा ? अगर आप काली की पूजा करते हैं तो उनके त्याग को हृदय में स्थान दो। काली के महान् त्याग को हृदय मे स्थान दोगे तो काली भी हृदय मे आ जाएगी और हृदय भी पवित्र बन जाएगा !

महारानी काली को मानने वाली विधवा बहिन अपने शरीर पर गहने नही रक्खेगी। दीक्षा ले लेना दूसरी बात है। अगर पूर्ण संयम अंगीकार करने की शक्ति हो तो अंगीकार कर लेना ही उचित है। परन्तु इतनी शक्ति न होने की हालत में अगर गहने त्याग दिये तो भी दुःख तो नही होगा। कदाचित् कहा जाय कि घर में नंगे हाथ अच्छे नही लगते, तो यही कहना पड़ेगा कि ऐसा कहने वाले की दृष्टि दूषित है। गहनो मे सुन्दरता देखने वाला आत्मा के सद्गुणो के सौंदर्य को देखने मे अन्धा हो जाता है। त्याग,

सयम और सादगी मे जो सुन्दरता है, पवित्रता है, सात्विकता है, वह भोगो मे कहाँ ? मैं विधवा बहिनो को सम्मति देता हू कि वे घर वालो की ऐसी बातो की परवाह न करके गहनो को त्याग दे—अपने शरीर पर धारण न करे और सादगी के साथ रहे ।

बहिनो ! तुम भी काली की तरह तपस्या करो। इस पर्दे ने तुम्हारे जीवन को तुच्छ बना दिया है । इसके बन्धन को दूर करके अपने कर्त्तव्य का विचार करो ।

भाइयो से भी मैं कहना चाहता हू कि अगर आप भगवान् महावीर की भक्ति करना चाहते है तो काली महासती की शरण लो । काली ने घोर तप करके सारे ससार को मार्ग दिखला दिया है कि सब के लिए तप का मार्ग खुला है । काली की तरह आप भी आयबिल करे तो आपको गरीबो के भोजन का पता चले ।

काली महासती ने मैत्रीभावना की साधना के लिए महान् त्याग किया था । मैत्रीभावना की महिमा अगम-अगोचर है । जिसके अन्त करण मे इस भावना का विकास होता है, उसे अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है । मैत्रीभावना से जो अपने हृदय को आर्द्र बना लेता है उसके लिए सारा ससार नन्दनवन बन जाता है । उस नदनवन मे फिर ऐसे-ऐसे मधुर फल लगते है कि उनका आस्वादन करने वाला ही उनके माधुर्य को समझ सकता है ।

मैत्रीभावना के सम्बन्ध मे आपने बहुत कुछ सुना होगा लेकिन उस पावन भावना को जागृत करने का तरीका कम लोगो को ही मालूम है । अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि मैत्रीभावना का आरभ कहाँ से करना चाहिए ?

चाहे मैत्रीभावना हो या कोई दूसरी शिक्षा हो, उसका आरम्भ घर से ही करना उचित है। फिर क्रमश. उसे व्यापक बनाने की चेष्टा करनी चाहिए।

घर मे माता का स्थान अनोखा होता है। माता ने पुत्र को जन्म दिया है। माता से ही पुत्र को शरीर मिला है। सतान पर माता और पिता का असीम ऋण है। उनके ऋण को चुकाना कठिन है। ठाणागसूत्र मे वर्णन आता है कि गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन्, अगर पुत्र माता-पिता को नहलावे, वस्त्राभूषण पहनावे, भोजन आदि का सब प्रकार का सुख देवे और उन्हे कन्धे पर उठाकर फिरे, तो क्या वह अपने माता-पिता के ऋण से उऋण हो सकता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—

नायमट्ठे समट्ठे

अर्थात्—ऐसा होना सभव नही है। इतना करके भी पुत्र माता-पिता से उऋण नही हो सकता।

इसका आशय यह है कि वास्तव मे माता-पिता के उपकार का बदला इतने से नही चुक सकता। कल्पना कीजिए, किसी आदमी पर करोड रुपयो का ऋण है। ऋण माँगने वाया ऋणी के घर गया। ऋणी ने उसका आदर-सत्कार किया और हाथ जोडकर कहा—मैं आपका ऋणी हू और ऋण को अवश्य चुकाऊँगा। अब आप कहिए कि आदर-सत्कार करने और हाथ जोड़ने से ही क्या ऋणी ऋणरहित हो सकता है ?

'नही।'

एक राजा ने बाग तैयार कराया और किसी माली

को सौंप दिया। माली ने बाग में से दस-बीस फल लाकर राजा को दे दिये, तो क्या वह राजा के ऋण से मुक्त हो गया ?

'नहीं'

मित्रो ! इस शरीररूपी बगीचे को माता-पिता ने बनाया है। उनके बनाये शरीर से ही उनकी सेवा की तो क्या विशेषता हो गई ? यह शरीर तो उन्ही का था। फिर शरीर से सेवा करके पुत्र उनके उपकार से मुक्त किस प्रकार हो सकता है ?

एक माता ने अपने कलियुगी बेटे से कहा—मैंने तुझे जन्म दिया है। पाल-पोसकर बडा किया है। जरा इस बात पर विचार तो कर बेटा !

बेटा नयी रोशनी का था। उसने कहा—फिजूल बडबड मत कर। तू जन्म देने वाली है कौन ? मै नही था तब तू रोती थी और बाझ कहलाती थी। मैंने जन्म लिया तब तेरे यहाँ बाजे बजे और मेरी बदौलत ससार मे पूछ होने लगी। नही तो बाझ समझकर कोई तुम्हारा मुँह भी देखना पसन्द नही करता था। फिर मेरे इस कोमल शरीर को तुमने अपना खिलौना बनाया। इससे अपना मनोरजन किया—लाड़प्यार करके आनन्द उठाया। इस पर भी उपकार जतलाती हो !

माता ने कहा—मैंने तुझे पेट मे रक्खा सो ?

बेटा—तूने जान—बूझकर मुझे पेट मे थोड़े ही रक्खा था ! तुम अपने सुख के लिए प्रयत्न करती थी, बीच मे ही हम रह गये ! इसमे तुम्हारा उपकार ही क्या है ? फिर भी अगर उपकार जतलाती हो तो पेट मे रहने

देने का किराया ले लो !

यह आज की सभ्यता है ! भारतीय सस्कृति आज पश्चिमी सभ्यता का शिकार बनी जा रही है और भारतीय जनता अपनी पूँजी को नष्ट कर रही है ।

माता ने कहा—कोठरी की तरह तू मेरे पेट का भाडा देने को तैयार है, पर मैंने तुझे अपना दूध भी तो पिलाया है !

बेटा—हम दूध न पीते तो तू मर जाती ! तेरे स्तन फटने लगते । अनेक बीमारियाँ हो जाती । मैंने दूध पीकर तुझे जिन्दा रक्खा है !

माता ने सोचा—यह बिगडैल बेटा यो नही मानेगा । तब उसने कहा—अच्छा चल, हम लोग गुरुजी से इसका फैसला करा ले । अगर गुरुजी कहेगे कि पुत्र पर माता-पिता का उपकार नही है तो मैं अब से कुछ भी नही कहूगी । मैं माता हू । मेरा उपकार मान या न मान, मैं तेरी सेवा से मुँह नही मोड सकूँगी ।

माता की बात सुनकर लडके ने सोचा—शास्त्रवेत्ता तो कहते ही है कि मनुष्य कर्म से जन्म लेता है और पुण्य से पलता है । इसके अतिरिक्त गुरुजी माता-पिता की सेवा करने को एकान्त पाप भी कहते है । फिर चलने मे हर्ज ही क्या है ?

यह सोच कर लडके ने गुरुजी से फैसला करवाना स्वीकार किया । वह गुरुजी के पास चला गया । परन्तु माता के गुरु दूसरे ही थे । वे उन गुरु कहलाने वालो मे नही थे जो माता-पिता की सेवा करना एकान्त पाप बतलाते

है। दोनों माता-पुत्र गुरुजी के पास पहुंचे। वहाँ माता ने पूछा 'महाराज, शास्त्र मे कही माता-पिता के उपकार का भी हिसाब बतलाया है या नही?' गुरु ने कहा– जिसमे माता-पिता के उपकार का वर्णन न हो वह शास्त्र ही नही। वेद में माता-पिता के सम्बन्ध मे कहा है—

मातृदेवो भव पितृदेवो भव।

ठाणांगसूत्र मे भी ऐसी ही बात कही गई है।

गुरु की बात सुनकर माँ ने पूछा–माता–पिता का उपकार पुत्र पर है या पुत्र का उपकार माता–पिता पर है?

गुरु ने ठाणांगसूत्र–निकाल कर बतलाया और कहा–बेटा अपने माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता, चाहे वह कितनी ही सेवा करे।

गुरु की बात सुनकर पुत्र अपनी माता से कहने लगा–देख तो, शास्त्र में यही लिखा है न कि सेवा करके पुत्र, माता-पिता के उपकार से मुक्त नहीं होता! फिर सेवा करने से क्या लाभ है?

पुत्र ने जो निष्कर्ष निकाला, उसे सुनकर गुरु बोले–मूर्ख, माता का उपकार अनन्त है और पुत्र की सेवा परिमित है। इस कारण वह उपकार से मुक्त नही हो सकता। पावनेदार जब कर्जदार के घर तकाजा करने जावे तब उसका सत्कार करना तो शिष्टाचार मात्र है। उस सत्कार से ऋण नही पट सकता। इसी प्रकार माता-पिता की सेवा करना शिष्टाचार है। इतना करने मात्र से पुत्र उनके उपकारों से मुक्त नही हो सकता। पर इससे यह मतलब नही निकलता कि माता-पिता की सेवा ही नही करनी चाहिए। अपने धर्म का विचार करके पुत्र को माता-पिता की सेवा

करना ही चाहिए । माता-पिता ने अपने धर्म का विचार कर तेरा पालन-पोषण किया है । नही तो क्या ऐसे माता-पिता नही मिल सकते जो अपनी सतान के प्राण ले लेते हैं ?

गुरु की बात सुनकर माता को कुछ जोर बँधा । उसने कहा— अब सुन ले कि मेरा तुझ पर उपकार है या नही !' इसके बाद उसने गुरुजी से कहा महाराज, यह मुझ से कहता है कि तू ने पेट मे रक्खा है तो उसका भाडा ले ले । इस विषय मे शास्त्र क्या कहता है ?

प्रश्न सुनकर गुरुजी ने शास्त्र निकाल कर बतलाया । उसमें लिखा था कि गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर भगवान् ने उत्तर दिया कि इस शरीर मे तीन अ ग माता के, तीन अ ग पिता के और शेष अ ग दोनो के है । मास, रक्त और मस्तक माता के है, हाड, मज्जा और रोम पिता के हैं, शेष भाग माता और पिता दोनो के सम्मिलित है ।

माता ने कहा— बेटा ! तेरे शरीर का रक्त और मास मेरा है । हमारी चीजे हमे दे दे और इतने दिन इनसे काम लेने का भाडा साथ ही चुकता कर दे ।

यह सब सुनकर बेटे की आँखे खुली । उसे माता और पिता के उपकारो का खयाल आया तो उनके प्रति प्रबल भक्ति हुई । वह पश्चात्ताप करके कहने लगा— मैं कुचाल चल रहा था । कुसगति के प्रभाव से मेरी बुद्धि मलीन हो गई थी । इसके बाद वह गुरुजी के चरणो मे गिर पडा । कहने लगा— माता-पिता का उपकार तो मै समझ गया पर उस उपकार को समझाने वाले का उपकार समझ सकना कठिन है ! आपके अनुग्रह से मै माता-पित

का उपकार समझ सका हू ।

शास्त्रो मे आचार्य और सेठ का भी उपकार बतलाया गया है। सेठ का अर्थ है– सहायता देने वाला। गिरी हुई अवस्था मे जो सहायता करता है वह सेठ है और मनुष्य को उसका उपकार मानना चाहिए ।

धर्माचार्य के उपकार के सम्बन्ध मे शास्त्र में उल्लेख है कि गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से यह प्रश्न किया– प्रभो यदि धर्माचार्य के ऊपर आई हुई आपत्ति दूर कर दी जाय, उन्हे वन्दना की जाय, उनकी भोजन आदि द्वारा सहायता की जाय, तो ऐसा करने वाला धर्माचार्य के ऋण से मुक्त हो जाता है या नही ? तब भगवान् ने उत्तर दिया– नही, ऐसा नही हो सकता ।

मित्रो ! माता-पिता का सतान पर बडा ऋण है । इस ऋण को चुकाने के लिए धर्म के सहायक बनो। उन्होने धर्म से तुम्हारी रक्षा की थी, इसलिए अपने धर्म का मूल्य समझकर धर्म के सहायक बनो ।

कहने का आशय यह है कि अपनी मैत्रीभावना का विश्वव्यापी प्रसार करने के लिए सर्वप्रथम माता-पिता के प्रति यह भावना लाओ । माता-पिता के बाद भाई के प्रति मैत्रीभाव आता है । भाई से मैत्रीभाव रखने के लिए राम का इतिहास देखो, जिन्होने अपने अधिकार का राजमुकुट अपने भाई को प्रसन्नतापूर्वक सौप दिया। यही नही, उन्होने भाई के प्रभाव को अक्षुण्ण रखने के लिए वनवास स्वीकार किया और दशरथ को समझाया कि आप दुविधा मे न पड कर भरत को राज्य दे दीजिए। आपके लिए राम और भरत भिन्न-भिन्न नही होने चाहिए । जो कुछ क्लेश है वह

मेरे-तेरे के भेदभाव में ही है। मैं माता कैकयी के हृदय में घुसे हुए भेदभाव को जड से उखाडना चाहता हूं। जैसे दाहिनी और बांई आंख में भेद नहीं किया जाता, इसी प्रकार मुझ में और भरत मे भी भेद नही होना चाहिए। भरत का राज्य करना मेरा राज्य करना है। भरत राजा होंगे तो मैं राजा होऊंगा। और मै राजा बनूंगा तो भरत राजा होंगे।

आज भाई-भाई मुकदमाबाजी में पडकर हजारों-लाखों रुपया नष्ट कर डालते है। सुनते हैं, एक गोदी के मुकदमे मे सत्तारह लाख रुपया पूरे हो गये हैं! ऐसे लोग मैत्रीभावना की आराधना किस प्रकार कर सकते है? जो अपने सगे बन्धु को बैरी समझता है वह विश्वबन्धुता का पाठ कैसे सीख सकता है?

भाई के बाद पुत्र, पुत्री आदि परिवार के साथ मैत्री-भावना स्थापित होती है। सारे परिवार पर समान स्नेह रखना पारिवारिक मैत्रीभावना है। यह मेरा लडका है, यह मेरे भाई का लडका है, इस तरह का पक्षपात करना जघन्य मनोवृत्ति है। जिसकी भावना इतनी जघन्य और सकीर्ण होगी वह विश्वमैत्री के विशालतर प्रागण मे पैर नही रख सकेगा।

परिवार के प्रति मैत्रीभावना साध लेने के पश्चात् समानधर्मी के प्रति मित्रभावना स्थापित करना चाहिए। सब समानधर्मियो को अपना भाई समझो और उन्हे अपने से अभिन्न मानो और अपने को उनसे अभिन्न समझो। सहधर्मी की सहायता करके उसे अपना-सा वना लेने के वाद ही तुम दूसरो की सहायता कर सकोगे।

इस प्रकार क्रमश अपनी भावना का विकास करते चलने से एक समय आपकी भावना प्राणीमात्र के प्रति आत्मीयता से परिपूर्ण बन जाएगी, आपका 'अह' जो अभी सीमित दायरे मे गाठ की तरह सिमटा हुआ है, बिखर जाएगा और आपका व्यक्तित्व विराट रूप धारण कर लेगा। उस समय जगत् के सुख मे आप अपना सुख समझेगे।

प्रश्न किया जा सकता है– अर्जुन* माली ने छह युवको को मार डाला था, इस कारण वह बुरा माना जाता है और सुदर्शन सेठ की बडाई की जाती है। परन्तु अर्जुन माली के सामने जैसी परिस्थिति थी वैसी ही परिस्थिति अगर सुदर्शन सेठ के सामने होती अर्थात् जैसे अर्जुन माली के सामने ही उसकी पत्नी के साथ बलात्कार किया गया था वैसी ही परिस्थिति अगर सुदर्शन सेठ के सामने होती तो उस समय सुदर्शन का क्या कर्त्तव्य होता।

क्षमा तीन प्रकार की होती है– तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी। तमोगुणी क्षमा वाले वे लोग है जो अपनी स्त्री के साथ बलात्कार करते देख हृदय मे क्रोध तो करते हैं, मगर भय के मारे सामना नही करते। यह तमोगुणी क्षमा प्रशस्त नही है, यह कायरता है, घृणित है और नपुसकता है। अर्जुन माली का कार्य ससार का नाशक नही, अत्याचारी को दण्ड देना है और वह दूसरे अत्याचारियो के ऐसे दुस्साहस को रोकने के लिए किया गया था। हमारा उपदेश तो ऐसी क्षमा के लिए है जैसी क्षमा सुदर्शन सेठ ने अर्जुन माली के प्रति धारण की थी। वह सतोगुणी

---

*विशेष परिचय पाने के लिए किरणावली की प्रथम किरण का ८वाँ व्याख्यान देखिए।

क्षमा थी। जिसमें क्रोध तनिक भी उत्पन्न नही होता और क्षमा कर दिया जाता है, वही सतोगुणी क्षमा है। धर्म, अत्याचार-अनाचार को न रोकने की शिक्षा नही देता। धर्म किसी को कायर नही बनाता। धर्म की ओट मे कोई अत्याचार का प्रतीकार न करे या कायरता को छिपाने के लिए धर्म का बहाना करे, यह अलग बात है। मगर जिसने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह समझ लिया होगा वह अपने ऐसे कृत्यो द्वारा धर्म को बदनाम नही करेगा।

बौद्ध ग्रन्थों मे एक कथा आई है। सोमदेव नामक एक ब्राह्मण की आध्यात्मिक भावना बालकपन से ही बढी-चढी थी। अतएव माता-पिता के मरते ही सोमदेव और उसकी पत्नी ने सन्यास ले लिया। स्त्री सुन्दरी थी। दपत्ती वन में रहकर तप किया करते थे। एक बार दोनो नगर में आये। नगर के राजा ने स्त्री को देखा तो उसके चित्त मे विकार पैदा हो गया। वह सोचने लगा— यह रमणी-रत्न गलियो मे क्यो पडा फिरना चाहिए ? यह तो महल की शोभा बढाने योग्य है। यह सोचकर उसने सोमदेव से कहा— यह स्त्री तेरे साथ शोभा नही देती।

सोमदत्त ने कहा—हाँ शोभा नही देती।

राजा तो इसे हम ले जाएँ ?

सोमदत्त मेरी नही है, भले कोई ले जाय।

राजा ने स्त्री से कहा—चलो, हमारे साथ चलो।

स्त्री ने सहज भाव से उत्तर दिया—चलिए, कहाँ चलना है ?

आगे-आगे राजा चला और पीछे-पीछे स्त्री। महल

में पहुंच कर स्त्री ध्यान लगाकर बैठ गई। उसने ऐसा ध्यान लगाया कि कई अनुकूल-प्रतिकूल सत्ताएँ हार गई, मगर उसका ध्यान न टूटा। राजा को अपना पागलपन मालूम हुआ। उसका अज्ञान हट गया। वह उस सन्यासिनी के पैरो मे गिर कर क्षमा माँगने लगा।

स्त्री ने, मानो कुछ हुआ ही नही है ऐसे, सहज भाव से उत्तर दिया—किसने और क्या अपराध किया है, वह मुझे मालूम ही नहीं है। मैं क्षमा क्या करूँ!

आखिर राजा संन्यासिनी को लेकर सोमदत्त के पास गया। सोमदत्त को उसकी स्त्री सौपकर उसने कहा— मैंने आपकी अवज्ञा की है। मेरा यह अपराध है तो गुरुतर, फिर भी मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूं।

सोमदेव ने कहा— जब यह मेरी है ही नही, तब इसमे मेरी अवज्ञा क्या हुई?

इसे कहते है क्षमा! ऐसी क्षमा के द्वारा भी अन्याय-अत्याचार का नाश किया जाता है। अन्याय-अत्याचार के समूल नाश का यह सर्वश्रेष्ठ तरीका है। इस तरीके से अन्यायी और अत्याचारी के हृदय का परिवर्त्तन हो जाता है। परन्तु ऐसी समभावना प्राप्त करने के लिए साधना चाहिए।

सुदर्शन सेठ का सामना होते ही अर्जुन माली का यक्ष भाग खडा हुआ। अर्जुन माली स्वस्थ्य हो गया। उसने सुदर्शन सेठ को धन्यवाद दिया और कहा— मैं आपका भक्त हूं, लेकिन आप किसके भक्त है वह महापुरुष कैसे होगे।

मित्रो ! भगवान् की परीक्षा कभी-कभी भक्त से होती है। भक्त ऐसा होना चाहिए जैसा सुदर्शन सेठ था। सुदर्शन सेठ उस समय बिलकुल महादेव की प्रतिमा बन गये थे। जो आत्मा को ही परमात्मा मानकर उसमे तन्मय हो जाता है, उसकी शक्ति अद्भुत, अपूर्व और आलौकिक हो जाती है।

यक्ष के आवेश से मुक्त होकर अर्जुन माली ने सुदर्शन से कहा– मै आपके इष्टदेव का दर्शन करना चाहता हू।

ग्यारह सौ इकतालीस मनुष्यो की निर्मम हत्या करने वाले घोर हत्यारे को प्रेमपूर्वक गले लगाना और भगवान् के पास अपने साथ ले जाना क्या उचित था ? सुदर्शन सेठ की भावना उस समय कितनी उदार रही होगी ! उन्हे अर्जुन माली के पापो को धोना था। उसका सुधार करना अभीष्ट था। सुदर्शन को ज्ञात था कि भयानक से भयानक पापी की अन्तरात्मा मे भी मगलमूर्ति छिपी हुई है। उसकी बाह्य प्रकृति के उपशान्त होने पर वह मगलमूर्ती प्रकट हो जाती है।

जिसकी भावनाएँ बिगडी हुई है, उनमे उत्तम भावना उत्पन्न कर दो तो धर्म की कितनी सेवा होगी ? आज नीच कहलाने वाले लोगो मे धर्म की बडी आवश्यकता है। उनमे धर्म की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न करो। उनकी सेवा करो। उन्हे सद्भावना के बन्धन मे बाँधो और अच्छी राह पर लाओ। वे भी ईश्वर की मूर्ति है। उनके मैले-कुचैले तन मे और मलीन मन के भीतरी भाग मे ईश्वरत्व छिपा हुआ है। उसकी पहिचान उन्हे करा दो।

अर्जुन माली को साथ लेकर सुदर्शन सेठ भगवान् के

पास पहुंचे । अर्जुन माली पर भगवान् के उपदेश का प्रभाव पडा और उसका अज्ञान दूर हो गया । अर्जुन माली ने मुनिव्रत अगीकार किये । उसने सुदर्शन से कहा—'मैं आपका आभारी हू । आपकी कृपा से ही यहाँ तक पहुच सका हू ।' उत्तर मे सेठ बोले—ऐसा मत कहिए । आप बडे हैं ! मैं कई बार भगवान् के दर्शन कर चुका हूं पर ससार का त्याग नही कर सका और आपने एक बार में ही ससार त्याग दिया ।

अर्जुन ने कहा—मुझ जैसे क्रूर हिंसक पर आपने बडी कृपा की है । मै तो यही नही सोच पाता कि जब मुझ सरीखे अधम को आपने ही सुधार दिया तो जिसे आप नमन करते हैं वह भगवान् कैसे-कैसे पापियों को न तारते होगे !

साधु अर्जुन माली ने बेले-बेले का पारणा करके छह महीने मे ही अपने पापों को भस्म कर डाला ! उन्होने अनेक कष्ट सहन किये और गहरे समभाव की साधना की । जब वह भिक्षा के लिए नगर में जाते तो लोग उन्हे तरह-तरह से सताते थे और कहते थे– हमारे अमुक सम्बन्धी को मारने वाला यह हत्यारा अब साधु बनने का ढोग कर रहा है ! लोगो के मारने पर भी अर्जुन मुनि मुस्किराते रहते । कभी-कभी कहते आप लोग सचमुच वडे दयालु है । मैंने आपके सम्बन्धी की हत्या की थी पर आप मार-पीट कर ही मुझे छोड देते हैं । अर्जुन मुनि का ऐसा अद्भुत समभाव देखकर मारने वाले भी काँप उठे कि मार-पीट से जब इसे दुःख ही नही होता तो मार पीट करने से लाभ ही क्या है ? ऐसा करके हम उलटे पाप मे पडते है । इस प्रकार के विचार करके कई लोग प्रभावित हुए ।

अर्जुन माली की कथा आपने कई बार सुनी होगी। पर जरा विचार करो कि यह कथा अपनी है या अर्जुन माली की ? हम उस समय नही थे जब यह घटना घटी। हम आज हैं और आज हमारे सामने यह कथा है। अगर हमने इस कथा को अपनी ही कथा समझ ली तब तो इसे सुनकर हम अपना कल्याण कर सकते है, अन्यथा कथा सुनना और न सुनना बराबर है। मैं इस कथा को आध्यात्मिक रूप मे घटा कर आपको बताना चाहता हू कि राजगृही नगरी क्या है, छैल, अर्जुन माली, उसकी स्त्री बन्धुमती, यक्ष, सुदर्शन सेठ और भगवान् महावीर कौन है ? और यह कथा कैसे बनी ?

मित्रो ! जहाँ जन्म हुआ है वही राजगृही है। किसी पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से यह शरीर–क्षेत्र मिला है। मन बहुत समय से अर्जुन माली है। मनरूपी अर्जुन की मायारूपी भार्या है। यह भार्या अर्जुन की तो बन कर रही मगर निष्ठा अर्जुन पर नही रही। जहाँ स्वार्थ का लालच देकर किसी ने दवाया, उसी ओर यह जाने लगी। इस मायारूपी स्त्री ने अपने नखरे दिखा–दिखाकर आत्मा को फँसा रखा है। आत्मा ने मिथ्यादेव रूपी यक्ष का इष्ट पकडा था, जिससे वह समय पर मेरी सहायता करे। इस शरीर मे काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि छह शत्रु है। इन छहो को वल–वीर्य रूपी अधिकार मिला। यह स्वच्छन्द क्रीडा करने लगे और जो-जो अनर्थ किये उनका वर्णन नही हो सकता। इन छह शत्रुओ की बदौलत आत्मा को कष्ट पाते-पाते अनन्तकाल हो गया है। यह छह शत्रु जव-जव मस्ती पर आये तव-तव माया इनके पास गई, फिर भी

यह शात नही हुए। मैंने छहो शत्रुओ को मारने की तैयारी की। मैंने यह तो समझ लिया था कि इन्हे मारना उचित है, पर मिथ्या देव की सगति के कारण यह नही समझ सका कि इन्हे किस प्रकार मारना चाहिए? अतएव मैंने कई बार जलसमाधि लेकर, कई बार दूसरी तरह से बाल-मरण से मर कर यह दिखाया कि मैं इन्हे मारता हू, पर वास्तव मे ऐसा करके मैं स्वय ही मरा, शत्रु नही मरे। जैसे अर्जुन यह समझता था कि मै इन छह शत्रुओ को मारता हू, मगर उसे अपनी स्थिति का भान नही रहा, इसी प्रकार मैं भी समझता रहा कि मैं इन छह विकार-शत्रुओ को मार रहा हू, मगर इस तरह मारने का परिणाम क्या होगा, यह मुझे मालूम ही नही था। परिणाम यह हुआ कि शत्रुओ को मारने के पागलपन मे मैंने न जाने कितनो पर अन्याय किया। मुझमे अज्ञान बना ही रहा। इतने मे सौभाग्य से विवेकरूपी सुदर्शन सेठ की सगति मिल गई। उसने सच्चे-झूठे देव का भान कराया, सुकृत्य-कुकृत्य का भेद समझाया, और सुगुरु-कुगुरु की पहिचान कराई। विवेकरूपी सुदर्शन ने मनरूपी अर्जुन माली के सामने ध्यान किया अर्थात् आत्मा को एकाग्र बनाया। विवेक की शक्ति के प्रताप से मन मे विचार आया कि यह तो ईश्वर का दर्शन है! इस प्रकार विवेक-देव के दर्शन होते ही मिथ्यात्व—कुदेवमोहरूपी यक्ष भाग गया। उसके भागते ही आत्मा ने विवेक का हाथ पकड लिया और कहा—मैं तेरी शरण मे हू! अब तुझे नही छोडूंगा।

आय गयो आय गयो आय गयो रे,
मेरे नाथन को नाथ यहां आय गयो रे,

वह तो आके मुझे है जगाय गयो रे,
मेरे नाथन को नाथ यहाँ आय गयो रे,

विवेक को पाते ही आत्मा भगवान् महावीर के समीप आ गया॥

जो तू प्रभु प्रभु मो तू है, द्वैत कल्पना मेटो,
शुध चैतन्य आनन्द विनयचन्द, परमारथ पद भेंटो।

आत्मा और परमात्मा एक हैं, दो नही। विवेक का हाथ पकड लेने से आत्मा को परमात्मा से भेट होती है और फिर आत्मा स्वय परमात्मा के रूप मे प्रकट हो जाता है।

पत्थर की पुतली, कपडे की पुतली और शक्कर की पुतली, यह तीनों स्नान करने गई। पत्थर की पुतली पानी में डूब कर के भी वैसी ही बनी रही। कपडे की पुतली पानी मे भीगी तो सही पर धूप लगने पर फिर ज्यो की त्यों हो गई। शक्कर की पुतली पानी मे डूबकर उसी मे रह गई। इन तीन मे से आप कैसे बनना चाहते हैं? अर्जुन माली परमात्मा के दर्शन करने गया तो स्वय परमात्मा बन गया।

आत्मा और परमात्मा के एक होने की पहिचान यह है। अर्जुन माली को भगवान् महावीर मे मिल जाने के पश्चात् लोगो की थप्पडें खाने की इच्छा हुई। वह थप्पडें मारने वालो के पास विशेष रूप से जाने लगा। यही आत्मा-परमात्मा के एक होने का लक्षण है। जिन्हे आत्मा अब तक तुच्छ समझता था उन्ही से प्रेम करने लगे तो समझ लेना चाहिए कि आत्मा और परमात्मा एक हो गया।

भगवान् महावीर मे मिलकर अर्जुन माली ने अपना सारा हिसाब चुकता कर दिया। वह अपने ऊपर चढे हुए भारी ऋण से मुक्त हो गया। यह कथा सुनकर आप अपना खाता बराबर करेंगे या नही ? जीभ से हाँ कह देना तो सभ्यता मात्र है, अन्त करण क्या कहता है, यह देखना चाहिए।

सवत्सरी के दिन वर्ष भर के पाप की आलोचना की जाती है। अन्त करण मे जमी हुई गदगी को हटा देने का यह पर्व है। सवत्सरी के पश्चात् हृदय निर्मल करके जीवन का नया पथ निर्मित्त होना चाहिए, जिस पर चल कर आत्मा अपने अक्षय कल्याण के परम लक्ष्य को प्राप्त करने मे सफल हो सके। भावना मे पावनता लाने और हृदय को स्वच्छ बनाने के लिए क्षमायाचना की जाती है। यह एक परम पवित्र प्रणाली है। केवल ऊपरी रूप से इसका अनुसरण मत करो वरन् उसकी चेतना को जागृत रक्खो। उसे सजीव रूप मे पालन करो। ऐसा करने से आपका जीवन ऊँची कक्षा मे पहुचेगा और धर्म की भी प्रभावना होगी। क्षमायाचना के लिए महाराज उदायी का दृष्टान्त सामने रक्खो।※ महाराज उदायी ने पराजित और बधन-बद्ध चण्डप्रद्योत का राज्य सवत्सरी सम्बन्धी क्षमायाचना के उपलक्ष्य मे सहर्ष लौटा दिया था। इसे कहते है क्षमायाचना! किसी के अधिकार को दबा रक्खो और फिर उससे क्षमा माँगो तो यह क्षमायाचना के महत्व को बढाना नही, घटाना है।

※ विस्तृत कथा जानने के लिए देखिए—जवाहर किरणावली, किरण ६, बोल १७।

मित्रो ! न मालूम किस पुण्य के उदय से आपको ऐसा संस्कारपूरित वातावरण मिला है ! इस वातावरण की पवित्रता को पहचानो और सांसारिक प्रलोभनों में इतने अधिक मत फँस जाओ कि आत्मा की सुध ही न रहे। प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करते समय उसे धर्म की तराजू पर तौल लो। धर्म इतना अनुदार नहीं है कि वह आपकी अनिवार्य आवश्यकताओं पर पाबन्दी लगा दे। साथ ही इतना उदार भी नहीं है कि आपकी प्रवृत्ति की सराहना करे। धर्म का आश्रय लेकर आप कभी दुखी नहीं होंगे। इसलिए मैं कहता हूं कि अपने जीवन को धर्म के सांचे में ढाल लो। इससे आप कल्याण के पात्र बनेंगे।

बीकानेर,
२६-८-३०

३—आत्मवत् सर्वभूतेषु

पर्युषणपर्व के दिनो मे अन्तगड (अन्तकृत) सूत्र का व्याख्यान किया जाता है। जिस उद्देश्य से गणधरो ने इसकी रचना की है, उसी उद्देश्य से इसका व्याख्यान किया जाता है। जिन महापुरुषो ने अपने अनादिकालीन कर्मों का अन्त किया है, जो समस्त विघ्नो का नाश करके निर्विघ्न हो गये हैं, उन महापुरुषो के चरित का इसे सूत्र में वर्णन किया गया है, अतएव इस सूत्र को 'अन्तगड' कहते हैं। इसमे दस अध्याय है और यह आठवाँ अग है इस कारण इसे 'दशांग' कहते है। इस प्रकार इस सूत्र का पूरा नाम 'अन्तकृत दशांग' है। पर्युषण पर्व का समय कल्याणकारी है, अतएव पर्युषण के आठ दिनों मे यह समझाया जाता है। यो तो इसके सम्बन्ध मे कई विचार है, परन्तु इसे आठ दिनो मे पूर्ण कर देने की परम्परा प्रसिद्ध है और व्यवहार मे भी आ रही है। बडे-बडे महापुरुष इस परपरा का पालन करते हैं और यह परम्परा कल्याणकर है, अत मैं उनका अनुकरण कर रहा हू।

वास्तविक और गम्भीर दृष्टि मे देखा जाय तो इस सूत्र के वर्णन करने का उद्देश्य वडा मार्मिक है। उसे पूरी तरह कह सकना वाणी की शक्ति से परे है।

ससार मे पद वहुत है और वे एक-दूसरे से ऊँचे

हैं । मगर अपनी आत्मा पर चढे हुए आवरणो को हटाकर आत्मा का स्वरूप पूर्ण रूप से शुद्ध बना लेने, विघ्नो को हटाने और आत्मा पर पूर्ण विजय प्राप्त करने से बढकर कोई पद नही है । आत्मा मे अशुद्धता एव विभाव परिणति उत्पन्न करने वाले कर्मो का अन्त करना मानव-जीवन की सर्वोच्च सिद्धि हे । आपका और हमारा एक मात्र लक्ष्य यही है कि आत्मा को किसी प्रकार निर्विघ्न सुख की अवस्था मे पहुचा सके । जब हमारा यही लक्ष्य है तो कर्मनाश के कार्य मे मार्गदर्शक और कल्याण मे सहायक बनने वाले जो महापुरुष हुए है, उनके पथ को देखने से अपना कार्य सरल हो सकता है ।

लक्ष्य तो सबका यही है कि आत्मा की अशुद्धता मिटाई जाय, आत्मा का अपना विशुद्ध स्वरूप प्रकट किया जाय, मगर उपाय लोगो ने न्यारे–न्यारे बतलाए है । सासारिक जीवन की विचित्र परिस्थितियो ने और काल की भिन्नता ने भी भिन्न-भिन्न उपायो की उत्पत्ति मे भाग लिया है और साथ ही दूसरे–दूसरे कारणो से भी आत्मशुद्धि के उपायो मे अन्तर पड गया है । यहा तक की कई लोग तो कर्मबन्ध के उपायो को ही कर्मनाश का उपाय समझ लेते हैं । कुछ लोगो का कहना है कि पहले सब शास्त्रो का पारायण करो तभी धर्म की प्राप्ति होगी । मगर ऐसा करना शक्य नही है । ससार के विभिन्न धर्मों के प्रतिपादक विपुल ग्रन्थसग्रह को पढ लेना सरल काम नही है और सवसाधारण के लिए तो ऐसा करना असभव है । कब तो ससार के शास्त्रो के सागर को पार किया जाय और कब, आत्मशुद्धि के लिए उद्योग किया जाय ? ऐसा करने मे आत्म-

शोधन का मार्ग रुक जायगा—अशक्य बन जायगा। कदाचित् यह कहा जाय कि ससार के सब मतमतान्तरो का निचोड एक जगह करके पढा जाय तो क्या हानि है? मगर ऐसा होना भी सरल काम नही है।

अब प्रश्न हो सकता है कि अगर यह असभव है तो किस उपाय से कर्मों का नाश करना चाहिए? इसका उत्तर सक्षेप में यह है—

महाजनो येन गत पन्था।

अर्थात् जिस मार्ग पर महापुरुष चले है, जिस मार्ग का अवलम्बन करके उन्होने अपने कर्मों का क्षय किया है और आत्मशुद्धि की है, वही मार्ग तुम्हारे लिए भी कल्याणकारी हो सकता है।

महापुरुष बिना निर्णय किये किसी मार्ग पर पैर नही धरते। अतएव उनके द्वारा निर्णीत पथ ही मगलकारी होता है। किसी महानदी को पार करना कठिन होता है, बडे-बडे बलवान् तैराक भी पार नही कर पाते। परन्तु पुल बन जाने पर कीडी भी उस महानदी को पार कर जाती है। इसी प्रकार हम चाहे कितने भी अशक्त हो, कितने ही कम पढे-लिखे हो, अगर महापुरुषो के मार्गरूपी पुल पर आरूढ हो जाएँगे तो अवश्य ही अपने लक्ष्य को—आत्मशुद्धि को—प्राप्त कर सकेगे। महापुरुषो का मार्ग ससार-सागर पार करने के लिए पुल के समान है। उनके मार्ग पर चलने से सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

अब प्रश्न होता है कि महापुरुष किसे माना जाय? इस प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से कठिन है, फिर भी

अगर हम सावधानी से विचार करे और निर्णय करने की शुद्ध बुद्धि हममे हो तो इतना कठिन भी नही है आपके सामने दो प्रकार के पुरुप खडे है। एक ने अपनी ऋद्धि खूब बढाली है और बहुत वडा अमीर बन गया है। दूसरा किसी समय ऋद्धिशाली था। उसने ऋद्धि की असारता और अशरणता समझ ली और फिर उससे विरक्त हो गया है। सारी सम्पदा को त्याग कर भिक्षु बन गया है। अब अपने अनुभव से विचार कीजिए कि आपको कौन महापुरुष जान पडता है ?

'त्यागने वाला !'

ससार मे महान् ऋद्धिशाली भी बडा आदमी अर्थात् महान् पुरुप कहलाता है और त्यागी और महापुरुष कहलाता है। मगर आप तो कर्मो का नाश करने के लिए महापुरुप को खोज कर रहे है। ऐसी स्थिति मे स्वय ही निर्णय किया जा सकता है कि उक्त दोनो मे महापुरुष कौन है ?

हम अपने कर्मो का नाश करना चाहते हैं, इसलिए हमे ऐसे ही महापुरुप का आदर्श ग्रहण करना है जो त्यागी हो। जो सच्चा त्यागी होगा वह निश्चय ही सत्य पथ पर चलेगा। वह मिथ्यामार्ग को स्वीकार नही करेगा।

साराश यह है कि त्यागी पुरुपो का मार्ग कर्मनाश करने के लिए पुल के समान है।

एक प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि किसका त्याग करने वाले को त्यागी समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर शास्त्र यह देते है कि जिसने हिसा, असत्य, चोरी,

मैथुन और लोभ आदि अठारह पापो का त्याग कर दिया है वही त्यागी कहलाता है। जिसमे क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, मात्सर्य अज्ञान आदि न हो उसी को त्यागी समझना चाहिए। ऐसा त्यागी ही महापुरुष कहलाता है। सॉप ऊपर की केंचुली त्याग दे मगर विष का त्याग न करे तो उसकी भयकरता कम नही होती। इसी प्रकार जो ऊपर से त्यागी होने का ढोग करते है, परन्तु अन्दर के राग–द्वेष आदि विकारो से ग्रस्त है, वे महापुरुषो की गणना मे नही आ सकते। राग–द्वेष का क्षय हो जाने पर केवल-ज्ञान की उपलब्धि होती है और वीतराग दशा प्राप्त होती है। जो वीतराग बन गया है वही वास्तव मे महापुरुष है।

ऐसे वीतराग महापुरुषो का स्मरण करके जिन्होंने अपना कल्याण किया है, उन्ही का परिचय अन्तगडसूत्र में दिया गया है। इसके दस अध्यायो मे उन महापुरुषो का वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि उन्होने किस प्रकार अपने कर्मों का विनाश करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त अवस्था प्राप्त की है।

ऊपर जो विवेचन किया गया है, उससे यह स्पष्ट है कि इस अनादिकालीन ससार मे महापुरुष अनन्त हो चुके हैं। उनकी सख्या नही बतलाई जा सकती और न उनके नामो का ही उल्लेख किया जा सकता है। महापुरुष की जो परिभाषा बतलाई जा चुकी है वह जिस किसी मे घट सकती है वही महापुरुष है। महापुरुष की महत्ता उसके नाम से नही है, गुणो से है। अतएव जो गुणो से महापुरुष है वही पूजनीय है, वही माननीय है। भक्तामर-स्तोत्र मे कहा है—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

अर्थात्—हे प्रभो ! देवता तुम्हारे बुद्धि-वैभव की पूजा करते हैं, इसलिए तुम्ही बुद्ध हो, तीन लोक का कल्याण करने के कारण तुम्ही शङ्कर हो, मोक्षमार्ग की विधि का विधान करने के कारण तुम्ही विधाता हो, और स्पष्ट है कि तुम्ही पुरुषोत्तम हो ।

आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

यत्र तत्र समये तथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया,
वीतदोषकलुषः सचेद् भवान्, एक एव भगवन् ! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात्—किसी भी परम्परा मे, किसी भी रूप मे, किसी भी नाम से आप हों, अगर आप वीतराग हैं तो सभी जगह एक ही हैं । आपको मेरा नमस्कार हो ।

इन उद्धरणो से ज्ञात होता है कि महापुरुष या वीतराग पुरुष का नाम पूज्य नही है । नाम उसका कुछ भी रख दिया जाय, अगर उसमे वीतरागता है तो वह पूज्य है ।

भगवान् महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे । आज उन्ही का शासन चल रहा है । सुधर्मा स्वामी ने भगवान् महावीर से जो कुछ सुना, वही उन्होने जम्बूस्वामी से कहा । उसी वाणी के द्वारा आप और हम अपना कल्याण कर सकते हैं ।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः ॥

वीरातीर्थमिदं प्रवृत्तमखिल, वीरस्य घोर तप. ।
वीरे श्रीधृतिकातिकीर्तिनिचय., हे वीर ! मा पालय ॥

अर्थात्—वीर भगवान् सुरेन्द्रो और असुरेन्द्रो द्वारा पूजित है। ज्ञानीजन उनके पथ का ही अनुसरण करते हैं। उन्होने अपने समस्त कर्मों का नाश कर डाला है। वीर भगवान् से ही इस तीर्थ की प्रवृत्ति हुई है। वीर भगवान् का तप घोर था। उनमे अद्भुत श्री, अनोखा धीरज और अनुपम काति थी। उनकी कीर्त्ति का वर्णन नही किया जा सकता। ऐसे श्री वीर भगवान् हमारी रक्षा करे।

भगवान् जिस-जिस अवस्था मे रहे, उस-उस अवस्था मे इन्द्र ने उनकी पूजा की। भगवान् के गर्भकल्याणक के समय इन्द्र ने उत्सव मनाया। जन्मकल्याण के समय मेरु पर्वत पर जाकर उत्सव किया। दीक्षा लेने पर उसने दीक्षा-महोत्सव किया।

भगवान् ने घोर तप करके कर्मो का विनाश कर डाला। उनके तप का ही यह प्रभाव है कि भगवान् का शासन अब तक चल रहा है। धर्म के नाम पर ससार मे अनेक सत्ताएँ हो चुकी हैं, जिन्हे राजाओ का भी आश्रय मिला था। अर्थात् राजा भी उनकी आज्ञा मे थे। राजाओ का आश्रय पाकर भी आज उन धर्मों का ह्रास हो गया है। जैनधर्म का रक्षक कोई राजा नही है, फिर भी वह अपने पैरो पर खडा है। इसका कारण भगवान् की तपस्या ही है। उन्ही के तप के प्रबल प्रभाव से अनेक भीषण सघर्षों मे जैनधर्म ने विजय प्राप्त की है और आज भी वह विजयशील है। दुनिया जैनधर्म के सिद्धान्तो के अमल

मे ही अपनी भलाई देख रही है।'

प्राचीनकाल मे राजाओ के साथ उनकी रानियाँ सती होती थीं। भारतीय विचारको ने उसका विरोध किया और अगरेजों के शासन में वह प्रथा बन्द कर दी गई। लेकिन जैनधर्म के अनुसार सथारा जैसा पहले होता था वैसे ही आज भी होता है। जैनधर्म का रक्षक कोई राजा नही है, फिर भी उसमे ऐसी स्वाभाविकता भरी है कि उसके किसी सिद्धान्त का खण्डन नही किया जा सकता। यह सब भगवान् के तप का ही प्रभाव है।

नौ चौमासी तप कियो।
ते प्रणवो वर्धमान ॥

भगवान् के तप के प्रभाव से ही आज यह शासन अपने पूर्व रूप मे विद्यमान है। यद्यपि काल के प्रभाव से इसमें नाना सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए हैं, फिर भी वैसी अन्धाधुन्धी यहाँ नही है जैसी कि अन्यत्र दिखाई देती है। उदाहरणार्थ--एक पुस्तक मे लिखा है कि ईसा का यह उपदेश होते हुए भी कि यदि तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम उसके सामने दूसरा गाल कर दो, ईसा के इस उपदेश के पीछे तप का प्रभाव न होने से ईसाइयो ने अपने धर्म मे स्वय ही बडी अन्धाधुन्धी मचा रक्खी है। बाइबिल का शब्द पढ लेने पर, उसका 'अनुवाद करने पर या उसके उपदेश के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की शङ्का करने पर लोग जिन्दे जला दिये गये है। उस धर्म के ठेकेदारो ने किसी को कूट-कूट कर मारा तो किसी को खण्ड-खण्ड करके मारा! अन्धाधुन्धी धर्म के नाम पर ही की गई थी। इस प्रकार धर्म के नाम पर हजारो नही

लाखो मनुष्यो की हत्या की गई है। लेकिन जैनधर्म के किसी अनुयायी ने धर्म के नाम पर आज तक किसी को नही सताया, किसी की हत्या नही की। जैनधर्म के अनुयायियो ने धर्म का प्रचार करने में अनेक बाधाएँ सहन की है, कष्ट सहन किये हैं, मार खाई है, यहाँ तक कि बहुतो ने प्राण भी दिये हैं, मगर कभी किसी के प्राण लिए हों, ऐसा नही सुना गया। यह सब भगवान् महावीर के तपोबल का प्रभाव है। उनका ऐसा प्रभाव था और वह इतना उत्कृष्ट और निर्मल था कि उनके धर्म के अनुयायियो ने अपना धर्म फैलाने के लिए कभी किसी को नही सताया। आज जैन-धर्म के अनुयायी राजा नही हैं तो क्या हुआ। किसी समय सोलह-सोलह देशो पर शासन करने वाले राजा इसके अनु-यायी थे। वे प्रचण्ड शक्तिशाली और प्रतापी योद्धा थे। किन्तु धर्म का नाम लेकर उन्होने किसी को नही सताया। किसी को लेशमात्र भी भय नही दिखलाया।

अन्य धर्मों के इतिहास को देखने से ज्ञात होगा कि उस धर्म को फैलाने के लिए अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये हैं। जैनधर्म का इतिहास जैनो ने भी लिखा है और दूसरे ने भी लिखा है। मगर उसमे किसी ने यह बात नही लिखी कि कभी किसी जैन राजा ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए तलवार का सहारा लिया। विश्व-कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रसिद्ध लेखक ने भी जब भग-वान् महावीर के विषय मे लिखने के लिए कलम उठाई तो यही लिखा कि ससार की अन्धाधुन्धी और मारकाट की शाति का उपदेश भारत मे भगवान् महावीर ने ही सुनाया। उनके तप का प्रभाव ही ऐसा था कि धर्म के

के नाम पर होने वाली हिंसा आप ही बद हो गई ।

धर्म के नाम पर मारकाट करने वाले लोगो के धर्म मे मारकाट करने की तो आज्ञा दी नही गई होगी, परन्तु उस धर्म के प्रवर्त्तक मे तप का बल नही था । भगवान् महावीर का तप असाधारण था । यही कारण है कि सिद्धात रूप से भगवान् का शासन उसी प्रकार चल रहा है, जिस प्रकार उन्होने चलाया था ।

अगर कोई जैनधर्म मानने वाला कुपात्र पुरुष हिंसा भी कर डाले तो भी कोई समझदार यह कहने के लिए तैयार नही होगा कि जैनधर्म की शिक्षा ऐसी है । मगर मुस्लिम धर्म के अनुयायियो के कामो की तरफ देखिए तो मालूम होगा कि मुस्लिम धर्म के फैलाने के उद्देश्य से उन्होने कैसे-कैसे अत्याचार किये है । उनके शास्त्र मे ही काफिरो के लिए पत्थर लिखे है ।

भगवान् महावीर ने ग्यारह वर्ष, छह मास और पच्चीस दिन तप किया और नौ वार चौमासी तप किया । वे दिन-रात मे कभी पानी की एक बूँद भी नही लेते थे, तिस पर भी दिन को सूर्य की आतापना लेते और रात्रि मे वीरासन से खडे रहते थे । भगवान् ने अपने अनुयायियो को तपस्या का मार्ग सिखलाने के निमित्त इतना उग्र तप किया था । भगवान् इतना तप न करते तो ऐसे कुसमय मे, नाना प्रकार की प्रतिकूल और भीषण परिस्थितियो मे उनका धर्म स्थिर कैसे रहता ?

आज न्याय की तराजू पर एक ओर जैनियो की तपस्या रक्खो और दूसरी ओर सारे ससार की तपस्या रक्खो । जैनो की सख्या कम होने पर भी देखो कि जैनियो

की तपस्या की बराबरी क्या सारे संसार की तपस्या मिल कर भी कर सकती है ? भारत बीच मे भूल कर अब तप की महिमा और अहिंसा की शक्ति को फिर समझ रहा है। वह महावीर भगवान् के सिद्धान्तों की ओर झुक रहा है। दूसरे को कष्ट न देकर स्वय कष्ट सह लेना, अनशन करना, यह भावना महावीर स्वामी के सिद्धान्त का है और भारत ने इस भावना का अनुसरण किया है।

गाधीजी ने जैनधर्मानुयायी कवि राजचन्द्र भाई को अपना धर्मविषयक गुरु माना है। गाँधीजी कभी के ईसाई बन गये होते पर सयोगवश उन्हें राजचन्द्र भाई मिल गये। राजचन्द्र भाई से उन्होने कुछ प्रश्न किये। गाधीजी को सतोषजनक उत्तर मिल गया। इस कारण वे ईसाई होने से बच गये। वे ईसाई हो गये होते तो आज कौन जाने किस रूप मे होते। पर जैनधर्म के प्रताप से ऐसा नही हुआ।

गाधीजी ने अपने जीवन मे जितनी तपस्या की है, उतनी शायद ही किसी दूसरे देशनेता ने की होगी। इक्कीस-इक्कीस दिन तक तो उन्होंने अनशन ही किया है और दूसरी तपस्या का अन्दाज लगाना कठिन है। वे तपस्या के प्रभाव को भलीभाँति जानते हैं। गीता में एक श्लोक है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।

इसका सीधा-सादा अर्थ तो यह है कि निराहार मनुष्य विषय-हीन हो जाता है। निराहार देह मे विषय नही ठहरते। लेकिन वासना बाह्य तप मे नही जाती। वासना का नाश करने के लिए परमात्मा के ध्यान की आवश्यकता है।

लोकमान्य तिलक ने इस अर्थ को घुमा-फिरा कर यह आशय निकाला है कि उपवास करना ढोंग है- आत्म-हत्या है। तिलकजी के ऐसा अर्थ करने का कारण, सभवत यही हो सकता है कि उन्हे उपवास का अनुभव नही था। जिसने उपवास ही न किया हो वह उपवास के विषय मे ठीक निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। इसके विरुद्ध गाधीजी को उपवास सम्बन्धी व्यक्तिगत अनुभव है, अत उन्होंने उक्त श्लोक का वही अर्थ किया है, जो मैंने ऊपर बतलाया है। दोनो के अर्थ मे अन्तर पड़ने का कारण यही है कि एक ने उपवास नहीं किया और दूसरे ने उपवास करके अनुभव प्राप्त किया है। अमल किये विना सिद्धि प्राप्त नही होती इसीलिए भगवान् महावीर ने जो कुछ कहा है, वह सब करके दिखाया भी है।

भगवान् महावीर ने प्रभावशाली तप किया, उसी का यह परिणाम है कि आज भी साधु, साध्वियाँ श्रावक, श्राविकाएँ तप करते है। आज जैन महात्माओ मे त्याग-वैराग्य की जो शक्ति है, वह सब भगवान् महावीर के तप का ही प्रताप है।

भगवान् महावीर से अतुल तीर्थ निपजे है। उन धीर महाप्रभु की तपस्या रोमाचकारिणी और बडी प्रभाव-शालिनी थी।

श्री जिनराय का ध्यान लगावे,
ता घर आनन्द-मङ्गल छावे।
सिद्धारथ राय के नन्द अनोपम,
रानी त्रिशला देवी कूख जो आवे।
चैत सुदी तेरस की रजनी,
जन्म भयो प्रभु सब सुख पावे ॥श्री०॥

भगवती सूत्र मे कहा है—

तहारूवाण समणाण निग्गंथाण ।

यही पाठ भगवान् के विषय मे भी आया है और कहा है—

इहलोगहियाए परलोगहियाए ।

तथारूप के श्रमण निर्ग्रन्थ या अरिहन्त भगवान् के नामगोत्र का स्मरण करना—भक्ति करना—इस लोक और परलोक मे हित और सुख देने वाला है ।

मित्रो ! अगर आपको सूत्र के वचन पर श्रद्धा है तो निश्चय कर लो कि भगवान् देवाधिदेव है । उनका शरण छोडकर दूसरे के शरण मे जाना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?

बहुत-से लोग जगन्नाथ प्रभु का शरण छोडकर भैरो-भवानी की शरण लेते हैं । शायद उनका खयाल है कि भगवान् तो परलोक मे कल्याणकारी हैं । लेकिन गीता मे भी कहा है कि परमात्मा को पूजने वाला परमात्मा को प्राप्त होगा और भूतो प्रेतो को पूजने वाला भूतो-प्रेतो को प्राप्त होगा ।

अब प्रश्न किया जा सकता है कि भगवान् का ध्यान किस प्रकार लगाया जाय ? आज पर्युषण का प्रथम दिवस है । आज से लेकर आठ दिनो मे भगवान् महावीर को विशेष रूप से ध्यान मे लाना है और उस ध्यान में अन्तराय करने वाले विघ्नो को हटाना है । ऐसे विघ्न अनेक हैं पर मुख्य रूप से दो विघ्नों की ओर आपको ध्यान देना चाहिए । वे यह है—शास्त्र की बात को अन्यथा समझ

लेना और लौकिक भावनाओं में मन का फँसा रहना। आत्मकल्याण का पहला उपाय शास्त्र की बात यथार्थ रूप मे समझना है। शास्त्र का आशय कुछ और हो और आप समझ ले कुछ और ही, तो बड़ा अनर्थ होता है। कुछ का कुछ अर्थ समझ लेने का क्या परिणाम होता है, इस बात को सरलता और स्पष्टता के साथ समझाने के उद्देश्य से एक दृष्टान्त कहता हू

एक नामी सेठ था। खूब धनाढ्य था। उसके पाँच लड़के थे, लडकी एक भी नही थी। एक दिन सेठ ने विचार किया—'हम दूसरे के यहाँ से लडकी लाते तो है पर दूसरो को देते नही है। यह मेरे ऊपर ऋण है।' इस प्रकार विचार करने के बाद सेठ के दिल मे कन्या का पिता बनने की भावना उत्पन्न हुई।

पुण्ययोग से सेठ की भावना पूर्ण हुई। उसके यहाँ एक लडकी जन्मी। सेठ का घर वैष्णव सम्प्रदाय का था। घर के सभी लोग विष्णु की भक्ति मे तल्लीन रहते थे। वे अपने धनवैभव आदि को ठाकुरजी का प्रताप समझते थे। इसके अनुसार उन्होने उस लड़की को भी ठाकुरजी का ही प्रताप समझा।

पाँच लडकों के बाद गहरी भावना होने पर लडकी का जन्म हुआ था। इसलिए बडे ही लाड-प्यार के साथ लडकी का पालन-पोषण किया गया। लडकी का नाम फूलाबाई रक्खा गया। इस बात का बहुत ध्यान रक्खा जाता था कि लडकी को किसी भी प्रकार का कष्ट न होने पाये। लडकी जब कुछ सयानी हो गई तब भी सेठजी उसे उसी प्रकार रखते थे। लड़की कभी कुछ अपराध या

भूल करती तो भी सेठजी एक शब्द न कहते और न दूसरो को कहने देते ! इसी प्रकार व्यवहार चालू रहा और लडकी बडी हो चली ।

जैसा होने वाला होता है वैसे ही निमित्त भी मिल जाते हैं । तदनुसार सेठ के यहाँ एक दिन कोई पडित आये और उन्होने गीता का निम्नलिखित श्लोक पढा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥६६॥

फूलाबाई इसका अर्थ समझी—सब धर्मो को छोडकर मेरी शरण मे आ जाओ । तुमने कितने ही पाप क्यो न किये हो, मैं उन सब से मुक्त कर दूँगा । अब उसने निश्चय कर लिया—नारायण पापो से मुक्त कर ही देते हैं, फिर किसी भी पाप से डरने की आवश्यकता ही क्या है ? पाप से डरने का अर्थ नारायण की शक्ति पर अविश्वास करना होगा । बस, केवल ईश्वर से डरना चाहिए, पापो से नही ।

ठाकुरजी से डरने का अर्थ उसने यह समझा कि उन्हे विधिपूर्वक नैवेद्य आदि चढाकर पूजना चाहिए—किसी प्रकार की अविधि नही होना चाहिए । इससे ठाकुरजी प्रसन्न होगे ।

फूलाबाई के हृदय मे यह सस्कार ऐसी दृढता के साथ जम गया कि समय-समय पर वह कार्यो मे भी व्यक्त होने लगा । हृदय का प्रबल सस्कार कार्य मे उभर ही आता है । फूलाबाई का व्यवहार अपने नौकरो-चाकरो और पडौसियो के प्रति ऐसा ही बन गया । वह सब से लडती झगडती और निरकुश व्यवहार करती । इस प्रकार फूला-

बाई शूलांबाई बन गई ।

पहले कहा जा चुका है कि उस घर के सभी लोग सभी बातो के लिए ठाकुरजी का ही प्रताप समझते थे। घर मे जो भावना फैली होती है उसी को बालक ग्रहण करते है और वैसी ही भावना बन जाती है। फूलाबाई की भावना भी ऐसी ही हो चली। वह भी हर चीज को ठाकुरजी का प्रताप समझने लगी। सेठजी के यहाँ यह भजन गाया जाता था—

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहि रूठे तो, सबके काट लूं चोटी पटा॥

फूलाबाई ने इस भजन का यह आशय समझ लिया कि सब लोग रूठते है तो परवाह नही। उन्हे रूठ जाने दो। अगर ठाकुरजी अकेले न रूठे तो सबके सिर के बाल उतरवा सकती हू।

फूलांबाई ने सोचा—दुनिया मे बहुत लोग है। किन-किन की अलग-अलग खुशामद करनी फिरूँगी! अतएव अच्छा यही हे कि अकेले नारायण को राजी कर लिया जाय। फिर चाहे जिससे चाहे जैसा व्यवहार किया जा सकता हे।

फूलाबाई के ऐसे व्यवहार को घर के लोग हँसी मे टालते रहे, मगर फूलाबाई समझने लगी कि यह सब नारायण भगवान् का ही प्रताप है। नारायण मददगार हो तो कोई क्या कर सकता है? इस प्रकार फूलाबाई सबके साथ शूल का सा व्यवहार करने लगी।

फूलाबाई की सगाई एक करोडपति सेठ के घर की गई। यह देखकर तो फूलाबाई के अभिमान का पार

ही न रहा । वह सोचने लगी मुझ पर ठाकुरजी की बड़ी कृपा है । यही कारण है कि इस घर मे मैने सभी पर अंकुश रक्खा है, फिर भी मै करोडपति के घर ब्याही जा रही हू ! जैसी धाक मैने यहाँ जमा रक्खी है, वैसी ही सुसराल मे जमा सकू तो ठाकुरजी की पूरी कृपा समझू ।

विवाह हो गया । फूलाबाई सुसराल पहुची । सुसराल पहुचकर ससुर-सासू के पैर छूना आदि विनीत व्यवहार तो दूर रहा, उसने अपनी दासी को सासू के पास भेजकर कहला दिया—'अभी से यह बात साफ कर देना ठीक जँचता है कि मै इस घर मे गुलाम या दासी बनकर नही आई हू । मैं मालकिन बनकर आई हू और मालकिन बनकर ही रहूगी । अपने साथ मे धन लेकर आई हू, कोरी नही आई हू । सब काम-काज मेरे कहने के अनुसार होता रहा तो ठीक, अन्यथा इस घर मे तीन दिन भी मेरा निर्वाह न होगा ।'

फूलाबाई सोचती थी— ठाकुरजी प्रसन्न हैं तो फिर डर किसका ? आरम्भ मे प्रभाव जम गया तो जम गया, नही तो जमना कठिन है । इसलिए पहले ही आतक जमा लेना चाहिए । डर-भय की तो परवाह ही नही है ।

नवागता पुत्रवधू का यह अनोखा सदेश सुनकर सासू को अचरज भी हुआ और दुख भी हुआ । वह सोचने लगी—यह कैसी विचित्र वहू आई है ! इसे इतना अहकार क्यो है ? है तो यह बडे घर की बेटी, पर इतने घमण्ड का क्या कारण हो सकता है ? घमण्ड किसी को हो सकता है लेकिन इस प्रकार ब्याह कर आते ही तो कोई वहू ऐसा नही कहला सकती । देखने मे सुन्दर है, बडे घर की है,

फिर भी इसकी बोली और प्रकृति ऐसी क्यो है ? जान पडता है इसके शरीर मे कुछ-न-कुछ अवश्य है । फिर भी इसे अभी तो प्रसन्न ही रखना चाहिए । कुछ दिनो मे ठिकाने आ जाएगी । ऐसा सोचकर सासू ने कहला भेजा—'अच्छा जैसा वह कहेगी वैसा ही होगा ।'

फूलाबाई के अहकार को और ईंधन मिल गया । वह सोचने लगी—धन्य हैं ठाकुरजी, उन्होने यहाँ भी मेरा बेडा पार लगा दिया । बडी प्रसन्नता और उत्साह के साथ उसने ठाकुरजी की मूर्त्ति पधराई और कहने लगी–'ठाकुरजी का प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा ।'

थोडे ही दिनो मे फूलाबाई के व्यवहार से घर के सब लोग काप उठे । उसने सब जगह अपना एकछत्र राज्य जमाना शुरु किया । वह न किसी से प्रेम करती, न किसी का लिहाज रखती । सासू वगैरह समझ गईं कि बहू का स्वभाव दुष्ट है । मगर घर की बात बाहर जाने से इज्जत चली जाएगी । इस विचार से घर के लोग कडवे घूंट के समान फूलाबाई के व्यवहार को सहन करते गये और उसे क्षमा करते रहे । उनकी क्षमा को फूलाबाई ने ठाकुरजी का अपने ऊपर विशेष अनुग्रह समझा । उसका व्यवहार दिन-प्रतिदिन बुरा होता चला गया ।

फूला की सुसराल के किसी सम्बन्धी के घर विवाह था । इस विवाह मे सपरिवार सम्मिलित होना आवश्यक था । बहू को भी साथ ले जाना जरूरी था । मगर चिन्ता यह थी कि अगर पराये घर जाकर भी इसने ऐसा व्यवहार रक्खा तो इतनी बडी इज्जत कौडी की हो जायगी । अन्त मे बहू को घर पर ही छोड जाने का निश्चय किया गया ।

मगर फूलाबाई को छोड जाना भी सरल नही था। इस-लिए उसकी सास ने एक उपाय सोच लिया।

मूर्ख लोग अपनी मिथ्या प्रशसा से प्रसन्न होते हैं। उन्हे प्रसन्न करके फिर जो-चाहे वही काम करा सकते हो। वे खुशी-खुशी कर देगे। सासू ने फूलांबाई की खूब प्रशसा की। अपनी प्रशसा सुनकर वह फूल गई। उसके बाद सासू ने कहा-- इस विवाह मे जाना तो सभी को चाहिए, पर घर सूना नहीं छोडा जा सकता। बडा घर है। इसे सभा-लने के लिए होशियार आदमी चाहिए। तुम बहुत होशि-यार हो। अगर घर रह कर इसे सँभाले रहो तो सब ठीक हो जाएगा।

फूलाबाई फूलकर कुप्पा हो चुकी थी। उसने कहा— तुम्हारे बिना कौन-सा काम अटका है ? तुम सब पधारो। घर सँभालने के लिए मैं अकेली ही काफी हू।

घर के लोग यही चाहते थे। फूलाबाई को घर छोडकर सब विवाह मे सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गये।

उधर सब लोग विवाह के लिए गये और सयोगवश इधर सेठ की समानता रखने वाले एक सगे मेहमान सेठजी के यहाँ आ गये। मेहमान भी ईश्वर मे निष्ठा रखने वाला भक्त था। फूलाबाई को मेहमान के आने का समाचार मिला। उसने भोजन की तैयारी करके उसे जीमने के लिए बुलाया। मेहमान जीमने बैठा और भोजन का थाल उसके सामने आया। उसने जैसे ही भोजन करना प्रारभ किया कि उसी समय फूला ने कडक कर कहा—कभी पहले भी ऐसे टुकडे मिले हैं या नहीं ? एकदम भुखमरो की तरह

भोजन पर टूट पड़े ! कुछ विचार भी नही किया और पेट भरने लगे । कै दिन के भूखे आये हो ?

ऐसे समय मै क्रोध आना स्वाभाविक था । भोजन करने के अवसर पर यह शब्द कह कर फूलांबाई ने भोजन को जहर बना दिया था पर मेहमान ने सोचा--मै भक्त हू । इसने भोजन को जहर बना दिया है, उसको मैं अमृत न बना सका तो फिर मै भक्त ही कैसा ? इसमे और मुझमे फिर अन्तर ही क्या रहेगा ? मैं तो आज आया हू और आज ही चला भी जाऊँगा, मगर इसके घर के लोग कितने दयाशील और सहिष्णु होगे जो रोज-रोज इसके ऐसे व्रर्ताव को सहन करते होगे ! मेरा इसके साथ परिचय नही है, फिर भी इसने पत्थर-सा मारा है। यह घर वालो के साथ कैसा सलूक करती होगी ? सचमुच वे लोग धन्य है जो इसके इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार को शाति के साथ सहन करते है ! अगर मैं इसके स्वभाव को और भडका दूँ तो इसमे मेरी विशेषता क्या है ? मै इसका मेहमान बना हू । किसी उपाय से अगर इसका सुधार कर सकूं तो मेरा आना सार्थक हो सकता है ।

मन ही मन इस प्रकार विचार कर उसने फूलाबाई से कहा--आपने क्या ही अच्छी बात कही है ! यह भोजन की तैयारी और उस पर आपका यह बोलना मैंने आज ही देखा है । आप ऐसी है तभी तो यह तैयारी कर सकी हैं ।

फूलाबाई मन ही मन कहती है ठाकुरजी का प्रताप धन्य है कि उन्होने इसे भी मेरे सामने गाय बना दिया है !

प्रकट मे वह बोली--अच्छी बात है, अब आप जीम

लीजिए। दो-चार दिन ठहरोगे न ? ऐसा भोजन दूसरी जगह मिलना कठिन है।

मेहमान— आप ठीक कहती है। ऐसा भोजन दूसरी जगह कदापि नही मिल सकता। मै अवश्य दो-चार दिन रहूगा। आपकी कृपा है तो क्यो नही रहूगा ?

उसने सोचा—इस भोजन को अमृत बना लेना ही काफी नही है। इस बाई को भी मैं अमृत बना लूं तो मेरा कर्त्तव्य पूरा होगा।

वास्तव मे सुधार का काम वडा टेढा होता है। तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है। सुधारक को वडी विकट परिस्थितियो का सामना करना पडता है। इन कठिनाइयो मे भी जो दृढ रहता है और अपने उद्देश्य को प्रशस्तता का खयाल रखकर विकट से विकट सकटो को खुशी के साथ सहन कर लेता है, वह अपने उद्देश्य मे सफल होता है।

मेहमान जीम कर चला गया। पूछताछ करके उसने पता चलाया कि फूलाबाई का स्वभाव ही ऐसा है। यह केवल ठाकुरजी की भक्ति करती है और सबकी कम्बख्ती करती है। मेहमान ने सोचा—चलो यह ठीक है कि वह ठाकुरजी की भक्ति करती है। नास्तिक को समझाना कठिन है, जिसे थोडी-वहुत भी श्रद्धा है, उसे समझाना इतना कठिन नही है।

मेहमान ने एक-दो दिन रहकर फूलाबाई के वाग्बाणो को खूब सहन किया और उसकी प्रकृति का भलीभांति अध्ययन कर लिया। उसने समझ लिया कि यह ठाकुरजी के सामने सबको तुच्छ समझती है और इसने धर्म का स्व-

रूप उलटा समझ लिया है। उधर फूलाबाई सोचने लगी– कैसा बेशर्म है यह आदमी, जो हँसता हुआ मेरी सभी बातो को सहन करता जाता है। जो लोग मेरे आश्रित हैं वे भी मेरे व्यवहार को देखकर अगर मुँह से कुछ नही कहते तो भी आँखे लाल तो कर ही लेते हैं। मगर इसके नेत्रो मे जरा भी विकार नही दिखाई देता। चेहरा ज्यो का त्यो प्रसन्न बना रहता है। इसे मेरी परवाह नही है, फिर भी इतना शात रहता है। यह मनुष्य कुछ निराला है।

दो-तीन दिन बाद, आधी रात के समय, मेहमान फूलाबाई के कमरे के पास गया और उसे आवाज दी। फूलाबाई ने पूछा— कौन है ? उसने अपना नाम बता दिया। आधी रात के समय आने के लिए फूलाबाई उसे धिक्कारने लगी। तब उसने कहा—मै किवाड खोलने के लिए नही कहता। आपके हिताहित से सम्बन्ध रखने वाली बात सुनाने आया हू। न सुनना चाहो तो मैं जाता हू। सुनना हो तो किवाड की आड मे से सुन लो।

हिताहित की बात सुनने के लिए फूलाबाई किवाड के पास खडी हो गई। उसने कहा— क्या कहना है, कह डालो।

मेहमान—कहू या न कहू, इसी दुविधा मे पड़ा हूं। कुछ निर्णय नही कर पाया हूं।

फूलाबाई—जो कहना चाहते हो कह डालो। विचारने की बात ही क्या है ? डरो मत।

मेहमान—आपका भी आग्रह है तो कह देता हूं। अभी मैं सो रहा था। स्वप्न मे ठाकुरजी ने दर्शन दिये थे।

फूला—ठाकुरजी ! तुम्हारे भाग्य बडे हैं जो ठाकुरजी ने दर्शन दिये ! उन्होने तुमसे क्या कहा है ?

मेहमान— उन्होने कहा कि भगत ! चल । अब मैं इस घर मे नही रहूगा, तेरे साथ चलूंगा । मैने ठाकुरजी से कहा— मैंने इस घर का नमक खाया है । आप मेरे साथ चलेगे तो मेरी बदनामी होगी ।

फूला—ठाकुरजी मेरे घर से रूठे क्यो है ? किस कारण जाना चाहते हैं ?

मेहमान—मैंने यह भी पूछा था कि आप इस घर से क्यो रूठ गये है ? उन्होने उत्तर दिया कि मैं इस घर से ऊब गया हू । अब इस घर की सत्ता मुझसे नही सही जाती । मै धीरज रख रहा था कि अब सुधरे अब सुधरे, मगर अभी तक कोई सुधार नही हुआ । उन्होने यह भी कह दिया कि मैं तेरे हृदय मे बसूंगा । तू भक्त है । मैंने ठाकुरजी से पूछा— क्या कपडो की या नैवेद्य की कमी रही ?

फूलाबाई ने चट किवाड खोल दिये और कहने लगी— मैं ठाकुरजी के लिए किसी चीज की कमी नही होने देती । फिर वे नाराज क्यो हो गये ?

मेहमान—मैंने भी तो उनसे यही प्रश्न किया था । उन्होने उत्तर दिया—तू भी मूर्ख मालूम होता है । मैं क्या उसके कपडे-लत्ते के लिए नङ्गा-भूखा बैठा हू ! मैं अपनी सत्ता से ससार का ईश्वर हुआ हू । वह क्या चीज है जो मुझे कपडे-लत्तो और नैवेद्य देगी ? मुझे उसकी परवाह ही कब है ?

फूला—मैं जानती थी कि ठाकुरजी इन्ही चीजो से प्रसन्न होते हैं। फिर मुझ मे क्या अपराध हुआ है जो ठाकुरजी जाने की सोच रहे है ?

मेहमान—ठाकुरजी ने मुझे एक बात कही है और उसका उत्तर तुम से माँगने की भी आज्ञा दी है। उन्होने पुछवाया है इस बाई के एक सुकुमार लडका हो। कोई मनुष्य उस लडके को मारे या अपमान करे। फिर उन्ही हाथो से एक थाल मे पकवान भर कर वह आदमी फूला-बाई को देने आवे तो बाई लेगी या नही ?

फूला—जो मेरे बेटे को दुःख देगा, उसके पकवान लेना तो दूर रहा, मैं उसका मुँह भी नही देखना चाहूगी।

मेहमान—तुम्हारी तरफ से यही उत्तर मैंने ठाकुरजी को दिया था। परन्तु ठाकुरजी कहने लगे—उस बाई के तो एक ही बेटा होगा, किन्तु मेरे तो ससार के सब जीव बेटे है। अपने मुँह के विष से जो मेरे बेटो को दुख देती है, उससे त्राहि-त्राहि कहलवाती है, उस पापिनी के घर मे मैं नही रह सकता। इस प्रकार ठाकुरजी अब तुम्हारे घर नही रहेगे। वह सारे ससार के पिता हैं और तुम सब से वैर रखती हो। ठाकुरजी बेचारे रहे भी तो कैसे ?

फूला का चेहरा उतर गया। वह कहने लगी—मेरी तकदीर खोटी है जो ठाकुरजी जाते हैं। अब मैं किसके सहारे रहूंगी ? मेरी नाव डूबती है, आप किसी तरह इसे किनारे लगाइए। आपकी बडी कृपा होगी।

मेहमान—घबराओ मत। मुझे तो पहले से तुम्हारी चिन्ता थी। इसलिए मैंने अपनी शक्ति भर तुम्हारे लिए सब

कुछ किया है। मैंने ठाकुरजी से विनय की— आप दीन-दयाल हैं। बाई के अपराध को क्षमा करके यहीं रहिए। अन्यथा मेरी बहुत बदनामी होगी। तब ठाकुरजी बोले— मैं अब तक के अपराधों को क्षमा कर सकता हूं, पर इससे क्या लाभ क्या होगा? जो अपराध आगे भी करते रहना है, उसके लिए क्षमा मागने से क्या लाभ है? जिस अप-राध के लिए क्षमा मागनी है, वही अपराध आगे न किया जाय, तभी क्षमा मागना सार्थक होता है। अगर वह बाई भविष्य मे सबके प्रति आत्मभाव रक्खे, दूसरे की मार खाकर भी बदले मे न मारे, गाली सुनकर भी गाली न दे और शात बनी रहे, सबके प्रति नम्र हो, सबकी प्रिय बने, तो मै रह सकता हू, अन्यथा नही। अब आप बतलाइए कि आपकी इच्छा क्या है? आप ठाकुरजी की शर्त पूरी करके उन्हे रखना चाहती है या नही?

फूलां—बलिहारी है आपकी। मैं अब आपकी शरण मैं हू। आपको तो ठाकुरजी स्वप्न मे ही मिले और स्वप्न मे ही आपने उनसे बातचीत की, परन्तु मुझे तो आप साक्षात् ठाकुरजी मिले हैं। आपने मेरी आँखे खोल दी। वास्तव मे मेरी क्रूरता के कारण सब त्राहि-त्राहिं कर रहे है। मैं भक्त नही नागिन हू। मैने सदा ही अपने मुंह से विष उगला है। आप पर भी मैने जहर बरसाया पर आपकी आँखो से अमृत ही निकला। आपने मुझे सच्ची शिक्षा दी है। सब से पहले आप ही मेरा अपराध क्षमा कीजिए। अपराध रहने से ठाकुरजी न रहेगे तो मै अप-राध रहने ही नही दूंगी। फिर ठाकुरजी कैसे जा सकेंगे।

मेहमान—आपने मुझसे जो कुछ कहा है, उससे मुझे

दु ख नही हुआ । परन्तु जा अशक्त है और धर्म को नही जानते है, उनसे क्षमा मागो । इसी में आपका कल्याण है । मै तो आपके क्षमा मागने से पहले ही क्षमा कर चुका हूं

प्रात काल होते ही फूलांबाई ने सब से क्षमा मागी । पडौसियो, नौकरो–चाकरो से बडे प्रेम के साथ वह मिली और अपने अपराधो के लिए पश्चात्ताप करने लगी । उसने कहा–– आप सब लोग अब तक मुझ से दु खी हुए हैं । आपने मेरे कठोर-व्यवहार को शान्ति के साथ सहन किया है । एक बार और क्षमा कर दीजिए ।

अगर फूलाबाई का मेहमान उसकी बाते सुनकर क्रोधित हो जाता तो फूलाबाई का सुधार हो सकता था ? नही । वास्तव मे क्षमा बडा गुण है । क्षमा के द्वारा सबका सुधार किया जा सकता है ।

विवाह कार्य से निवृत्त होकर फूला के घर के लोग जब लौटे तो फूला आँखो से जल बरसाती हुई सबके पैरो मे पडी और अपने अनेक अपराधो के लिए क्षमा मागने लगी ! वह कहने लगी— आप मुझे क्षमा कर देगे तभी ठाकुरजी रहेगे, नही तो चले जाएँगे ।

सब लोग फूलाबाई के इस आकस्मिक परिवर्त्तन को देख कर चकित रह गए । किसी ने कहा–– अब तुमने अपना नाम सार्थक किया ! पर यह तो कहो कि इस परिवर्त्तन का कारण क्या है ?

फूलां––अपने घर एक भक्त आये है । यह परिवर्त्तन उन्ही के प्रताप से हुआ है ।

सारा वृत्तान्त जानकर सब परिवार के लोगो ने उन मेहमान की प्रशसा की । उनका बड़ा उपकार माना और देवता की तरह सत्कार किया । सेठ ने कहा—सच्चे भक्त से ही ऐसा काम हो सकता है ! आपने हमारा घर पावन कर दिया ! जिस घर मे सदा आग लगी रहती थी उसमे आपने अमृत का स्रोत प्रवाहित कर दिया ।

फूलां ने भक्त मेहमान से कहा— भगतजी ! अच्छा, इस पद का अर्थ बतलाइए —

जो रूठे उसको रूठन दे, तू मत रूठे मन बेटा ।
एक नारायण नहिं रूठे तो, सबके काट लूं चोटी पटा ॥

भगत ने कहा—पहले तुमने जो अर्थ समझा है, वह बतलाओ । फिर मैं कहूगा ।

फूला—मैंने यह अर्थ समझा था कि एक ईश्वर को खुश रखना और सबके चोटी-पट्टे काट लेना ।

भगत—यही तो भूल है । इसी भूल ने तुम्हे चक्कर मे डाल दिया था । इस पद का सही अर्थ यह है कि—दूसरा रूठता है तो रूठने दे । हे मन ! तू मत रूठ । अर्थात् दूसरा अगर मारता और गाली देता है तो तू क्रोध मत कर ।

'एक नारायण नहिं रूठे तो काट लूं सब के चोटी पटा' इसका अर्थ स्पष्ट है । अगर मैं तुम्हारी बातो पर क्रोध करता तो क्या तुम मेरे पैरो मे पडती ? मैंने अपने मन को नही रूठने दिया तो तुम मेरे पैरो मे गिरी ! यही तो चोटी-पट्टा काटना कहलाता है ।

फूला—बहुत ठीक, अब मै समझ गई । पर एक

श्लोक का अर्थ और समझा दीजिए ।

भगत कौन–सा श्लोक ?

फूला—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज ।
अहत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८॥

भगत—इसका अर्थ यह है कि तुझ मे काम, क्रोध, आदि जितने पाप है, मेरी शरण मे आने पर वे सब छूट जाएँगे । तात्पर्य यह है कि जहाँ पाप है वहाँ ईश्वर की शरण नही है और जहाँ ईश्वर की शरण है वहाँ पाप नही हैं ।

फूला—मैं आपकी कृतज्ञ हूं । आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया । आज मेरे नेत्र खुल गये । मैं कुछ का कुछ समझ बैठी थी ।

इस कथा से स्पष्ट है कि शास्त्र के अभिप्राय को विपरीत समझ लेने से बडी गड-बडी हो जाती है । अतएव अन्यथा समझ लेना ध्यान का विघ्न है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि सच्चे धार्मिक या परमात्मा के आराधक को अन्य प्राणियो के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए । अगर आपको भगवान् के वचन पर श्रद्धा है तो जगत् के सब जीवो को अपना ही मानो । ऐसा करोगे तो भगवान् आपके हैं, अन्यथा भगवान् रूठ जाएँगे ।

'आत्मवत् सर्वभूतेषु' और 'सव्वभूअप्पभूअस्स' अर्थात् समस्त प्राणियो को अपना समझो । अपनी आत्मीयता की सीमा क्षुद्र मत रहने दो । तत्त्वदृष्टि से देखोगे तो पता

चलेगा कि अन्य जीवो मे और आपके अपने माने हुए लोगो मे कोई अन्तर नही है ।

इस प्रकार परिपूर्ण मैत्रीभावना को हृदय मे स्थापित करके अगर प्रभु का ध्यान करेगे तो आपका परम कल्याण होगा ।

बीकानेर,
२१-८-३०

४—आत्मोद्धार

गभीरतापूर्वक सत्य का विचार न करने वाले लोगों का कहना है कि साधु बनना एक प्रकार की अकर्मण्यता धारण करना है। किन्तु कोई समझदार और विवेकशील पुरुष ऐसी बात नही कह सकता। गृहस्थ मुख्य रूप मे अपने सासारिक कर्त्तव्यो का पालन करता है और गौणरूप से धार्मिक कर्त्तव्यो का। उसे दुनियाँ की झझटे ऐसी फँसाए रहती हैं कि वह आध्यात्मिक कर्त्तव्य को प्रधान रूप नही दे पाया। गृहस्थ का सासारिक कार्य इसी जन्म मे लाभदायक हो सकता है, आगामी जन्मो मे नही। किन्तु वर्त्तमान जन्म अल्पकाल तक ही रह सकता है और भविष्य अनन्त है। उस अनन्त भविष्य को मङ्गलमय बनाने के लिए गृहस्थी की झझटो से दूर हट जाना आवश्यक होता है। यद्यपि गृहस्थ भी अपनी मर्यादा के अनुसार धर्म और अध्यात्म की आराधना कर सकता है फिर भी निवृत्ति-जीवन मे जैसी आराधना की जा सकती है, वैसी गृहस्थ-जीवन मे नही। इस कारण निवृत्तिमय जीवन का अर्थ यह नही है कि कोई साधु बनकर निठल्ला बैठा रहे और किसी कर्त्तव्य का पालन ही न करे। साधुअवस्था की निवृत्ति का अर्थ यह है कि वह गृहस्थी के कामो मे नही पडता। धन कमाना, मकान बनवाना, बाल–बच्चो का विवाह करना आदि कार्यों से साधु मुक्त हो जाता है।

इन कार्यों से निवृत्त होकर साधु अपनी प्रवृत्तियो का क्षेत्र नया बनाता है। वह अपनी आत्मा के शाश्वत श्रेय को लक्ष्य बनाकर महान् कर्त्तव्यो को स्वीकार करता है। साधु की प्रवृत्ति आध्यात्मिक साधना के उद्देश्य से होती है। अतएव वह ऊँचे दर्जे की प्रवृत्ति करता है और जगत् के हित का ही कारण बनता है।

साधु होना आत्मा को स्वतन्त्र बनाना है। अतएव साधु बनकर अपनी आत्मा को उच्च बनाना उचित है। इसके विपरीत जो लोग साधु होकर भी आत्मा को नीचे गिराते है, वे अपना ऐसा अहित करते हैं जैसा सिर काटने वाला वैरी भी नही कर सकता। ऐसे दुरात्मा को कठ छेदने वाले वैरी से भी अधिक वैरी समझो।

कहा जा सकता है कि सिर काटने वाला वैरी तो प्रत्यक्ष मे शरीर का विनाश करता है किन्तु दुरात्मा ऐसा कुछ नही करता। फिर दुरात्मा को कठ छेदने वाले वैरी से भी अधिक क्यो कहा गया है ?

जिन नास्तिको ने शरीर के साथ ही आत्मा का नाश मान रक्खा है, उन नास्तिको के लिए यह उपदेश नही है। यह उपदेश आस्तिको के लिए है। आस्तिक तो इस शरीर को वस्त्र के समान समझते है। वस्त्र के बदल जाने से जैसे पुरुप नही बदल जाता, उसी प्रकार शरीर के बदलने पर आत्मा नही बदलता। सिर काटने वाला वैरी अनित्य शरीर का ही नाश करता है, नित्य आत्मा का नही। सिर काटने वाले वैरी से अगर द्वेष न किया जाय तो वह कुछ भी हानि नही पहुचा सकता। यही नही, बल्कि यह आत्मा की मुक्ति मे उसी प्रकार सहायक बन

जाता है जैसे गजसुकुमार मुनि के लिए सोमल ब्राह्मण सहायक बना था। अतएव तात्त्विक दृष्टि से (निश्चयनय से) विचार किया जाय तो दूसरा कोई हमारा सिर नहीं काट सकता। हमारा सिर हम स्वयं ही काट सकते हैं। हमने बुरे कर्म किये होंगे तो इसी कारण कोई हमारा सिर काट सकता है। बुरे कर्म न किये हो तो लाख प्रयत्न करने पर भी कोई हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

ज्ञानस्वरूप आत्मा सिंह के समान पूर्ण अविकारी है और ज्ञानविकल आत्मा कुत्ते के समान है। कुत्ते को कोई ईंट या पत्थर मारता है तो कुत्ता उस पत्थर या ईंट को काटने के लिए झपटता है। वह समझता है कि यह पत्थर या ईंट ही मुझे मारने वाला है। किन्तु सिंह ऐसा नहीं करता। सिंह को गोली या तीर लगता है तो वह मारने वाले की तरफ दौड़ता है। वह समझता है कि तीर या गोली का दोप नहीं है वरन् मारने वाला का दोप है।

मार डालना पशुबल है, आत्मबल नहीं। जैसे सिंह समझता है कि तीर या गोली मुझे नहीं मार रही है किन्तु उसका प्रयोग करने वाला मार रहा है, उसी प्रकार जिसमें आत्मबल है, जो विज्ञानघन है, वह समझता है कि हमारा सिर यह वैरी नहीं काट रहा है बल्कि मेरी आत्मा आप ही अपना सिर काट रही है। वैरी तो निमित्त मात्र है। यह हमारे कर्मों का वैसा ही हथियार बन गया है जैसा हथियार सिंह के लिए तीर या गोली बनी थी। इस मारने वाले का कोई दोप नहीं है। मारने वाला तो हमारे ही भीतर बैठा है।

जिसे यह ज्ञान हो जाएगा वह किसी दूसरे से लड़ाई

नही करेगा, वह तो अपनी ही आत्मा के साथ जूझेगा। वह कहेगा— हे आत्मन् । तू अब विज्ञानघन हो जा । तू अपने विज्ञानघन स्वभाव को न समझने के कारण दुःखी हो रहा है ।

अपना सिर काटने वाले को तो छोडिए, कई पीढी के पूर्वज का सिर काटने वाले से भी लोग बोलना पसद नही करते । आप लोग जब एक पूर्वज का सिर काटने वाले से भी मेल नही रखना चाहते और दुश्मनी रखते हैं तो ज्ञानीजन कहते हैं कि अपने दुरात्मा मे वैर क्यो नही रखते ? इस दुरात्मा ने विषय, कषाय, दुराचरण और भोग के वश होकर एक-एक योनि मे अनन्त-अनन्त बार चक्कर लगाये हैं । इसने अपने को दुस्सह दुःखो का पात्र बनाया है । फिर इसमे ज्यादा हानि करने वाला दूसरा कौन है ?

हमारी आत्मा एक तरह से हमारा मित्र भी है और दूसरी तरह से शत्रु भी है । ऐसी स्थिति मे हमारा कर्त्तव्य है कि हम मित्र-आत्मा के साथ भेट करें और शत्रु आत्मा से वैर करे । शत्रु आत्मा हमे अनादिकाल से ऐसे घोर कष्टो मे डाले हुए हैं कि जिसका वर्णन कर सकना भी असभव है । इस दुरात्मा ने हमारा जितना अहित किया है उतना अहित किसी भी दूसरे वैरी ने नही किया । इस दुरात्मा ने ही दूसरे वैरी पैदा किये हैं । अगर मैंने इसे दूर कर दिया तो फिर कोई वैरी ही नही रह जाएगा ।

यह शिक्षा सभी मतो के शास्त्रो मे मौजूद है । गीता भी कहती है—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मान नात्मानमवसीदयेत् ।

अपनी आत्मा से आत्मा का उद्धार करो । आत्मा से ही आत्मा का उद्धार होगा । जब तक तुम स्वय तैयार न होओगे, कोई भी तुम्हे नही तार सकता, क्योकि डरपोक या कायरो को न तो किसी की सहायता मिली है और न मिलेगी ही । श्री आचारागसूत्र मे भी कहा है—

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्तं किं वहिया मित्तमिच्छासि ।

अर्थात्—अरे नर ! तेरा असली मित्र तू स्वय है । बाहरी मित्र की इच्छा क्यो करता है ? भारतीयो ने आध्यामिक उन्नति खूब की थी लेकिन उलटी समझ के कारण उससे हानि भी खूब उठाई । वहुतो ने समझ लिया कि धर्म के लिए हमे मेहनत भी न करनी पडे और ईश्वर हमे सीधा मोक्ष भो भेज दे । यह गलत समझ हानि का कारण बनी । मेहनत से बचने वालो ने धर्म और ईश्वर को समझा ही नही है । अगर ईश्वर बिना परिश्रम किये ही तारता होता तो वह दयालु होने के कारण किसी के कहने की राह ही न देखता । अगर वह स्वय ही सबका उद्धार करता है तो किसी जीव को दु खी क्यो रहने देता है ? क्या वह भी आलसी है ? वास्तव मे ईश्वर तारनहार तो है पर जब तुम तरने के लिए तैयार होओगे तभी वह सहायया करेगा । इस बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते है—

त्व तारको जिन ! कथ भविना त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त ।
यद्वा हतिस्तरति यज्जलमेष नून—
मन्तर्गतस्य मरुत स किलानुभाव ॥

—कल्याणमन्दिर

तू जगत् का उद्धार करने वाला नही है। अगर तू उद्धार करने वाला होता तो ससार दुखी ही न रहता और न मुझे ससार के दुख भोगने पडते। अतएव सिवाय इसके कि तू तारक नही है, और क्या कहूं ? मगर एक हिसाब से तू तारक भी है। जब कोई तुझे हृदय मे धारण करता है तो तू उसे तार देता है। इस प्रकार तू तारक है भी और नही भी है।

मशक मे हवा भर कर उसका मुँह बॉध दिया जाय और उसका आश्रय लेकर तेरा जाय तो वह तार देती है। लेकिन अगर उसमे हवा न भरी जाय या हवा के बदले पत्थर भरे जाएँ तो वह नही तिरा सकती। वैसे वायु तो सभी जगह है लेकिन जो उसे अपना कर लेता है उसी को वह तिराती है।

आचार्य कहते है—हे प्रभु ! तू वायु के समान है और मै मशक के समान। अगर मैं तुझे हृदय मे धारण कर लूं तो तू बिना तारे नही रहेगा। अगर तुझे हृदय मे धारण न करूँ और तेरे बदले विषय-कषाय आदि पत्थर भर लूँ तो तू कैसे तारेगा ? फिर तेरा क्या दोष है ?

वायु मशक को तिराने वाली है लेकिन वह कहती है कि मुझे अपने भीतर भरो तो मै तुझे तारूँगी। अन्यथा मेरे भरोसे मत रहना। इसी तरह परमात्मा कहता है—मुझे हृदय मे धारण कर लो तो मै ससार-सागर के जल मे तुम्हे नही डूबने दूँगा। अगर ऐसा न किया तो मै क्या कर सकता हू !

मै अभी कह चुका हू कि आत्मा से आत्मा का उद्धार करो। आत्मा से आत्मा का उद्धार किस प्रकार करना

चाहिए, यही बात मैं थोडे मे कहता हू । अगर आपको अपना उद्धार करना है तो ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो । अपना उद्धार करना शुरू कर दो । मैं जो मार्ग बतला रहा हूं, उस मार्ग से बडे से बडा विद्वान् भी चल सकता है और बालक भी चल सकता है । पण्डित और बालक दोनो के लिए यह मार्ग सुगम है । इस मार्ग का अवलम्बन लोगे तो आपका काम सिद्ध हो जाएगा । वह मार्ग यह है—

तो सुमरण विन अणि कलियुग मे,
अवर न कोई अधारो ।
मै वारी जाऊ तो सुमरण पर,
दिन-दिन प्रीति वधारो ।
पदमप्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उधारनहारो ॥पदम०॥
परम धरम को मरम महारस,
सो तुम नाम उचारो ॥
या सम मन्त्र नहीं कोउ दूजो,
त्रिभुवन मोहनगारो ॥पदम०॥

इस प्रकार का अभ्यास करो और इस आत्मा को समझा लो कि हे आत्मा ! तू इस सर्वव्यापक परमात्मा को छोडकर दुरात्मा मत बन । तू उस परमात्मा का ध्यान उठते-बैठते कर और आठो पहर उसका जप चलने दें । उसके जप मे आठो पहर रहने से तेरे पास पाप फटकेगा ही नही ।

मैं स तो, सतियो, श्रावको और श्राविकाओ से कहता हू कि जो काम परमात्मा की आज्ञा मे है उनके लिए तो कुछ कहना ही नही है, लेकिन आज्ञा-वाहर के काम जैसे

ही तुम्हारे सामने आवे वैसे ही तुम परमात्मा की शरण मे जाओ। वैरी के सामने आते ही शस्त्र छोड देना कायरता है। काम, क्रोध आदि ही तुम्हारे असली वैरी है। यह जब तुम्हारे पास आवे तब तुम परमात्मा से प्रार्थना करो—'प्रभो! इनसे हमे बचा। ऐसा करने से वे वैरी तुम्हारा कुछ भी नही बिगाड सकेगे। मगर कठिनाई यह है कि ऐसे विकट प्रसग पर लोग परमात्मा को भूल जाते है और इसी कारण परमात्मा उनकी रक्षा नही कर सकता।

शत्रु का हमला कभी न कभी होता ही है। हमला न हो तो परीक्षा कैसे हो? मगर हमला होने पर जो परमात्मा की शरण जाता है उसे क्षण-क्षण मे सहायता मिले बिना नही रहती। जो मन और वाणी के भी अगोचर है, जिनकी शक्ति के सामने तलवार, आग, जहर और देवताओ की शक्ति भी तुच्छ है, उस महाशक्ति के सामने सारा ससार तुच्छ है।

जो रूठे उसको रूठन दे, पर तू मत रूठे मन बेटा।
एक नारायण नहीं रूठे तो सब के काट लूं चोटी-पटा ॥*

इस उक्ति का अर्थ पलट दिया जाय तो बात दूसरी है। नही तो यह समझ लो कि जो रूठता है उसे रूठने दो, लेकिन तू मत रूठ। जिस मशक ने वायु को अपने भीतर भलीभाँति भर लिया है, उस मशक को कोई भी तूफान नही डुबा सकता। इसी प्रकार हे आत्मा! काम, क्रोध आदि का कैसा ही तूफान आवे तू ईश्वर की शरण मत छोड।

---

*इसकी व्याख्या इसी पुस्तक मे अन्यत्र आ चुकी है।

मित्रो ! आत्मा को अमृतमयी बनाओ । यह मत समझो कि माला हाथ मे ले लेने से ईश्वर का भजन हो जायगा । ईश्वर को अपने हृदय मे विराजमान करो । जब तक शरीर मे प्राण है तब तक जैसे निरन्तर श्वास चलता रहता है, उसी प्रकार परमात्मा का ध्यान भी चलता रहना चाहिए । ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अपथ्य और तामसिक भोजन तथा खोटी सगति को त्यागकर शुद्ध अन्तःकरण से उसका भजन करोगे तो उसे प्राप्त करने की सिद्धि भी अवश्य मिलेगी ।

भाइयो ! यह समय अपूर्व है । जो अवसर मिला है वह बार-बार नही मिलेगा और प्रतिक्षण चला जा रहा है । इसे परमात्मा के ध्यान मे लगाओ । परमात्मा के ध्यान से तुम्हे सन्मति प्राप्त होगी । तुम्हारे कुकर्म छूट जाएंगे और तुम्हारे लौकिक–व्यवहार मे कोई बाधा नहीं आवेगी ।

कुछ लोग कहा करते हैं कि परमात्मा का भजन करने पर भी हमारा अमुक काम सिद्ध नही हुआ । मगर वे यह नही सोचते कि उन्होने ऐसा भजन किया है जो परमात्मा को पसन्द नही है। यो तो रावण भी भक्त था । लेकिन मदोदरी ने उससे कहा—

सुनहु नाथ ! सीता बिन दीन्हें ।
हित न तुम्हार शभु अज कीन्हें ॥

तुलसीदासजी ने शभु और ब्रह्मा की बात कही है और हम लोग कह सकते है कि सीता को दिये बिना अर्हन्त भी हित न करेंगे । रावण अगर सीता को लौटा देता तो उसे भजन से आनन्द मिलता । लेकिन उसने इस बात पर

ान नही दिया । इसी प्रकार आपने जो भक्ति की होगी उसमे कोई कारण ऐसा होगा जो परमात्मा को पसद नहीं होगा । इसलिए शुद्ध अन्त करण से, दूसरे के हिताहित का ध्यान रखते हुए परमात्मा का ध्यान करो । ऐसा करने से अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा ।

५—लक्ष्यभ्रष्ट न होओ

भगवान् अनाथी मुनि ने राजा श्रेणिक से कहा—राजन् ! कई लोग नाथ होने के लिए उद्यत होकर भी इद्रियो के या कषाय के वश होकर सासारिक पदार्थों मे गृद्ध हो जाते हैं और परिणाम यह होता है कि वे फिर अनाथ हो जाते हैं। उनकी साधु बनने की रुचि निरर्थक हो जाती है, क्योकि उसका मुख्य प्रयोजन नष्ट हो जाता है। जो साधु के आचार-विचार से विरुद्ध चलता है फिर भी साधु का वेष धारण किये रहता है, वह प्राणी पामर है। ऐसा मनुष्य इस लोक के सुखो से भी वचित रहता है और परलोक के सुखो से भी कोरा रह जाता है।

वह इस लोक के सुखो से वचित यो रह जाता है कि लोकलज्जा के मारे उसे केशलोच करना पडता है, नगे पैर पैदल चलना पडता है और भिक्षाटन आदि बाह्य क्रियाएँ साधुओ की ही तरह करनी पडती है। मतलब यह है कि साधु जिन कष्टो को सहन करते हैं, उन्हे उसे भी सहन करना पडता है। फिर भी उसका कष्ट सहना उत्तम अर्थ मे नही लगता। वह जो कुछ करता है, जो कष्ट सहता है सो सिर्फ इसलिए कि लोग उसे साधु समझे। वह आडम्बर करता है और असलियत की उपेक्षा करता है। इस प्रकार वह ऐहलौकिक सुखो से भी वञ्चित रहता

हैं और पारलौकिक सुखों से तो वंचित है ही। वह न इधर का रहता है न उधर का रहता है। 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट' की कहावत उस पर पूरी तरह घटती है। ऐसे व्यक्ति का इस लोक मे भी कोई आदर नही करता और परलोक मे तो उसे पूछेगा ही कौन ? वह जो कष्ट सहन करता है सो समभाव से नही करता। ऐसा मनुष्य अनाथ का अनाथ ही बना रह जाता है।

कोई भी मनुष्य हो, यह जिस उद्देश्य के लिए घर से निकलता है उसके विषय मे सावधानी न रक्खे तो सासारिक कामो के लिए जैसे गृहस्थ उलाहना देते हैं, उसी तरह पारलौकिक कार्य के लिए शास्त्र उलाहना देते हैं। अपने ध्येय को भूल जाने वाले ऐसे मनुष्य की क्या दशा होती है, यह सब लोग समझ सकते हैं। इस सम्बन्ध मे मैं अपने स्वानुभव की बात कहता हू।

गृहस्थ लोग सवत्सरी के दूसरे दिन जमाई को बुलाकर कोई भेट देते हैं और उससे खमतखामणा करते है। जब मैं बालक था तो मेरे ससारी मामाजी ने रिश्ते के एक जमाई को बुला लाने के लिए मुझ से कहा। मैं घर से चला। रास्ते मे कुछ बालक कौडियो और पैसो का खेल खेल रहे थे। मै वहा खडा हो गया और खेल देखने लगा। मैं किसलिए घर से निकला हू, यह बात बिलकुल भूल गया। पारणा करके घर से निकला था। खाने-पीने की चिन्ता नही थी। खेल मे मेरा मन इतना उलझ गया कि मध्याह्न हो गया और धीरे-धीरे करीब दो बजे का समय हो गया। खेल खत्म हुआ तब मामाजी की बात याद आई। मामाजी स्वभाव के बडे क्रोधी थे। अतएव मुझे

बहुत भय हुआ कि न जाने कैसी बीतेगी ।

सारांश यह है कि जो जिस काम के लिए उठा है, उसे अगर पूरी तरह नही करता है तो स्थिति विषम हो जाती है । वह लक्ष्यभ्रष्ट होकर कष्ट ही पाता है । इसलिए ऐ साधुओ, तुम सावधान होओ । तुमने जिस महान् ध्येय को प्राप्त करने के लिए ससार के सुखो का परित्याग किया है, जिस सिद्धि के लिए तुम अनगार, अकिंचन और भिक्षु हुए हो, उस ध्येय को क्षण भर भी मत भूलो । उसकी पूर्ति के लिए निरन्तर उद्योगशील रहो । तुम्हारा प्रत्येक कार्य उसी लक्ष्य की सिद्धि मे सहायक होना चाहिए ।

जो मनुष्य अपने लक्ष्य को भूल जाता है उसका सारा कष्टसहन निरर्थक हो जाता है और उसका कहना भी असत्य हो जाता है कि मै अमुक कार्य के लिए उठा हू । कोई आदमी धन कमाने के लिए उठा और अपनी लापरवाही के कारण गाँठ की पूँजी गँवा बैठा तो यही कहा जाएगा कि उसने अपने लक्ष्य से विपरीत काम किया । इस धन कमाने के लिए उठने वाले को और धन न कमाने वाले को कष्ट तो वही हुए जो कमाने वाले को होते हैं । स्त्री, माता, पिता आदि छूटे, परदेश जाना पडा, सफर की दिक्कते भोगनी पडी, घर मे जो स्वतन्त्रता थी वह बाहर नही रही । यह सब कष्ट सहने पर भी काम उलटा किया । जिस उद्देश्य को लेकर घर से निकला था वह उद्देश्य पूरा नही हुआ । इस प्रकार वह न इधर का रहा, न उधर का रहा । पूँजी गँवाकर घर लौटने वाले को सकोच और लज्जा का भी अनुभव होता है । कदाचित् लौट भी आता है तो घर के लोग उससे घृणा करते है,

उसे फटकारते हैं और खुद भी दुखी होते है ।

यह लौकिक बात है । पारलौकिक बात भी इसी तरह समझना चाहिए । साधु बनने के लिए उठने वाले को घरबार छोडना ही पडा । साधु अवस्था के कष्ट भी व्यावहारिक लज्जा के कारण सहने पडे और नतीजा कुछ न निकला । यही नही वरन् उलटी हानि हुई । केशलोच भिक्षा, विहार आदि, जो साधु को करने पडते है, वह सब तो लोकलज्जा के कारण करने ही पडे परन्तु उनमें श्रद्धा न होने से वे फलदायक नही हुए, क्योकि वे सिर्फ लोक-दिखावे के लिए ही किये गये । जब तक कोई देखता रहता है, तब तक वह नियमो का पालन करता है, और जब कोई नही देखता तब उन्हे भग कर देता है । साधुपन ऊपर से पालने की वस्तु नही है । वह अन्तरात्मा से पाला जाता है । अतएव जब तक आत्मा शान्त नही हुआ है और उसे शान्त करने का प्रयत्न भी नही किया जाता है तब तक साधुपन का दिखाना व्यर्थ है । ऐसा मनुष्य दोनो लोको से भ्रष्ट हुआ है । ऐसे साधुवेषी की सयम की रुचि विपरीत हो गई है । इसलिए वह इस लोक के भी सुखो से वचित है और परलोक के सुखो से भी वचित है ।

यह कथन सभी के लिए लागू होता है । चाहे कोई साधु हो या श्रावक हो, ऊपर से साधु या श्रावक होने का दिखावा करना और भीतर पोल चलाना उचित नही है । आत्मा के वैरी मत बनो । आत्मा को मत ठगो । तुम्हारा आत्मा ही मित्र है और आत्मा ही शत्रु है । अपनी आत्मा से पूछो कि तू जो कर रहा है सो किस विचार से कर रहा है ? जो आदमी जिस काम को अन्तरात्मा से करेगा उसे

उस काम मे कष्ट का अनुभव नही होगा। यही नही, उसके मनोयोग की शक्ति, जो कार्य को सम्पन्न करने मे महत्वपूर्ण भाग लेती है और कार्य को साध्य बनाती है, उसके साथ होगी। उसे कार्य करते समय और कार्य करने के पश्चात् भी आह्लाद का अनुभव होगा। इसके विपरीत जो मनुष्य किसी काम को बोझ समझेगा और ऊपरी मन मन से करेगा, वह उसे कष्ट रूप समझेगा। उसे अपने कार्य से सतोष और सुख नही मिलेगा और अच्छे से अच्छे कार्य का भी उत्तम फल वह प्राप्त नही कर सकेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति साधुपन पर श्रद्धा नही रखता है लेकिन ऊपर से साधु बना हुआ है, उसके लिए वह सयम भी दु ख-दायी हो जाता है। जो व्यक्ति श्रद्धा और उत्साह के साथ सयम का पालन करता है, उसे सयम के कष्ट का अनुभव ही नही होता। वह कष्टो को भी आनन्द के रूप मे पलट लेता है। यह इतनी सरल और सीधी बात है कि प्रत्येक आदमी अपने ही अनुभव से इसे समझ सकता है। ससार-व्यवहार की बातो को ही लीजिए। आपको कही हजार रुपये मिलने की आशा होगी तो आप उसी समय दौडे जाएँगे। उस समय आपको इतनी स्फूर्ति और इतना उत्साह मालूम होगा कि सर्दी–गर्मी, भूख-प्यास आदि का कष्ट मालूम ही नही पडेगा।

यो किसी का मुँह काला कर दिया जाय या धूल फेंकी जाय तो वह आगबबूला हो जायगा। लेकिन फाल्गुन के महीने मे ऐसा उन्माद छा जाता है कि काला मुँह करने पर और धूल फेंकने पर आनन्द माना जाता है। जब फाल्गुन के महीने मे मिथ्या उन्माद के कारण ऐसा करने

पर भी दु ख नही होता तो जिसे ज्ञान का उन्माद हो गया है उसे क्यो दु ख होगा ?

पुत्र और पुत्री के विवाह मे माता रात-दिन एक कर देती है, फिर भी उसका मन आनन्द हो पाता है, क्योकि उसके हृदय मे उत्साह होता है ।

जब उत्साह के कारण ससार-व्यवहार के कठिन कार्यों मे दु ख का अनुभव नही होता तव जन्म-जन्मान्तर के कष्ट मिटाने वाले सयम को पालने मे क्यो कष्ट मालूम होगा ? लेकिन जिन्होने कपटपूर्ण सयम लिया है, उन्हे बोलनें, चलनें, खाने, पीने आदि मे पद-पद पर खेद मालूम होता है । भगवान् ने कहा है कि जिस साधु के सकल्प-विकल्प न मिटे उसे साधुपन मे पद-पद पर कष्ट होते है । इसलिए साधु मे सकल्प-विकल्प रहना अनाथता के लक्षण हैं ।

साराश यह है कि अन्तरात्मा मे पूरी सद्भावना स्थापित करके साधुपन पालने वाला ही सनाथ बनता है । ऊपर-ऊपर के भाव से काम करने वाला सनाथ नही, अनाथ ही है ।

दुकान मे मुनीम भी काम करता है और सेठ का लडका भी काम करता है । मुनीम तनख्वाह लेता है और सेठ का लडका कुछ भी नही लेता । लेकिन पैसे के लिए काम करने वाले मे और घर का काम समझ कर करने वाले मे कितना अन्तर होता है ?

'वहुत ।'

जो अपना कार्य समझ कर कार्य करता है वह मालिक वनकर करता है, गुलाम बन कर नही । मालिक और

गुलाम में जो अन्तर है वही आन्तरिक उत्साह और सद्-भावना के साथ सयम पालने वाले और विना मन लोक-दिखावे के लिए सयम पालने वाले साधु मे है। जो भावना के साथ सयम पालता है वह मालिक के समान है और जो दिखावे के लिए सयम का पालन करता है वह गुलाम के समान है।

आप लोग श्रावक हैं। आप केवल मुनिपन की दृष्टि से अनाथ है, श्रावकपन की दृष्टि से सनाथ हैं। इस दृष्टि से आप इन्द्र से भी बड़े हैं। इन्द्र श्रावकपन की दृष्टि से भी सनाथ है। अतएव आप अपने गौरव को समझे। अपने पद की उच्चता को समझ कर उसका पूरी तरह निर्वाह करे। अतीतकाल मे भगवान् के शासन मे अनेक श्रावक हो चुके है। आपका पद उन्ही की कोटि का है। आप उनके उत्तराधिकारी हैं। ऐसा कोई काम न करे जिससे आपकी और आपके द्वारा उनकी भी कीर्ति मे धब्बा लगने की सभावना हो। इसके अतिरिक्त आप जो कुछ भी करें, दीनता और पराधीनता त्याग कर करे। आपको यह समझना उचित है कि मैं जो कुछ भी कर रहा हू वह अपना काम कर रहा हूं। मैं गुलामी का काम नही कर रहा हू।

कल्पना कीजिए, दो गुमाश्ता हैं। उनमे एक श्रावक है और दूसरा अश्रावक है। इन दोनो के कार्य मे कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए। अगर कुछ भी अन्तर नही है तो दोनो के धर्म का अन्तर सर्वसाधारण की समझ मे कैसे आएगा ? साधारण जनता तो धर्म के अनुयायी व्यक्तियो के आचरण से ही उनके धर्म की परीक्षा करती है। वह

तात्विक विवेचना की गभीरता मे नही उतरती।

सच्चा श्रावक कभी नही सोचेगा कि मैं गुलामी का कार्य करता हू। वह तो यही समझेगा कि मैं जो कुछ करता हू, अपने धर्म की साक्षी से करता हू। कही ऐसा न हो कि मेरे किसी कार्य से मेरे व्रत मे दोष लग जाय और मेरे व्यवहार से मेरे धर्म की प्रतिष्ठा मे कमी हो जाय। मैं नौकर हू, लेकिन सत्य का। शास्त्र की कथाओं मे उल्लेख है कि ऐसा समझने वालो को अनेक प्रलोभन दिये गये, यहाँ तक कि प्राण जाने का भी अवसर आ पहुचा, फिर भी वे अपने सत्यधर्म से विचलित नही हुए।

मतलब यह है कि चाहे कोई मुनीमी करे या मजदूरी करे, अगर वह सच्चा श्रावक है तो यही विचारेगा कि मैं पैसे के लिए ही नौकरी नही करता हू। मुझे अपने धर्म का भी पालन करना है। जो ऐसा विचार करके प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करेगा वही सच्चा श्रावक होगा। जो पैसे का ही गुलाम है वह धर्म का पालन नही कर सकता। सच्चा श्रावक अपने मालिक के बताये हुए भी अन्यायपूर्ण काम को करना स्वीकार नही करेगा।

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। वह इस प्रकार है —

किसी सेठ के यहा एक प्रामाणिक मुनीम था। अपने सेठ का काम वह धर्मनिष्ठा के साथ किया करता था। एक बार सेठ ने मुनीम की सलाह नही मानी और इस कारण उसका काम कच्चा रह गया। सेठ ने कुछ दिनो तक तो अपना आडम्बर कायम रक्खा मगर पूजी के बिना कोरा आडम्बर कब तक चल सकता था? जब न चल

सका तो एक दिन सेठ ने बड़े दुःख के साथ मुनीम से अपने लिए दूसरी आजीविका खोज लेने को कह दिया। उसने लाचारी दिखलाते हुए अपनी स्थिति का भी हाल बतला दिया, यद्यपि मुनीम से कोई बात छिपी हुई नहीं थी।

मुनीम ने कहा—अपना संसार-व्यवहार चलाने के लिए मुझे कोई धन्धा तो करना ही पड़ेगा, लेकिन आप यह न समझे कि मैं पराया हूं। जब कभी मेरे योग्य काम आ पड़े आप निस्संकोच होकर मुझे आज्ञा दें। अधिक तो क्या, मैं प्राण देने के लिए भी तैयार हूं।

इस प्रकार बड़े दुःख के साथ सेठ ने मुनीम को विदा किया और मुनीम भी बड़े दुःख के साथ विदा हुआ।

मुनीमजी घर बैठे रहे। नगर में बात फैल गई कि अमुक मुनीमजी आजकल खाली है। उसी नगर में एक वृद्ध सेठ रहता था। वह खूब धनवान् था। उसके बच्चे छोटे थे। वह चाहता था कि मैं व्यापार और बालकों का भार किसी विश्वस्त आदमी को सौंपकर कुछ धर्म-कर्म करने में लगूं। मगर उसे अपने नौकरों में ऐसा कोई नहीं दिखता था जो उसका काम-काज संभालकर ईमानदारी से काम कर सके।

आज के लोग तो अपनी आयु संसारकार्य में ही पूरी कर देते हैं, परन्तु पहले के लोग चौथी अवस्था में या तो साधु हो जाते थे या साधु न होने की अवस्था में धर्मध्यान में लग जाते थे। इससे आगे वालों के सामने एक अच्छा आदर्श खड़ा हो जाता था और वह अपना कल्याण कर लेता था।

सेठजी को उन मुनीमजी के खाली होने की खबर

लगी। वह मुनीम को जानते थे। अपना काम-काज सभालने के लिए सेठजी ने उन्हे उपयुक्त समझा और एक दिन बुलाकर कहा— मै आपकी चतुराई से परिचित हू। आप हमारी दुकान का काम-काज सँभाल ले। मुनीमजी आजीविका की तलाश मे था ही। उसने सेठजी की दुकान पर रहना स्वीकार कर लिया। सेठजी ने उसे सब नौकरो का अध्यक्ष बनाकर सब काम उसके सुपुर्द कर दिया।

थोड़े दिन बाद सेठ ने मुनीम से कहा—अमुक बही के अमुक पाने का खाता निकालिए। मुनीम ने खाता निकाला। खाता उसी सेठ का था, जिसके यहाँ मुनीम पहले नौकर था और जिसकी आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी। खाते मे कुछ रुपया बकाया था। सेठ ने कहा—यह रकम वसूल कीजिए।

मुनीम बही लेकर उस सेठ के यहाँ पहुचे। सेठ ने प्रेम के साथ आदर-सत्कार करके बिठलाया। मुनीम सकोच के कारण मुँह से तकाजा न कर सका। उसने खाता खोलकर सेठ के सामने रख दिया। सेठ समझ गया। उसने आँसू भरकर कहा— मुनीमजी, रुपया तो देना है, लेकिन इस घर की दशा आपसे छिपी नही है। मैं क्या कहूं?

मुनीम ने कहा—आप दुखी न हो। मै स्थिति से परिचित हू। अगर मैंने अपने नये सेठजी को वही उत्तर दे दिया होता तो ठीक न रहता। इसी विचार से मै यहाँ तक आया हू।

बही-खाता लेकर मुनीमजी लौट आये। सेठ के पूछने पर उन्होने कहा—खाते मे रकम ज्यादा बकाया है।

अभी चुकता कर देने की उनकी शक्ति नही है। कभी उनके दिन पलटेंगे तो चुका देंगे। वे हजम करने वाले आसामी नही है।

सेठ बोला—पहले के सेठ होने के कारण आप उनकी खुशामद करते है। हमारे नौकर होकर उनका रुख रखना उचित नही है। इतना बडा घर था। बिगड जाने पर भी गहने–बर्तन आदि तो होगे ही। अगर सीधी तरह नही देना चाहते तो दावा करके वसूल करो।

मुनीम—मै जानता हू कि उनकी आमदनी ऐसी नही है। किसी प्रकार अपना निर्वाह कर रहे है और इज्जत लेकर बैठे हैं। उनकी आबरू बिगाडना मेरा काम नही है। मैं तो आपकी और उनकी इज्जत बराबर समझता हू।

कुछ कठोर पडकर सेठ ने कहा – जिसे रोटी की गरज होगी उसे किसी की आबरू भी बिगाडनी पडेगी।

मुनीम ने यह बात सुनी तो चाबियो का गुच्छा सेठजी के सामने रख दिया और कहा–– सेठ साहब, मुझे विदाई दीजिए।

सेठ–अच्छी तरह सोच-विचार लीजिए। मैंने आपको रोजगार से लगाया है। सब कर्मचारियो का प्रधान बनाया है और आप मेरे साथ ऐसा सलूक करते है ?

मुनीम––जो अपनी इज्जत के महत्त्व को नही समझता वही दूसरे की इज्जत बिगाडता है। एक दिन वे भी मेरे मालिक थे। आज उनकी स्थिति ऐसी नही है, तो क्या मैं उनकी इज्जत बिगाडने लगू ? मैने उनका नमक खाया है और वह मेरे सारे शरीर मे व्यापा हुआ है। मै

उनकी प्रतिष्ठा नष्ट नही करूँगा । फिर भी अगर आप रकम वसूल करना ही चाहेगे तो मैं अपनी जायदाद से चुकाऊँगा । मैं सिर्फ पैसे का गुलाम नही हू । मैं धर्म से काम करने वाला हूं ।

मुनीम की बात सुनकर सेठ को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । उसने धन्यवाद देते हुए कहा—मुनीमजी, मैं आपकी कसौटी करना चाहता था । मेरी आज तक की चिन्ता दूर हो गई । यह चाबियाँ सँभालिये । अब आप जाने और दुकान जाने । अब यह घर और बाल-बच्चे मेरे नही, आपके हैं । मेरे सिर का भार आपके ऊपर है ।

मित्रो ! यदि मुनीम पैसे के प्रलोभन मे पडकर, आजीविका रखने की चिन्ता से धर्म को भूल जाता तो क्या परिणाम निकलता ?

आज के लोग श्रावक कहलाते हुए भी स्वतन्त्र रहने मे कठिनाई का अनुभव करते हैं ।

भगवान् अनाथी मुनि ने यही कहा था कि नाथ बनकर किसी काम को करना एक बात है और गुलाम बनकर करना दूसरी बात है । नाथ बनकर साधुधर्म का पालन करना और बात है और गुलाम बनकर सिर्फ दिखाने के लिए पालन करने का ढोंग करना और बात है ।

सेठ और मुनीम का जो उदाहरण दिया गया है वह भाई-भाई और पिता-पुत्र आदि के लिए भी लागू होता है । धर्मात्मा पुरुष किसी के साथ दगा नही करता । वह प्राण देने को तैयार हो जाता है पर अपना धर्म नही छोडता । धर्म को वह प्राणो से ज्यादा प्यारा समझता है । धर्म

उसके लिए परम कल्याणमय होता है। वह समझता है कि मैं नास्तिक नही, आस्तिक हू। आत्मा अमर है। मैं अनन्तकाल तक रहने वाला हू। इसलिए थोडे समय तक रहने वाली तुच्छ चीज के लोभ मे पडकर मै धर्म का परित्याग नही कर सकता। इस प्रकार विचार करने वाला मनुष्य सदा सुखी रहता है।

राम और लक्ष्मण भाई-भाई थे तो क्या राम अकेले वन चले जाते और लक्ष्मण घर बैठे मौज करते रहते ? सीता, राम की पत्नी होकर भी क्या राजमहल के सुख भोगती रहती ? धर्म की कसौटी सकट के समय ही होती है। बल्कि सकट को ही धर्म की कसौटी समझना चाहिए।

यह बात पहले तो मुनियो और सतियो को सोचनी चाहिए। उन्होने माता-पिता का त्याग कर दिया है लेकिन क्या ससार के जीव अनन्त-अनन्त बार माँ-बाप न हो चुके होगे ? वह मुनीम अपने पुराने सेठ की आबरू नही बिगाड़ना चाहता। तो क्या अपने पुराने माँ-बाप की आबरू बिगाडना उचित है ? लेकिन जब आत्मा का पतन होता है तो छह काय की दया उठ जाती है। मगर जो मनुष्य यह विचार करता है कि विश्व के समस्त प्राणी मेरे पुराने मित्र है, सबधी हैं, सेठ हैं, वह प्राणीमात्र पर दया और प्रेम की भावना रखता है। वह त्रिकाल मे कभी अनाथ नही होगा।

X X X

एक बार गृहस्थी का त्याग करके, साधु होकर फिर अनाथ अर्थात् इन्द्रियो का गुलाम बन जाता है, वह निरर्थक

कष्ट मोल लेता है। इतना ही नही, वह अपनी आत्मा को नीचे गिराता है, अपने सघ की उज्ज्वल कीर्ति को कलकित करता है और अपने धर्म को बदनाम करता है।

सुना है, बन्दर को पकड़ने वाले लोग उसे पकड़ने के लिए जगल मे किसी लोहे के या लकडी के पात्र मे, जिसका मुँह सँकड़ा होता है, चने भर देते हैं। बन्दर उस पात्र मे चने लेने के लिए हाथ डालता है और चने से मुट्ठी भर लेता है। पात्र का मुँह इतना सँकडा होता है कि उसमे खाली हाथ तो आ-जा सकता है, मगर मुट्ठी बँधा हाथ न घुस सकता है और न निकल सकता है। बन्दर मुट्ठी मे चने लेकर हाथ निकालना चाहता है किन्तु हाथ निकलता नही। अगर बन्दर चनो का प्रलोभन त्याग दे तो हाथ छुडा सकता है, अन्यथा नही। इस प्रकार बदर चनो के लोभ मे पडकर अपने लिए बधन का निर्माण कर लेता है। वह चना छोडना नही चाहता और इसी कारण बधन से मुक्त भी नही हो सकता। वह तडफडाता रहता है और पकडने वाले उसे पकड लेते हैं।

इसी प्रकार ससारी जीव स्वय ही सासारिक सुख-साधनो के प्रलोभन मे पडकर अपने लिए बधन तैयार करते हैं। इसी तरह साधुवेषधारी असाधुओ मे भोगविलास की लालसा विद्यमान रहती है। जैसे बदर चनो का त्याग नही कर सकता उसी प्रकार वे साधुवेषधारी असाधु भोगलालसा का त्याग नही कर सकते। मगर जैसे बन्दर पात्र से छुटकारा चाहता है उसी प्रकार वे भी आत्मा का कल्याण चाहते हैं। लेकिन जैसे बन्दर चनो का लोभ छोडे बिना छुटकारा नही पा सकता, उसी प्रकार साधु हो जाने पर

भी ससार की भोगलालसा का त्याग किये बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

वडे-वडे ग्रंथकार कह गये हैं कि इस विषमकाल में महापुरुषो के पन्थ पर चलना ही कल्याणकारी है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना-
नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अर्थात् तर्क अस्थिर है। गेंद की तरह वादी-प्रतिवादी के वचनो की ठोकर खाकर वह इधर-उधर लुढकता फिरता है। श्रुति-स्मृति आदि के निर्माताओ की मति भिन्न-भिन्न होने से श्रुति-स्मृति का कथन भी भिन्न-भिन्न है। इस भिन्न-भिन्न कथन की गडबड मे लोग पड गये है और इस कारण धर्म का तत्त्व इतना दूर चला गया है मानो गुफा मे छिप गया है। लोग विचार करते हैं कि इस साल मे हम क्या करे? सब मतो का अध्ययन करके अगर उनका निचोड निकालना चाहे तो यह सभव नही। ससार मे इतने अधिक मत और पन्थ हैं और इतने अधिक पन्थ एव शास्त्र हैं कि सारी उम्र व्यतीत हो जाने पर भी उनके अध्ययन का अन्त नही आ सकता। ऐसी विकट परिस्थिति मे आत्मा का कल्याण किस प्रकार किया जाय?

दुनिया की इस स्थिति मे ग्रथकार कहते है— घवराओ मत। जिस मार्ग पर महापुरुष चले हैं उसी मार्ग पर चलो और चलते ही रहो। उसी मार्ग पर चलने मे कल्याण है। उस पर चलने से अकल्याण नही हो सकता।

तब प्रश्न खडा होता है कि महापुरुष कौन? प्रत्येक

मत और पन्थ वाले अपने-अपने मत और पन्थ को महापुरुष का मत और पन्थ कहते हैं और वे परस्पर मे विरोधी हैं। ऐसी स्थिति मे महापुरुष का मार्ग कौन–सा समझा जाय ? किस पर चले ?

जैनसिद्धान्त इस प्रश्न का जो उत्तर देता है, वह इतना व्यापक है कि उसे कोई अस्वीकार नही कर सकता। जैनसिद्धान्त कहता है कि महापुरुष वह है जिसमे राग और द्वेप न हो। अर्थात् जिसने राग आदि आत्मिक दोषो को पूर्णरूप से जीत लिया हो और दोषो को जीतने के फलस्वरूप जिसमे पूर्णज्ञान उत्पन्न हो गया हो वही महापुरुष है।

प्रश्न का अन्त फिर भी नही होता। अब यह आशका उठ सकती है कि निर्दोष और पूर्णज्ञानी कौन है ? लेकिन आत्मा मे ऐसी शक्ति विद्यमान है कि वह महापुरुष को फौरन पहचान सकती है। आप लोग महापुरुष की खोज इसलिए करना चाहते हैं कि आपके दोष महापुरुष का उपदेश मिलने से नष्ट हो जाएँ। तो इन दोषो के सहारे ही महापुरुष का पता लगाया जा सकता है। आपमे काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष हैं। इन दोपो का नाश करने के लिए ही आप महापुरुष की खोज करते हैं तो समझा जा सकता है कि जिसमे यह दोष न हो वही महापुरुप है। जिसमे राग–द्वेष होगे उसके वचन सदोप होगे और जो राग–द्वेष से मुक्त है उसके वचन भी निर्दोप है। उन वचनो को ग्रहण करने से हमारा कल्याण होगा ?

कहा जा सकता है कि क्या सभी साधु वीतराग है ? अगर साधु ऐसा समझले या कहे तो समझना चाहिए कि

वे दंभ और अहंकार से घिरे है। उन्हे विचारना चाहिए कि हम महापुरुष के पन्थ पर जा रहे है और दूसरो से भी वे यही कहे कि हम महापुरुप के पथ पर चल रहे हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी इसी पन्थ पर आ जाओ। यह पन्थ हमारा नही है, महापुरुषो का है। महापुरुप इसी पन्थ पर चले हैं और जगत् के जीवो को इसी पर चलने की प्रेरणा कर गये हैं। साधु अगर ऐसा समझे और प्रकट करे तो समझना चाहिए कि वे सच्चे साधक हैं।

६—ज्ञान और चारित्र

संसार की समस्त शिक्षाओं का सार ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति करना है। चारित्र को आचरण भी कहते हैं, मगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर दोनो मे थोडा-सा अन्तर भी दृष्टिगोचर होता है। चारित्ररूप गुणो की आराधना करने की जो विधि बतलाई गई है उस विधि के अनुसार चारित्र का पालन करना आचरण कहलाता है। विधिपूर्वक चारित्र का पालन न करने से काम नही चलता। विधिपूर्वक चारित्र के पालन करने का अर्थ यह है कि चारित्र का पालन ज्ञानपूर्वक ही होना चाहिए। ज्ञान के साथ पाला जाने वाला आचार ही उत्तम आचार है। वही आचार सफल होता है। ज्ञानहीन आचरण और आचरण-हीन ज्ञान से उद्देश्य सिद्ध नही होता। कल्याण को अगर रथ मान लिया जाय तो ज्ञान और चारित्र उसके दो पहिये हैं। दोनो की किस प्रकार आवश्यकता है, यह बात एक दृष्टान्त द्वारा समझना ठीक होगा।

किसी वृक्ष के नीचे एक अन्धा और एक पगु मनुष्य बैठा है। वृक्ष मे फल लगे हैं। दोनो फलो के इच्छुक है। लेकिन अन्धे को फल दिखाई नही देते और पगु फलों को देखता हुआ भी वृक्ष पर चढने की शक्ति से रहित है। यह दोनो जब तक अलग-अलग विचार कर रहे है तब तक

फलो की अभिलाषा रखते हुए भी फलो से वचित ही रहते हैं। लेकिन पगु ने अन्धे से कहा—भाई, तेरे पैरो मे शक्ति है। अगर तू मुझे अपने कधे पर बिठला ले तो मैं ऊँचा हो जाऊँगा और फल तोड लूँगा। ऐसा करने से मेरी और तेरी–दोनो की तृप्ति हो जायगी।

इन दोनों का सयोग ही इनके लिए कल्याणकारी हो सकता है। अगर अन्धा, पगु को ऊँचा उठाने से इन्कार कर दे और पगु, अन्धे को फल देना अस्वीकार कर दे तो दोनो को भूखे मरना पडेगा।

शास्त्र मे चारित्र की बडी महिमा प्रकट की गई है। लेकिन कोई अगर कोरी क्रिया को ही पकड कर बैठ जाय और क्रिया ज्ञानयुक्त न हो तो जैसे अन्धे और पगु के सहयोग के बिना फल की प्राप्ति नही होती, उसी प्रकार ज्ञान के सयोग के बिना की जाने वाली क्रिया से भी फल की प्राप्ति नही होती।

निरे चारित्र का मार्ग अन्धा है। ज्ञान के अभाव मे उसे मुक्तिरूपी फल नही सूझता। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है —

अन्नाणी किं काही किं वा नाईहि छेयपावकं।

अर्थात्—वेचारा अज्ञानी जीव क्या कर सकता है? वह अपने कल्याण और अकल्याण को कैसे समझ सकता

इसलिए उक्त सूत्र मे आगे कहा गया है—

पढमं नाणं तओ दया एव चिट्ठइ सव्वसजए।

अर्थात्—पहले ज्ञान की आराधना करनी चाहिए और

उसके बाद चारित्र की आराधना हो सकती है। सभी सयमवान् महापुरुष ऐसा ही करते है। वे बिना ज्ञान के चारित्र की आराधना करना सभव नही मानते। इस प्रकार चारित्र की आराधना करने से पहले ज्ञान की आराधना करना आवश्यक बतलाया गया है। वास्तव मे ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र की आराधना हो ही नही सकती।

इसी प्रकार चारित्र से रहित अकेला ज्ञान पगु है। चारित्र की सहायता के बिना उससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ऐसी स्थिति मे स्पष्ट है कि अगर कोई सिर्फ क्रिया को ले बैठे और ज्ञानगुण की अवहेलना कर दे तो वह अधे की तरह भटका-भटका फिरेगा और उसे उस फल की प्राप्ति नही हो सकती जिसे वह प्राप्त करना चाहता है। इसी तरह अगर किसी ने ज्ञान पाकर चारित्र की अवहेलना कर दी तो वह भी सिद्धि से वचित रहेगा। शास्त्र मे कहा है—

> **भणता, अकरिता य बधमोक्खपइण्णिणो।**
> **वायावीरियमित्तेणं समासासेन्ति अप्पय ॥**

अर्थात्—ज्ञान से ही बन्ध और मोक्ष मानने वाले लोग कहते हैं तो पर करते नही हैं। वे अपनी वाणी की वीरता मात्र से अपनी आत्मा को आश्वासन देते है।

तात्पर्य यह है कि जिन्होने ज्ञान तो प्राप्त कर लिया है किन्तु जो ज्ञान के अनुमार आचरण नही करते और जो ज्ञान से ही वन्ध-मोक्ष मानकर तसल्ली कर लेते है वे अपनी आत्मा को धोखा देते है और दूसरो को भी धोखा

देते हैं । इसीलिए शास्त्रकार आगे चलकर कहते है--

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासण ।

अर्थात्--अपनी पण्डिताई का अभिमान करने वाले चारित्रहीन व्यक्ति नाना प्रकार की भाषाएँ भले ही जानते हो मगर वे भाषाएँ दु ख से उनकी रक्षा नही कर सकती । इसी प्रकार विद्याएँ और व्याकरण आदि शास्त्र भी उनकी रक्षा कैसे कर सकते है ?

इस प्रकार न तो ज्ञानविकल पुरुष सिद्धि पाता है और न क्रियाविकल पुरुष सिद्धि पाता है । जब ज्ञान और क्रिया का सयोग होता है तभी मुक्ति मिलती । जो लोग ज्ञानहीन हैं और थोथी क्रिया को ही लिए बैठे है उन्हे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । ज्ञान के अभाव मे वे भ्रष्ट हुए बिना नही बच सकते । और जो लोग अकेले ज्ञान को ही लेकर बैठे हैं और क्रिया को निरर्थक मानते हैं उन्हे क्रिया का भी आश्रय लेना चाहिए । क्रिया के बिना वे भी भ्रष्ट हुए बिना नही रहेगे ।

यहाँ तक जो कुछ कहा गया है वह आत्मिक कल्याण की दृष्टि से ही कहा गया है । मगर आत्मिक कल्याण के लिए ससार पर भी दृष्टि देना आवश्यक है । ससार पर दृष्टि दिये बिना आत्मिक कल्याण नजर नही आता । आज ससार मे एक मनोभावना सर्वत्र दिखाई देती है और वह यह है कि लोग फल तो चाहते हैं लेकिन क्रिया करना नही चाहते । पगु को दया से प्रेरित होकर अगर कोई फल दे भी दे तो भी रहेगा वह पगु ही । अन्धे का सहारा लेकर फल तोड लेने मे पगु को जो आनन्द मिल सकता है वह आनन्द दूसरे के फल देने से नही मिल सकता । जिस दिन

उसे दूसरा फल नही देगा उसी दिन वह दुख फिर पशु के सामने आ खडा होगा ।

आप लोग पगडी बाँधते हैं और धोती पहनते हैं। इस क्रिया का फल आप यही समझते हैं कि आप ससार-व्यवहार मे अच्छे दिखाई दें । ठीक दीखने के लिए आप जो धोती और पगडी पहनते हैं, उसे अगर अपने हाथ से पहन सके तब तो ठीक है, कदाचित् दूसरे के हाथ से पहना करें तो क्या ठीक होगा ? आज आपको सभी प्रकार की सुविधा प्राप्त है तो दूसरे के हाथ से आप पोशाक पहन सकते है । कल अगर ऐसी सुविधा न हुई तो क्या होगा ? क्या उस समय आपमे दीनता की भावना जागृत नही होगी ? आप विषाद मे नही डूब जाएँगे ?

इस बात पर गहराई के साथ विचार करने पर आपको मालूम होगा कि स्वतन्त्रता का मूल्य क्या है ? अगर आप सावधान होकर देखे तो आपको पता चलेगा कि आपके सब काम पराधीन हैं । भोजन खाना तो आपमे से सभी को आता है, लेकिन भोजन बनाना कितनो को आता है ? आप नौकर के सहारे ही भोजन खाना जानते हैं। कदाचित् रसोइया ने अचानक जबाव दे दिया तो क्या होगा ? कहा जा सकता है कि ऐसी दशा मे पत्नी भोजन बना देगी । परन्तु विदेश मे, जहाँ पत्नी न हो, क्या करेंगे ? अथवा कल्पना करो कि घर मे पति-पत्नी दो ही हैं और पत्नी बीमार हो गई तब क्या होगा ? ऐसे समय मे भोजन बनाकर कौन देगा ? मगर लोग तो इस भ्रम के शिकार हो रहे हैं कि हाथ से काम नही करेंगे तो पाप से बच जाएँगे ! मगर क्या यह पाप से छूटने का रास्ता है ?

इस प्रकार की परतन्त्रता से किसी बात मे सिद्धि नहीं मिलती। सिद्धि प्राप्त करने का या पाप से छुटकारा पाने का मार्ग निराला है।

भोजन के विपय मे आपकी जैसी स्थिति है वैसी ही अन्न, वस्त्र आदि के विपय मे भी है। आप चाहते सभी कुछ हैं मगर स्वाधीन किसी भी चीज के लिए नही हैं। जैसे पगु पडे-पडे भीख माँगा करते है, उसी प्रकार आप इन सब वस्तुओ की इच्छा रखते है। पगु और अन्धे को माँगने पर कभी-कभी कोई दे भी देता है मगर उस देने से क्या उनमे स्वाधीनता आ जाती है?

'नही!'

इसी प्रकार दूसरो की सहायता से आपको भोजन, वस्त्र, अन्न आदि मिल जाय तो भी आप स्वतन्त्र नही हो सकते। बल्कि इस परतन्त्रता के कारण आपको इन चीजो की क्रिया से घृणा हो गई है। आप भोजन और वस्त्र बनाने वाले को नीची निगाह से देखते हैं और उनका उपयोग करने वालो का आदर करते है। आपके खयाल मे कपडा बनाना नीच का काम है और पहनना ऊँच का काम है। मित्रो! क्या यही समदृष्टि का लक्षण है? आप जिस वस्तु का उपयोग करते है, उस वस्तु को बनाने आदि की क्रिया न जानने से अर्थात् स्वतन्त्रता को भूल जाने से आज धर्म मे भी गुलामी हो रही है। आपमे से बहुतो को धर्म भी वही रुचिकर होगा जिसके सुनने पर क्रिया न करनी पडे। मगर विचार करना चाहिए कि क्या यह उचित है?

मित्रो! आपको स्वाधीनता का महत्त्व समझना

चाहिए । कोरी बाते बनाकर ससार पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करना सच्चे ज्ञान का फल नही । ज्ञानी वह है जो प्रत्येक बात पर गहराई से, तात्विक दृष्टि से विचार करता है । जैनशास्त्र मे ऐसा एक भी बडे आदमी का उदाहरण नही मिलेगा, जिसने दूसरो पर हुक्म चलाया हो और आप निरुद्योगी होकर बैठा रहा हो । राजकुमार मेघ के उदाहरण को लीजिए । उसने जीवनोपयोगी बहत्तर कलाओ का अध्ययन किया था ।

चन्द्रमा की बडाई कला से ही है । अमावस्या के दिन चन्द्रमा कही दूसरे लोक में नही चला जाता । सिर्फ उसमे कला नही रहती । इसलिए आपको सोचना चाहिए कि जिसमे कला न होगी वह अमावस्या के चन्द्रमा के समान होगा अथवा पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान होगा ?

मेघकुमार ने बहत्तर कलाएँ सीखकर स्वतन्त्र जीवन का बोध प्राप्त कर लिया था । उन्हे भोजन बनाना, वस्त्र, बनाना, घर बनाना, आभरण बनाना आदि प्रत्येक जीवनोपयोगी कला का भलीभाति ज्ञान था ।

मेघकुमार घर बनाना आदि समस्त कलाओ मे पारगत थे तो बने रहते । शास्त्र मे इन सब बातो का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यही है कि शास्त्र मे यह चरित देकर बतलाया गया है कि इस प्रकार का जीवन कभी स्वतन्त्र नही हो सकता । मगर आपमे से अधिकाश लोग ऐसे निकलेगे जो ऐसी एक भी क्रिया शायद न जानते होंगे जो जीवन की स्वतन्त्रता के लिए उपयोगी हो । अलवत्ता कपट क्रिया करके पैसा कमाना लोग जानते हैं । लेकिन ऐसी क्रिया से पैसा इकट्ठा करने वाले के पास

इस प्रकार की परतन्त्रता से किसी बात मे सिद्धि नही मिलती। सिद्धि प्राप्त करने का या पाप से छुटकारा पाने का मार्ग निराला है।

भोजन के विषय मे आपकी जैसी स्थिति है वैसी ही अन्न, वस्त्र आदि के विषय मे भी है। आप चाहते सभी कुछ हैं मगर स्वाधीन किसी भी चीज के लिए नही है। जैसे पगु पडे-पडे भीख माँगा करते हैं, उसी प्रकार आप इन सब वस्तुओ की इच्छा रखते हैं। पगु और अन्धे को माँगने पर कभी-कभी कोई दे भी देता है मगर उस देने से क्या उनमे स्वाधीनता आ जाती है?

'नही!'

इसी प्रकार दूसरो की सहायता से आपको भोजन, वस्त्र, अन्न आदि मिल जाय तो भी आप स्वतन्त्र नही हो सकते। बल्कि इस परतन्त्रता के कारण आपको इन चीजो की क्रिया से घृणा हो गई है। आप भोजन और वस्त्र बनाने वाले को नीची निगाह से देखते हैं और उनका उपयोग करने वालो का आदर करते हैं। आपके खयाल से कपडा बनाना नीच का काम है और पहनना ऊँच का काम है। मित्रो! क्या यही समदृष्टि का लक्षण है? आप जिस वस्तु का उपयोग करते है, उस वस्तु को बनाने आदि की क्रिया न जानने से अर्थात् स्वतन्त्रता को भूल जाने से आज धर्म मे भी गुलामी हो रही है। आपमे से बहुतो को धर्म भी वही रुचिकर होगा जिसके सुनने पर क्रिया न करनी पडे। मगर विचार करना चाहिए कि क्या यह उचित है?

मित्रो! आपको स्वाधीनता का महत्त्व समझना

चाहिए। कोरी बाते बनाकर ससार पर अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करना सच्चे ज्ञान का फल नही। ज्ञानी वह है जो प्रत्येक बात पर गहराई से, तात्विक दृष्टि मे विचार करता है। जैनशास्त्र मे ऐसा एक भी बडे आदमी का उदाहरण नहीं मिलेगा, जिसने दूसरो पर हुक्म चलाया हो और आप निरुयोगी होकर बैठा रहा हो। राजकुमार मेघ के उदाहरण को लीजिए। उसने जीवनोपयोगी बहत्तर कलाओ का अध्ययन किया था।

चन्द्रमा की बडाई कला से ही है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा कही दूसरे लोक मे नही चला जाता। सिर्फ उसमे कला नही रहती। इसलिए आपको सोचना चाहिए कि जिसमे कला न होगी वह अमावस्या के चन्द्रमा के समान होगा अथवा पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान होगा ?

मेघकुमार ने बहत्तर कलाएँ सीखकर स्वतन्त्र जीवन का बोध प्राप्त कर लिया था। उन्हे भोजन बनाना, वस्त्र, बनाना, घर बनाना, आभरण बनाना आदि प्रत्येक जीवनोपयोगी कला का भलीभाति ज्ञान था।

मेघकुमार घर बनाना आदि समस्त कलाओ मे पारगत थे तो बने रहते। शास्त्र मे इन सब बातो का उल्लेख करने की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यही है कि शास्त्र मे यह चरित देकर बतलाया गया है कि इस प्रकार का जीवन कभी स्वतन्त्र नही हो सकता। मगर आपमे से अधिकाश लोग ऐसे निकलेंगे जो ऐसी एक भी क्रिया शायद न जानते होंगे जो जोवन की स्वतन्त्रता के लिए उपयोगी हो। अलवत्ता कपट क्रिया करके पैसा कमाना लोग जानते हैं। लेकिन ऐसी क्रिया से पैसा इकट्ठा करने वाले के पास

जब किसी कारण से पैसा आना बन्द हो जाता है, तब उसे हाय-हाय करने के सिवाय और क्या चारा रह जाता है ? आज जो हाय-हाय मची हुई है, उसका प्रधान कारण यही है कि आज के लोगो का व्यापार भी स्वतन्त्र नहीं है। जो परतन्त्र जीवन मे ही जीवन का आनन्द मानते है, उन्हे क्रिया का महत्त्व कैसे मालूम हो सकता है ? लेकिन बिना क्रिया के स्वतन्त्रता नही है और स्वतन्त्रता न होने के कारण हाय-हाय मची है।

अगर आप पराधीनता और परालम्बन का त्याग नही कर सकते तो कम से कम पराधीनता पर गर्व करना तो त्याग सकते है ! आप उत्तम स्वादिष्ट भोजन करके गर्व करते है लेकिन समझ नही आता कि आपके गर्व का आधार क्या है ? आपने दूसरे का दिया खाया है, फिर गर्व क्यो ? गर्व हो तो भोजन बनाने वाली बाई को हो सकता है। वह सोच सकती है कि मैंने बढिया भोजन बनाकर दूसरो का पेट भरा है ! आप किस बात पर अहंकार कर सकते है ? और असल मे उस बाई को भी गर्व करने का अधिकार नही है, क्योंकि उसने अन्न पैदा नही किया है। अन्न किसान पैदा करता है। कदाचित् किसान का गर्व समझ मे आ सकता है। आप अपनी असमर्थता पर, पराधीनता पर और परालम्बन पर गर्व करे तो आपकी मर्जी !

मित्रो ! आपका ज्ञान, क्रिया को छोड़कर खाने-पीने मे ही कल्याण समझ बैठा है और इसी कारण आप अहंकार करते है। अहंकार के बदले आत्मनिन्दा करो और तत्त्व की गहराई मे जाकर विचार करो तो आपका अहं-

कार विलीन हो जायगा ।

आज मैं आपका आत्मसाक्षी बनकर आपकी ओर से आपकी निन्दा करता हू। मैं पूछता हू कि आप जिन आलीशान हवेलियों का गर्व करते हैं, उन्हे आपने बनाया है? अगर उनका एक भी पत्थर खिसक जाय तो उसे भी आप नही जमा सकते। फिर गर्व का आधार क्या है? इस तरह दूसरो के बनाये मकान मे रहना परतन्त्रता है—गुलामी है। इसमे स्वतन्त्रता कहाँ है?

बहिने बँगडियाँ पहिन कर हाथ कडा रखती होगी, लेकिन मैं पूछता हू कि बँगडी मे से एक भी मोगरा निकल जाय तो क्या वे उसे बना कर जड सकती हैं? अगर नही जड सकती तो गर्व किस विरते पर! यो तो गौरैया (गौरगौरी) पुतली को भी गहने पहनाये जाते हैं, लेकिन वह क्या गर्व कर सकती है? वह गर्व कैसे करे? उसे तो दूसरों ने गहने पहनाये है। इसी प्रकार जो बहिने दूसरो के दिये कपडे पहिनती हैं वे भी कैसे गर्व कर सकती हैं। बहिन! आप अपनी आत्मा को ऐसी शिक्षा दीजिए कि वह पुकार उठे— 'हे आत्मा! तुझे धिक्कार है, जो तू दूसरो की दी हुई वस्तुओं पर गर्व करती है!'

कपडा बनाने वाला दूसरा, सिलाई करने वाला दूसरा और धोने वाला दूसरा है। ऐसी दशा मे पहनने वाला गर्व क्यो करता है! अगर तुम्हारे लिए काम करने वाले लोग अपना-अपना काम वन्द कर दे तो कैसी बीतेगी? जब तुम उनकी कला नही जानते तो उनके काम बन्द कर देने पर रोना स्वाभाविक है। बहिने जो कपडा पहनती हैं उनमे क्या एक भी ऐसा है जो उनका खुद का बनाया हो?

'नही !'

पहले की रानियाँ चौसठ कलाओ मे निपुण होती थी। वे शस्त्र बाँधकर लडने लग जाती थी लेकिन किसी ऐसी चीज का उपयोग भी नही करती थी जिसे बनाना उन्हे न आता हो। वे नये-नये कला-कौशल निकाल कर अपने वस्त्राभूषण सजाया करती थी। आज की स्त्रियाँ यह सब कहाँ करती हैं ? दर्जी मशीन से बेलबूटे निकाल देता है और ये पहनकर अभिमान करती है कि ऐसी चीज उसके पास नही है, मेरे पास है ! लेकिन बहिनो ! जरा विचार करो कि तुम्हारा क्या है जिस पर तुम गर्व करती हो !

भाइयो ! आप मुझे अपना धर्मगुरु मानते है। इसलिए मै कहता हू आप अभिमान का त्याग करे। मै आपको निरभिमान देखना चाहता हू। चक्रवर्ती भी, जो स्वय कपडा बनाने की कला मे कुशल होते थे, कपडो का अभिमान नही करते थे, तो आप जो कपडा बनाना ही नही जानते, कैसे अभिमान कर सकते है ! प्रत्येक वस्तु का उपयोग करते समय यह विचार कर लो कि यह वस्तु मैने बनाई हे या नही। और साथ ही यह सोच लो कि जब मैने नही बनाई है तो फिर अभिमान कैसा ?

अगर आप खाने का अभिमान करते तो कीडे-मकोडे क्या आपसे अधिक अभिमान नही कर सकते ? मिष्ठान मे पडने वाले कीडे आपको बुरे क्यो लगते है ? इसलिए कि मिष्ठान्न उन्होने बनाया नही और आ कैसे गये ? लेकिन यही बात आप अपने विषय मे भी सोचिये। आप कीडो के समान बन रहे है या -

भाइयो और बहिनो !

याद रक्खो कि ज्ञानयुक्त क्रिया के बिना और क्रियायुक्त ज्ञान के विना धर्म और ससार को नही जान सकते । अतएव जो भी क्रिया सामने आवे उस पर विचार करो कि यह क्रिया मैंने की है या नही ? अगर नही की है तो उस पर मैं अभिमान कैसे कर सकता हू ! इस प्रकार विचार कर उस क्रिया का बदला देने की भी चिन्ता रक्खो । अगर आपने ऐसा नही किया तो सिर पर ऋण चढा रहेगा । जिस प्रकार होटल में भोजन करने पर कीमत चुकानी पडती है, उसी प्रकार क्रिया का बदला देना भी उचित है । आज आप सीधा खाते हैं तो यह मत समझिए कि यह आपको यो ही मिल गया है । आप को जो प्राप्त होता है वह आपकी किसी क्रिया का फल है । इसे खाकर अगर आपने ससार और धर्म की सेवा न की तो समझ लीजिए कि आपने अपनी सचित पूँजी गँवा दी है । कोई भी विचारवान् व्यक्ति दीवालिया बनना पसद नही करता । लेकिन पुण्य के विषय मे यह बात क्यो भुला दी जाती है ? पुण्यरूपी पूजी को भोगने वाले उसे घटने नही देने का विचार क्यो नही रखते ?

आप पाखाने मे शौच जाते हैं या नही ?

'जी हाँ ।'

कभी पाखाने को साफ भी करते है ?

'नही ।'

अगर एक दिन भी पाखाने की सफाई न की जाय तो क्या होगा ? ऐसे पाखाने को आप साफ नही करते और जो साफ करता है उसे आप क्या समझते हैं ?

'नीच !'

फिर भी लोग दावा करते है कि हम ज्ञान और क्रिया को समझते हैं ! जो पाखाने को अस्वच्छ बनाता है वह तो ऊँचा है और जो स्वच्छ करता है नीच है ! क्या यही ज्ञान और क्रिया का समझना कहलाता है ? ऐसी समझ को क्या कहा जाय !

कदाचित् आपका यह खयाल हो कि आप पुण्यवान् है और भगी पुण्यहीन है। तो आप जब बालक थे तब आपकी माता ने क्या आपकी अशुचि न उठाई होगी ? क्या इस कारण आपकी माता पुण्यहीन हो गई ? और आप पुण्यवान् हुए ? मित्रो ! आपकी स्वतन्त्रता लुट गई है, फिर भी अगर आप निरभिमानी बने तो किसी न किसी रूप मे दुनिया की सेवा मे आ सकते है।

ससार मे सबसे बडा काम भगी का है। भगी चाहे तो एक ही दिन मे आपकी हवेली नरक की याद दिलाने लगे, नगर नरक बन जाय और आप घबरा उठे। जो लोग स्वतन्त्र है और जगल मे टट्टी जाते है वे तो कदाचित् न भी घबरावे, मगर बडे कहलाने वाले लोग सबसे पहले घबरा जाएँगे। तात्पर्य यह है कि समाज के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य को करके शाति कायम करने वालो के प्रति आपको कृतज्ञ होना चाहिए। अगर आपमे कृतज्ञता नही है तो कम से कम उन्हे घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से तो मत देखिए।

लोग अन्धेरे मे पडे हुए है, इसलिए उन्हे उजेले मे लाने के लिए मै कहता हू कि जिस तरह मैं सब सन्तो से

प्रेम करता हू, उसी तरह आप भी ऊँच-नीच का भेद छोड़ कर सब से प्रेम करो और उन्हे अपना सहायक समझो । आप हमेशा पढते है—

मित्ती मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणई ।

अर्थात्—समस्त प्राणियो पर मेरा मैत्रीभाव है। मेरा किसी के प्रति वैरभाव नही है। इस पाठ के अनुसार नरक मे पडे हुए जीव क्या आपके मित्र नही है ? मगर ऐसा भी नही होना चाहिए कि पास के जीवो को भूल जाओ और जो नरक म पडे है, सिर्फ उन्ही को मित्र मानने लगो। अगर रोटी बना कर देने वाले पास के मनुष्य को आप नीच मानेगे तो नरक के जीवो को किस प्रकार मित्र समझ सकेगे ?

मित्रो ! समय को देखो। युगधर्म को पहचानो। अपनी बुद्धि को विवेक के मार्ग पर चलाओ। ज्ञान के द्वारा निर्धारित किये हुए काम को करने वाले ही विजयी हो सकते है। ज्ञान से निर्णय किये बिना ही काम करने वाले विजय नही प्राप्त कर सकते। अतएव ज्ञान की बड़ी महिमा है। ज्ञान के बाद ही सम्यक् क्रिया आती है। शास्त्रकारो ने ज्ञान को पहले स्थान दिया है और उसके बाद क्रिया को। आप लोग आज ज्ञान को भूल रहे है, ज्ञान की कोई आवश्यकता नही समझते और कद्र भी नही करते, लेकिन ज्ञान से उत्तम कोई वस्तु नही है। गीता मे भी कहा है—

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते ।

इस ससार मे ज्ञान के समान और कोई पवित्र वस्तु

नही है। ज्ञान सर्वोत्कृष्ट वस्तु है और अखिल कर्म की समाप्ति शुद्ध ज्ञान मे ही हो जाती है।

जैनसिद्धान्त के अनुसार विचार किया जाय तो इस बात मे और ही तत्व निकलता है। स्याद्वाद सिद्धान्त का उपयोग किये बिना किसी भी बात का मर्म पूरी तरह समझ मे नही आ सकता। जैनसिद्धान्त के अनुसार तेहरवें गुणस्थान को छोड़कर चौदहवे गुणस्थान मे जाने पर क्रिया का नाश हो जाता है। उस समय क्रिया नही रहती। साथ जाने वाली चीज ज्ञान के सिवाय और नही है। भगवती सूत्र मे एक प्रश्नोत्तर आता है। गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया– 'भगवन्! ज्ञान इसी भव मे साथ रहता है या परभव मे भी ?' भगवान् ने उत्तर दिया–– 'इस भव मे भी साथ रहता है और परभव मे भी साथ रहता है।'

मतलब यह है कि क्रिया की समाप्ति ज्ञान मे हो जाती है। अतएव ज्ञान के समान अन्य कोई भी वस्तु नही है।

मगर यह मत भूल जाना कि ज्ञान की पवित्रता को जान लेने मात्र से ही ज्ञान नही होता। ज्ञानी पुरुषो का चारित्र तो उनके अन्तिम शरीर के साथ समाप्त हो गया है, परन्तु उस चारित्र का ज्ञान अभी तक मौजूद है। आप ज्ञान से ही भगवान् महावीर को पहिचानते हैं। लेकिन आज हँसी–मजाक मे ज्ञान का नाश हो रहा है। आज बालको और युवको के दिमाग मे जहर भरने वाले, कुवासनाओ को उत्तेजित करने वाले उपन्यासो के ढेर लग रहे हैं। इन्हे ज्ञान या ज्ञान का साधन समझ लेना विष को

पीयूप समझ लेता है। यह पुस्तके भुलावे मे डालने वाली हैं। इनसे भारतवर्ष की पवित्र सस्कृति का सत्यानाश हो रहा है। जिसके प्रताप से कार्य की सिद्धि हो जाने पर कर्म मात्र का परित्याग हो जाय वही सच्चा ज्ञान है।

गीता का एक श्लोक है—

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर'।

अर्थात्—योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन जिस ओर है, उसी ओर विजयश्री, ध्रुव नीति आदि हैं।

गाधीजी ने धनुर्वर अर्जुन का अर्थ 'क्रिया' किया है और योगेश्वर कृष्ण का अर्थ 'ज्ञान' किया है। योगेश्वर कृष्ण के आदेश से अर्थात् ज्ञान के आदेश से क्रिया जहा की जायगी वही सफलता प्राप्त हो सकेगी। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बहुत भारपूर्वक लिखा है कि आज हम लोग योगाध्याय से निकलकर गडबडाध्याय मे पड गये हैं। आज हमारे लिए पुस्तके पढकर समझना कठिन हो गया है कि वास्तविक ज्ञान क्या है ?

इस जमाने मे भी बहुत लोग हैं जो कहते है कि पढे-लिखे आदमी ज्यादा खराब होते हैं, इसलिए पढाना बुरा है। स्त्रियो को तो मूर्ख रहना ही अच्छा है। उन्हे ज्ञान सिखाने से हानि होती है।

मैं पूछता हू कि यह अक्षर विद्या पुरुषो से तो निकली नही है, स्त्रियो से ही निकली है, फिर अक्षरज्ञान को पैदा करने वाली स्त्रिया ही अक्षरज्ञान न पढे, इस विधान का कारण क्या है ? भगवान् ऋषभदेव की दो कन्याएँ थी। एक का नाम ब्राह्मी और दूसरी नाम सुन्दरी था। भग-

वान् ने सर्वप्रथम दोनों पुत्रियो को अक्षरज्ञान सिखलाया था। इन दोनो के नाम से ब्राह्मीलिपि और सुन्दरी गणित नाम प्रचलित हुआ। आप लोग आज स्त्रियो को पढाना हानिकारक समझते हैं तो क्या आप लोगों मे भगवान् ऋषभदेव से अधिक बुद्धि है? ब्राह्मीलिपि के बावन अक्षरो का ही यह प्रताप है कि आप हजारो–लाखो वर्ष पूर्व की बात जान रहे है। एक अगरेज विद्वान ने ब्राह्मीलिपि के बावन अक्षरो की तुलना जहाज के साथ करते हुए लिखा था कि ये बावन अक्षर जहाज है। जैसे जहाज एक द्वीप का माल दूसरे द्वीप मे पहुचाता है उसी प्रकार यह बावन अक्षर पूर्वकालीन पुरुपो की बाते हमारे पास पहुचाते है। इन बावन अक्षरो की ही महिमा है कि हम अपने पूवजों के चरित और ज्ञान-विज्ञान को आज जान सकते हैं।

मित्रो! जिसे शास्त्ररूपी चक्षु प्राप्त नही है वह अन्धा है। हजारो वर्ष पहले की बाते शास्त्र द्वारा ही जानी जा सकती हैं। दूर से दूर की बाते भी शास्त्र ही वतलाता है। भगवान् ऋषभदेव आदि का चरित आपने कैसे जाना? सिद्धशिला, नरक और स्वर्ग का वृत्तान्त आपको कैसे विदित हुआ? इन सब वस्तुओ को इस भव मे आँखो द्वारा नही देखा है। शास्त्रो से ही इनका ज्ञान हुआ है। अगर बावन अक्षरो का शास्त्र हमारे–आपके सामने न होता तो क्या दशा होती? हम लोग न जाने किस बीहड अन्धकार मे भटक रहे होते। मगर ब्राह्मी-लिपि का ही यह प्रताप है कि हमे उस अन्धकार मे नही भटकना पड रहा है और हमे ज्ञान का आलोक प्राप्त है। ब्राह्मी कन्या थी, पुरुप नही थी। फिर आज की कन्याएँ

पढने-लिखने से किस प्रकार बिगड जाएँगी ? आपको जो बात सूझ रही है वह क्या भगवान् ऋषभदेव को नही सूझी थी ? अगर भगवान् आपसे अधिक ज्ञानी थे तो उन्होने ब्राह्मी को लिपिज्ञान क्यो दिया ?

एक सम्प्रदाय वालों का कहना है कि साधुओ के सिवाय औरो को खाने को देकर शस्त्र तीखा मत करो। भोजन देने से शस्त्र तीखा हो जाता है और भूखे मारने से भोटा (मोंथरा) हो जाता है। किन्तु यह कथन अज्ञान-पूर्ण है। इनके कथनानुसार अगर एक महिला यह विचार करती है कि मेरी लडकी के आँखे होगी तो वह पुरुषो को देखेगी। देखने पर नीयत बिगड जाना भी सभव है। इस प्रकार आँखे रहने से शस्त्र तीखा होगा। ऐसा विचार करके वह महिला अपनी लडकी की आँखे फोड डाले तो आप उसे क्या कहेगे ?

'पापिनी !'

जो महिलाएँ अपनी लडकी की आँखो को अच्छी रखने के लिए लडकी की आँखो मे काजल आजती है, वे बहिने उसकी मा है या शत्रु ?

'मा !'

मगर खाने को देने से शस्त्र तीखा होता है, ऐसा कहने वालो की श्रद्धा के अनुसार तो वह बहिन लडकी की आखो मे काजल लगाकर शस्त्र तीखा कर रही है ! इस-लिए न लडकी को खिलाना चाहिए और न आखो मे अजन ही आजना चाहिए। फिर तो उसे लेजा कर कही समाधि करा देना ही ठीक होगा ! कैसा अनोखा विचार है !

लडकी की माता को पहले ही ब्रह्मचारिणी रहना उचित था। तब मोह होने का प्रश्न ही उपस्थित न होता। लेकिन जब मोहवश होकर सन्तान उत्पन्न की है तो लालन-पालन करके उस मोह का कर्ज चुकाना है। इसी कारण शास्त्र मे माता-पिता और सहायता करने वाले को उपकारी बतलाया है। भगवान् ने कहा है कि सन्तान का लालन-पालन करना अनुकम्पा है।

साराश यह है कि जो माता अपनी कन्या की आखे फोड दे उसे आप माता नही वैरिन कहेगे। लेकिन हृदय की आँखे फोडने वाले को आप क्या कहेगे ? कन्याशिक्षा का विरोध करना वैसा ही है जैसे अपनी सतति की आँखे फोड देने मे कल्याण मानना। जो कन्याओ की शिक्षा का विरोध करते है वे उनकी शक्ति का घात करते है। किसी की शक्ति का घात करने का किसी को अधिकार नही है। हा, शिक्षा के साथ सत्सस्कारो का भी ध्यान रखना आवश्यक है। कन्याओ की शिक्षा की योजना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कन्याएँ शिक्षिता होने के साथ सुसस्कारो मे भी सम्पन्न बने और पूर्वकालीन सतियो के चरित्र पढकर उनके पथ पर अग्रसर होने मे ही अपना कल्याण माने। यह बात तो बालको की शिक्षा के सम्बन्ध में भी आवश्यक है। ऐसी दशा मे कन्याओ की शिक्षा का विरोध करना उनके विकास मे बाधा डालना और उनकी शक्ति का नाश करना है।

लोग कहते ह कि लडकी को क्या हुडिया लिखनी है जो वह पढाई करे ! परन्तु ब्राह्मी को क्या हुडिया लिखनी थी जो वह पढी ? ब्राह्मी तो ब्रह्मचारिणी ही रही थी।

भगवान् को चिन्ता हुई कि मैं ऐसी दिव्य कन्या को दूसरे को सौपूंगा और वह इसका नाथ बनेगा ? ब्राह्मी अपने पिता की चिन्ता को समझ गई। उसने कहा—पिताजी, आप चिन्ता क्यो करते है ? हमारे रोम-रोम मे शील बसा हुआ है। हमे सुसराल का नाम लेने में ही लज्जा मालूम होती है।

ब्राह्मी अगर विद्या न पढी होती तो क्या ऐसा कह सकती थी ?

'नही।'

बहुत से लोगों की धारणा है कि लिखने-पढने से लडकों-लडकियो का बिगाड होता है। लेकिन बिना पढे-लिखे लोग क्या बिगडते नही है ? नुकसान क्या पढे-लिखे ही करते हैं और बिना पढे-लिखे नही करते ? ग्रन्थकारों का कथन है कि ज्ञानी के द्वारा कोई भूल हो जाय तो वह जल्दी समझ जाता है। मगर मूर्ख तो नुकसान करके भी प्राय नही समझता।

भगवान् ने कहा है कि अगीतार्थ साधु चाहे सौ वर्ष का हो, फिर भी उसे गीतार्थ साधु की नेश्राय मे ही रहना चाहिए। पच्चीस साधुओ मे एक भी साधु अगर आचाराग और निशीथसूत्र का जानकार हो और वह शरीर त्याग दे, तो भादों का महीना ही क्यो न हो, शेष चौबीस को विहार करके आचाराग और निशीथसूत्र के ज्ञाता मुनि की देखरेख मे चले जाना चाहिए। अगर उनमे दूसरा कोई साधु आचाराग, निशीथ का ज्ञाता हो तो उसे अपना मुखिया स्थापित करना चाहिए।

मतलब यह है कि शिक्षा के साथ उच्च क्रिया लाने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए मगर मूर्ख रहना किसी के लिए भी उचित नही है ।

विद्वान् और मूर्ख के बुरे और अच्छे कामो मे भी कैसा अन्तर होता है, इस विषय मे ग्रन्थकारो ने एक दृष्टान्त इस प्रकार दिया है —

एक विद्वान को जुआ खेलने का व्यसन लग गया था । जुआ के फदे मे फँसकर उसने गाठ की सारी पूँजी गँवा दी और अपने पत्नी के आभूषण भी वेच डाले । उसकी दशा बडी हीन हो गई । लोग उसकी बात पर विश्वास नही करते थे और घर के लोग भी उसे दुत्कारते थे ।

धन सवधी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उस विद्वान को चोरी करने के सिवाय और कोई मार्ग दिखाई न दिया । अन्त मे लाचार होकर उसने यही करने का निश्चय कर लिया । वह सोचने लगा—चोरी किसके घर करनी चाहिए ? अगर किसी सेठ के घर चोरी करूँगा तो वह चोरी मे गये धन को भी हिसाव मे लिखेगा । सेठ लोग पाई-पाई का हिसाव रखते है । और जव-जव वह हिसाव देखेगा तव तक गालियाँ देगा । अगर किसी साधारण आदमी के घर चोरी करूँगा तो वह रोएगा । उस वेचारे के पास पूँजी ही कितनी होती है !

इस प्रकार विद्वान ने सव का विचार कर देखा । अन्त मे उसने निश्चय किया कि औरो के घर चोरी करना तो उचित नही है, राजा के यहा चोरी करनी चाहिए ।

इस प्रकार निश्चय करके वह राजा के यहाँ चोरी करने गया।

राजा ने एक बन्दर पाल रक्खा था। बन्दर राजा को बडा प्रिय था। वह उसे अपने साथ ही खिलाता और साथ ही रखता था। रात के समय जब राजा सोता तो बन्दर नगी तलवार लेकर पहरा दिया करता था। राजा बन्दर को अपना बडा प्रिय मित्र समझता था।

राजा सो रहा था। बन्दर नगी तलवार लिये पहरा दे रहा था। इसी समय विद्वान चोरी करने के लिए पहुचा।

बन्दर राजा का मित्र है, लेकिन वह विद्वान चोरी करने आया है इस कारण शत्रु है। फिर भी देखना चाहिए कि विद्वान शत्रु मे और मूर्ख मित्र मे कितना अन्तर है? और दोनो मे कौन अधिक हितकर या अहितकर है?

राजा गाढ निद्रा मे लीन था। उसी समय मकान की छत पर एक साँप आया। साँप की छाया राजा पर पडी। बन्दर ने साँप की छाया को साँप ही समझ लिया और विचार किया कि यह साँप राजा को काट खाएगा! वह चपल और मूर्ख तो था ही, आगे-पीछे की क्यो सोचने लगा? उसे विचार ही नही आया कि छाया पर तलवार चलाने से साँप तो मरेगा नही, राजा ही मर जायगा। वह तलवार सँभालकर छायारूपी साँप को मारने के लिये तैयार हुआ।

मूर्ख मित्र की बदौलत राजा के प्राणपखेरू उडने मे देरी नही थी। विद्वान् खडा-खडा यह जब देख रहा था। उसने सोचा—'इस मूर्ख मित्र के कारण वृथा ही

राजा की जान जा रही है। चाहे मैं पकडा जाऊँ और मारा जाऊँ मगर राजा को बचाना ही चाहिए। अपनी आँखों के आगे राजा का वध मे नही होने दूँगा!' यह सोचकर विद्वान एकदम झपट पडा और उसने बन्दर की तलवार पकड ली। बन्दर और विद्वान में झगड़ा होने लगा। इतने मे राजा की नीद खुल गई। वह हडबडा कर उठा और बन्दर तथा विद्वान की खीचतान देखकर और भी विस्मित हुआ। राजा के पूछने पर विद्वान ने कहा— यह बन्दर आपके प्राण ले रहा था पर मुझसे यह नही देखा गया। इसी कारण झपट कर मैने तलवार पकड़ ली है।'

राजा—तू कौन है?

विद्वान—मैं? मै चोर हूं!

राजा—बन्दर मुझे कैसे मार रहा था?

विद्वान—आप सो रहे थे और मै चोरी करने की ताक मे आया था। छत पर साँप आया। उसकी छाया आपके शरीर पर पडी। छाया को साँप समझ कर यह बन्दर तलवार चलाने को उद्यत हुआ। मुझसे यह नहीं देखा गया। मैंने झपटकर तलवार पकड़ ली।

विद्वान की बात सुनकर राजा सोचने लगा—प्रजा को अशिक्षित रखकर बन्दर के समान मूर्ख बनाए रखने से क्या हानि होती है, यह बात आज मेरी समझ मे आई। मगर राजा ने पण्डित से पूछा—तुम पण्डित होकर चोरी करने आये हो?

पण्डित—मैं जुआ खेलने के व्यसन मे पड़ गया था।

एक दुर्व्यसन भी मनुष्य के जीवन को किस प्रकार पतित कर देता है, किस प्रकार विवेक को विनष्ट कर देता है, इसके लिए मै उदाहरण हू। जुआ के दुर्व्यसन नें मेरी पण्डिताई पर पानी फेर दिया है। मेरी विद्वत्ता जुए से कलकित हो रही है। मै आपके सामने उपस्थित हू। जो चाहे, करें।

मतलब यह है कि नादान दोस्त की अपेक्षा ज्ञानवान शत्रु भी अधिक हितकारी होता है। ज्ञानवान् अपने कल्याण-अकल्याण को शीघ्र समझ जाता है। ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को शीघ्र ही सन्मार्ग पर ले जाता है। पथभ्रष्ट मनुष्य भी, अगर उसके हृदय मे ज्ञान विद्यमान है तो, एक दिन सत्पथ पर आये बिना नही रहेगा। अतएव प्रत्येक दशा मे ज्ञान जीवन को उन्नत बनाने मे सहायक होता है।

अगर आप लोग ज्ञान का सच्चा महत्त्व समझते हैं तो अर्हन्त भगवान के ज्ञान का प्रचार कीजिए। आप स्वय ऐसे काम कीजिए जिससे ज्ञान का प्रचार हो। अर्हन्त के ज्ञान का प्रचार अक्षरज्ञान के बिना नही हो सकता। यह विचार कर ही भगवान ऋषभदेव ने ब्राह्मी को लिपिज्ञान दिया था। भगवान के आशय को आप समझिए और अपनी सतति को मूर्ख मत रहने दीजिए। ज्ञान का प्रचार करने का उद्योग कीजिए। ज्ञान की वृद्धि उन्नति का मूल मत्र है। आपके पास जो भी शक्ति हो, ज्ञान के प्रचार मे लगाइए। इतना भी न कर सके तो कम से कम ज्ञान और ज्ञान-प्रचार का विरोध तो मत कीजिए। ज्ञान की शिक्षा की निन्दा करना, उसमे रोडे अटकाना और जो लोग ज्ञान का प्रचार कर रहे है उनका विरोध करना बुरी बात है।

ज्ञान का प्रचार शासन की प्रभावना का प्रधान अङ्ग है। सच्चे ज्ञान का प्रचार होने पर ही चारित्र के विकास की संभावना की जा सकती है। आप लोग ज्ञान और चारित्र की आराधना करके आत्म-कल्याण मे लगे, यही मेरी आंतरिक कामना है।

७—आत्मा: दुधारी तलवार

जिन्होने वस्तुत्त्व का यथार्थ बोध प्राप्त नही किया है और जो बहिर्दृष्टि बने हुए है, वे अपने सुख-दुःख का कारण सही रूप मे नही समझ पाते। वे निमित्त कारण को ही देखते हैं और उपादान कारण का विचार ही नही करते। मिर्च के तीखेपन को और मिश्री की मिठास को वे जानते है, मगर उन्हें यह मालूम नहीं होता कि उस तीखेपन का या मिठास का अनुभव होता किसे है ? अगर नीम मे ही कटुकता है और हमारी संवेदना कोई काम नही करती तो ऊँट को मीठा लगने वाला नीम हमे कटुक क्यों प्रतीत होता है ? क्या नीम ऊँट के लिए और मनुष्य के लिए अपना स्वाद बदल लेता है ? नहीं। नीम अपना स्वभाव नहीं बदलता। लेकिन जीव की संवेदना शक्ति ही नाना रूप धारण करके वस्तु को नाना रूप मे ग्रहण करती है। दही किसी को रुचिकर और किसी को अरुचिकर क्यो प्रतीत होता है ? आत्मा की संवेदना शक्ति का ही यह सब खिलवाड है। यही बात सुख और दुःख के विषय में समझी जा सकती है। एक आदमी जिसे दुःख मानता है, दूसरे के लिए वह दुःख नही है। यही नही वल्कि उसके लिए वह सुख है। और दूसरे का माना हुआ सुख एक के लिए दुःख प्रतीत होता है। यह बात हम लोग व्यवहार मे सदा देखते रहते है। पर इसका कारण क्या है ?

मिर्च तीखी प्रतीत होती है मगर वह अपने तीखेपन को नही जानती। मिश्री की मिठास मिश्री को मालूम नही है। मिर्च का तीखापन और मिश्री की मिठास आत्मा ही जानती है। मगर लोग आत्मा को भूल जाते है और स्थूल पदार्थो को पकड बैठते हैं और मानते है कि मिठास मिश्री मे ही है और तीखापन मिर्च मे ही है। एक लकडी या पत्थर की पुतली के मुँह मे मिश्री या मिर्च डाली जाय तो क्या उसे मिठास या तीखास का अनुभव होगा ?

'नही।'

तो फिर मानना चाहिए कि मिठास और तीखास का अनुभव करने वाला आत्मा ही है। आत्मा ही कर्त्ता है और आत्मा ही विधायक है। इसी प्रकार ससार की समस्त वस्तुओ पर विचार किया जाय तो यही सर्वत्र यही चमत्कार दिखाई देगा।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए बहुत-से पोथो की आवश्यकता नही होती। ज्ञान तो एक छोटी-सी घटना और थोडी-सी बात से भी हो सकता है। और ज्ञान होने पर अज्ञान उसी प्रकार नष्ट हो जाता है। जैसे प्रकाश होने पर अन्धकार।

ऋषि मुनि कहते आये हैं कि—हे मानव! तू बाहरी वैभव मे क्यो उलझा है ? स्थूल और निर्जीव पदार्थों के फेर मे क्यो पडा है ? उन्हे सुख-दुख का विधाता क्यो समझ रहा है ? सुख-दुख के मूल स्रोत की खोज कर। देख कि यह कहाँ से और कैसे उत्पन्न होते है ? अपने मन को स्थिर करके, अपनी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाकर विचार करेगा तो स्पष्ट दिखाई देगा कि तेरा आत्मा ही

तेरे सुख और दु ख आदि का विधाता है। उसी ने इनकी सृष्टि की है और वही इनका विनाश करता है। इस तथ्य को समझ जाने पर तेरी बुद्धि शुद्ध और स्थिर हो जायगी और तू बाह्य पदार्थों पर राग-द्वेष करना छोड देगा। उस अवस्था मे तुझे समता का ऐसा अमृत प्राप्त होगा जो तेरे समस्त दुःखों का, समस्त व्यथाओ का और समस्त अभावों का अन्त कर देगा।

तू अपने बधन का निर्माता आप ही है और मुक्ति का विधाता भी आप ही है। तू स्वय दु ख का निर्माण करता है और फिर हाय–हाय करता है, लेकिन निर्माण करना नही छोडता। मिथ्याज्ञान के कारण जीव दुखो का विनाश करने के लिए जो प्रयत्न करता है, उसी प्रत्यन में से अनेक दु ख फूट पडते हैं। इस प्रकार दुःखों की दीर्घ परम्परा चल रही है। इस परम्परा को समाप्त करने का उपाय सम्यग्ज्ञान ही है। सम्यग्ज्ञान के अपूर्व प्रकाश मे दु खो के आद्य स्रोत को देख कर उसे बन्द कर देने से ही दु खो का अन्त आता है। दु खों का आद्य स्रोत आत्मा का विकारमय भाव है। इस प्रकार आत्मा ही दुखो का कर्त्ता और सहर्त्ता है।

तोता पकडने वालों के विपय मे सुना जाता है कि वे जगल में एक गिर्री लगाते हैं। तोता आकर उस पर बैठ जाता है। तोते के बैठने पर गिर्री घूमने लगती है। तोता यह समझकर कि यदि मैं गिर्री को छोड दूँगा तो गिर जाऊँगा, गिर्री को और मजबूती के साथ पकड़ता जाता है। ज्यों-ज्यो वह मजबूती के साथ गिर्री को पकडता है, गिर्री अधिक–अधिक तेजी के साथ घूमती जाती

है। अगर तोता अपने पखों के बल को याद करके गिर्री को छोड दे तो वह उड जाय और गिर्री का घूमना भी बन्द हो जाय। मगर वह अपने पखो का बल भूल जाता है और गिर्री पर बैठा हाय-हाय करता रहता है। परिणाम यह होता है कि उसे बन्धन मे पडना पडता है।

गिर्री की तरह ही यह ससार घूम रहा है। इस घूमते हुए ससार को पकड कर इसके साथ ही आत्मा भी चक्कर खा रहा है। आत्मा ससार को दोष देता है मगर यह क्यो नही सोचता कि ससार को पकड किसने रक्खा है ? आत्मा ने ही ससार को पकड रक्खा है, इसी कारण वह ससार के साथ घूम रहा है। जिस दिन वह ससार का आसरा छोड देगा उसी दिन उसे आनन्द का लाभ होगा और विग्रह शात हो जायगा। मगर ज्यो-ज्यो ससार घूमता है, त्यो-त्यो आत्मा इसे ज्यादा मजबूती से पकडता है और समझता है कि अगर मैंने ससार को छोड दिया तो गिर जाऊँगा। तोते की तरह आत्मा इसी भ्रान्ति मे पडा है। अगर आत्मा समझ ले कि मेरे घूमने से ही ससार घूमता है तो उसके सब चक्कर मिट जाएँ।

मित्रो ! अगर आप वास्तविक कल्याण चाहते है तो इस भूल पर विचार करो। इस प्रकार सुख और दु ख का कर्त्ता आत्मा ही है। शास्त्र भी यही कहते है—

अप्पा मित्तममित्तं च।

अर्थात्—आत्मा स्वय ही अपना मित्र है और स्वय ही अपना शत्रु है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि मित्र किसे कहते है ? मिठाई और चूरमा खाने वाले मित्र तो बहुत मिलेगे, मगर सकट के समय साथ देने वाले मित्र

विरले ही होते हैं। सम्पत्ति के समय मिठाई–चूरमा खाने वाले और मीठी-मीठी बातें बनाने वाले किन्तु सकट के समय किनारा काट जाने वाले लोग मित्र नही छिपे शत्रु है। सच्चा मित्र वह है जो घोर से घोर सकट आने पर भी अपने मित्र का साथ देता है और अपने मित्र को सकट से बचाने के लिए अपने प्राणो को भी सकट मे डाल सकता है। सच्चे मित्र की कसौटी ऐसे अवसर पर ही होती है।

श्री जम्बू स्वामी ने अपनी पत्नियो के सामने मित्रता का एक दृष्टान्त देकर कहा— तुम प्रेम दिखलाती हो, मगर सच्ची मित्रता यह नही है। ऊपरी सासारिक व्यवहार को देखकर ही यह नही समझा जा सकता कि सच्चा मित्र कौन है ? इस विपय मे एक दृष्टान्त सुनो।

एक राजा का प्रधान था। राजा उसका खूब आदर-सत्कार करता था। प्रधान विवेकवान् था। उसने विचार किया

राजा योगी अगनि जल, इनकी उलटी रीति।
बचते रहियो परसराम, थोडी पाले प्रीति॥

अतएव सिर्फ राजा के प्रेम पर निर्भर रहकर किसी दूसरे को भी अपना मित्र बनाये रखना उचित है। मित्र होगा तो समय पर काम आयगा।

इस प्रकार विचार कर प्रधान ने एक नित्य मित्र बनाया। प्रधान अपने इस मित्र के साथ ही खाता, पीता और रहता था। वह समझता था कि नित्य मित्र भी मेरा आत्मा है। इस प्रकार प्रधान अपने मित्र को बडे प्रेम से रखने लगा।

एक मित्र पर्याप्त नहीं है, यह विचार कर प्रधान ने दूसरा मित्र भी बनाया। यह मित्र पर्व मित्र था। किसी पर्व या त्यौहार के दिन प्रधान उसे बुलाता, खिलाता-पिलाता और गपशप करता था। प्रधान ने एक तीसरा मित्र और बनाया जो सैन-जुहारी मित्र था। जब कभी अचानक मिल गया तो जुहार उससे कर लिया करता था। इस प्रकार प्रधान ने तीन मित्र बनाये।

समय ने पलटा खाया। राजा, प्रधान पर कुपित हो गया। कुछ चुगलखोरो ने राजा के कान भर दिये कि प्रधान ने अपना घर भर लिया है, राज्य को अमुक हानि पहुचाई है, यह गया है, वह किया है, आदि आदि। राजा कान के कच्चे होते है। उसने एक दिन पुलिस को हुक्म दे दिया कि प्रधान के घर पहरा लगा दो और प्रात.काल होते ही उसे दरबार मे हाजिर करो।

प्रारम्भ मे राज्य-व्यवस्था प्रजा की रक्षा के उद्देश्य से की गई थी। लोगो ने अपनी रक्षा के लोभ से राजा की शरण ली थी। मगर धीरे-धीरे राजा लोग स्वार्थी बन गये। पहले राजा और प्रजा के स्वार्थों मे विरोध नही था। राजाओ का हित प्रजा का और प्रजा का हित राजा का हित था। मगर राजाओ की विलासिता और स्वार्थ भावना ने प्रवेश किया। तब प्रजा के हित का घात करके भी राजा अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। तभी से राजा और प्रजा के बीच सघर्ष का सूत्रपात हुआ। आज वह सघर्ष अपनी चरम सीमा को पहुच गया है और राजा के हाथो से शासन-सूत्र टूट रहा है। राजतन्त्र मरणासन्न हो रहा है और प्रजातन्त्र का उदय हो रहा है।

चुगलखोरो ने झूठे–झूठे गवाह पेश करके सिद्ध कर दिया कि प्रधान दुष्ट है। राजा ने प्रधान को गिरफ्तार करने की आज्ञा दे दी। इधर राजा ने आज्ञा दी और उधर प्रधान के किसी हितैषी ने प्रधान को राजाज्ञा सबधी सूचना देकर कहा—'गिरफ्तारी मे देर नही है। इज्जत बचाना हो तो निकल भागो।'

प्रधान अपनी आबरू बचाने के उद्देश्य से घर से वाहर तो निकल पडा मगर सोच-विचार मे पड गया कि अब कहाँ जाऊँ? और किसकी शरण लूं? अन्त मे उसने सोचा—मेरे तीन मित्र हैं। तीन मे से कोई तो शरण देगा ही। मगर मेरा पहला अधिकार नित्य मित्र पर है। पहले उसके पास ही जाना योग्य है।

प्रधान आधी रात और अन्धेरी रात मे नित्य मित्र के घर पहुचा। किवाड खटखटाए। मित्र ने पूछा—कौन है?

प्रधान ने दबी आवाज मे कहा—धीरे बोलो धीरे! मे तुम्हारा मित्र हू।

मित्र—मैं कौन?

प्रधान—तुम तो मुझे स्वर से ही पहचान लेते थे। क्या इतनी जल्दी भूल गये? मैं तुम्हारा मित्र हू।

मित्र—नाम बताओ?

प्रधान—अरे! नाम भी भूल गये! मैं प्रधान हू।

मित्र ने किवाड खोलकर आधी रात के समय आने का कारण पूछा। प्रधान ने राजा के कोप की कथा कहकर कहा— यद्यपि मैं निरपराध हू, मगर इस समय

मेरी कौन सुनेगा ? इसीलिए मैं तुम्हारी शरण मे आया हू । आगे जो होगा, देखा जायगा ।

मित्र--राजा के अपराधी को मेरे घर में शरण ! मै बाल-बच्चे वाला आदमी हू । आपको मेरे हानि-लाभ का भी विचार करना चाहिए ! राजा को पता चल गया तो मेरी मट्टी पलीद होगी ! अगर आप मेरे मित्र है तो मेरे घर से आपको अभी-अभी चला जाना चाहिए ।

प्रधान--मित्र, क्या मित्रता ऐसे ही वक्त के लिए नही होती ? इतने दिन साथ रहे, साथ खाया-पिया और मौज की ! आज सकट के समय धोखा दोगे ? क्या आज इसी उत्तर के लिए मित्रता बाधी थी ?

मित्र--आप मेरे मित्र है, इसी कारण तो राजा को खबर नही दे रहा हू । अन्यथा फौरन गिरफ्तार न करवा देता ? लेकिन अगर आप जल्दी रवाना नही होते तो फिर लाचार होकर यही करना पडेगा ।

प्रधान--निर्लज्ज ! मैंने तुझे अपनी आत्मा की तरह स्नेह किया और तू इतना स्वार्थी निकला ! विपदा का समय चला जायगा, मगर तेरी करतूत सदा याद रहेगी ।

बाहर रात्रि का घोर अन्धकार था और प्रधान के हृदय मे उससे भी घनतर निराशा का अन्धकार छाया था । उसे अपने पर्वमित्र की याद आई । मगर दूसरे ही क्षण ख्याल आया--जब नित्यमित्र ने यह उत्तर दिया है तो पर्वमित्र से क्या आशा की जा सकती है ? मगर चलकर देखना तो चाहिए । इस प्रकार विचार कर वह पर्वमित्र के घर पहुंचा । सारी घटना सुनने के बाद मित्र ने

हाथ जोडकर कहा——मेरी इतनी शक्ति नही कि राजा के विरोधी को शरण दे सकूँ ! आप भूखे हो तो भोजन कर लीजिए। वस्त्र या धन की आवश्यकता हो तो मै दे सकता हू। मगर आपको स्थान देने मे असमर्थ हूं।

प्रधान—मैं नङ्गा या भिखारी नही हूं। मेरे घर धन की कमी नही है। मैं तो इस सकट के समय शरण चाहता हू। जो सकट के समय सहायता न करे वह मित्र कैसा ?

जे न मित्र-दुख होहिं दुखारी।
तिनहिं विलोकत पातक भारी॥

जो अपने मित्र के दु.ख से दुखित नही होते, उन्हे देखने मे भी पाप लगता है।

मित्र—मैं यह नीति जानता हूं, मगर राजविरोधी को अपने यहाँ आश्रय देने की शक्ति मुझमे नही है।

प्रधान ने सोचा—हठ करना वृथा है। नित्य मित्र जहाँ गिरफ्तार कराने को तैयार था वहा यह नम्रतापूर्वक तो उत्तर दे रहा है ! यह विपत्ति मित्रो की कसौटी है।

निराश होकर प्रधान सेनजुहारी मित्र की ओर रवाना हुआ। उसने सोचा——इस मित्र पर अपना कोई अधिकार तो है नही, मगर कसौटी करने मे क्या हर्ज है ? यह सोचकर वह अपने तीसरे मित्र के घर पहुचा। राजा के कोप की कहानी सुनाकर आश्रय देने की प्रार्थना की। मित्र ने दृढता के साथ कहा—खैर, यह तो राजा का ही कोप है, अगर इन्द्र का कोप होता और मै सहायता न देता तो आपका मित्र कैसा ? आप ऊपर चलिए और

निश्चिन्त होकर रहिये। यह घर आपका ही है।

प्रधान की प्रसन्नता का पार न रहा। मन ही मन कहा— इसे कहते हैं मित्रता! समय पर ही मित्रता की पहिचान होती है।

प्रधान अपने मित्र के साथ भीतर गया। मित्र ने उसका सत्कार करके कहा—अगर आपकी कोई आवश्यकता हो तो बिना सकोच कह दीजिए। प्रधान के मना करने पर उसने कहा मनुष्य मात्र भूल का पात्र है। अगर कोई भूल हो गई हो तो आप मुझसे छिपाइए नही। सच-सच कह दीजिए। रोग का ठीक तरह से पता लगने पर ही सही इलाज हो सकता है।

प्रधान सोचने लगा—अपनी बात ऐसे मित्र से नही कहूगा तो किससे कहूगा? और प्रधान ने उसके सामने अपना दिल खोलकर रख दिया। मित्र ने उसे आश्वासन दिया।

प्रात काल प्रधान के घर की तलाशी ली गई। तभी पता चला कि प्रधान घर मे नही है। चुगलखोरो की बन आई कहा—प्रधान अपराधी न होता तो भागता ही क्यो? भागना ही उसके अपराधी होने का सबसे बडा सबूत है। राजा के दिल मे बात ठस गई। उसने कहा—ठीक है। पर भागकर जायगा कहाँ? जहाँ भी होगा पकडवा कर मँगवा लिया जायगा।

प्रधान का आश्रयदाता मित्र प्रात काल ही राजा के दरबार मे जा पहुचा था। वह चुपचाप सारी बाते सुनता रहा। सारे शहर मे हलचल मची थी।

सब बातें सुन चुकने के बाद मौका देखकर प्रधान के मित्र ने मुजरा किया। राजा ने कहा–सेठ, तुम कभी आते नही। आज आने का क्या कारण है?

सेठ—पृथ्वीनाथ कुछ अर्ज करना चाहता हूं।

राजा—कहो।

सेठ—एकान्त में निवेदन करूँगा।

राजा और सेठ एकान्त मे चले गये। वहाँ राजा के पूछने पर सेठ ने कहा—महाराज, प्रधानजी ने क्या अपराध किया है? क्या मैं यह जान सकता हूं?

राजा ने कई-एक अपराध गिना दिये, जिनके विषय में कोई प्रमाण नही था।

सेठ—आपके कथन को मिथ्या कैसे कहा जा सकता है? मगर प्रधान के बिना तो काम चलेगा नही। आपने इस विषय मे क्या सोचा है?

राजा—दूसरा प्रधान बुलाएंगे।

सेठ—कदाचित् वह भी ऐसा ही निकला तो क्या होगा?

राजा—उसकी परीक्षा कर लेगे।

सेठ—नये प्रधान की जिस प्रकार जाच करेंगे, उसी प्रकार अगर पुराने प्रधान की जाच की जाय तो क्या ठीक न होगा? वह नया आयगा तो पहले अपना घर बनायगा। उपद्रव मचा देगा। शायद आपको फिर पश्चात्ताप करना पड़े। पुराने प्रधान से अभियोगो के विषय मे आप स्वय पूछते और सतोषजनक उत्तर न मिलने पर यही कैद कर

देते तो क्या हानि थी ? मगर आपने उस खानदानी प्रधान के पीछे पुलिस लगा दी। यह कहाँ तक उचित है, आप सोचें।

सेठ की बात राजा को ठीक मालूम हुई। उसने कहा— सेठ, तुम राज्य के हितचिन्तक हो। इसी कारण तुम्हे राजा और प्रजा के बीच का पुरुष नियत किया है और सेठ की उपाधि दी गई है। मगर प्रधान न मालूम कहाँ चला गया है ! वह होता तो उससे सब बात पूछता।

सेठ—प्रधानजी मेरे आत्मीय मित्र हैं। मुझे उनकी सब बातो का पता है। उनके अभियोगो के विषय मे मुझसे पूछे तो सभव है मैं समाधान कर सकूँ।

राजा—प्रधान तुम्हारे मित्र है ?

सेठ—मैंने न तो कभी छदाम दी है, न ली है। आपके प्रधान होने के नाते और मनुष्यता के नाते उनसे मेरी मित्रता है। मित्रता भी ऐसी है कि उन्होने मुझसे कोई बात नही छिपाई।

राजा—अच्छा, देखो, प्रधान ने इतना हजम कर लिया है।

सेठ—ऐसा कहने वालो ने गलती है। भला वही मँगवा कर देखिए तो समाधान हो जायगा।

वही मँगवाकर देखी गई। राजा ने पाया कि वास्तव मे अभियोग निराधार है। इसी प्रकार और दो-चार बातो की जाँच की गई। सब ठीक पाया गया। सेठजी बीच-बीच मे कह देते थे—हाँ इतनी भूल प्रधानजी से अवश्य हुई है और वे इसके लिए मेरे सामने पश्चात्ताप भी करते थे।

आपसे भी कहना चाहते थे मगर शायद लिहाज के कारण नही कह सके ।

राजा—प्रधान ने पश्चात्ताप भी किया था ? मगर इतने बडे काम मे भूल हो जाना सभव है। वास्तव मे मैंने प्रधान के साथ अनुचित व्यवहार किया है। किन्तु अब तो उसका मिलना कठिन है ? कौन जाने कहाँ चला गया होगा ?

सेठ—अगर आप उनके सम्मान का वचन दे तो मैं ला सकता हू ।

राजा—क्या प्रधान तुम्हारी जानकारी मे है ?

सेठ—जी हा । मगर बिना अपराध सिर कटाने के लिए मैं उन्हे नही ला सकता । आप न्याय करने का वचन दें तो हाजिर कर सकता हू ।

राजा—मैं वचन देता हू कि प्रधान के गौरव की रक्षा की जायगी। यही नही वरन् चुगलखोरो का मुँह काला किया जायगा ।

सेठ—महाराज, अपराध क्षमा करे। प्रधानजी मेरे घर पर हैं ।

राजा—सारे नगर मे उनकी बदनामी हो गई है। उसका परिमार्जन करने के लिए उनका सत्कार करना चाहिए । मैं स्वय उन्हे लिवाने चलूँगा और आदर के साथ हाथी पर बिठाकर ले आऊँगा । जिसने अपमान किया है, वही मान करे तो अपमान मिट जाता है ।

हाथी सजाकर राजा, सेठ के घर की तरफ रवाना हुआ । सेठ ने जाकर प्रधान से कहा—प्रधानजी, आपको

दरबार में पधारना होगा ।

प्रधान—क्या गिरफ्तार कराओगे ?

सेठ—क्या मैं पापी हूं ? महाराज द्वार पर आ पहुचे हैं और आदर के साथ आपको ले जाएँगे ।

सेठ के साथ बाहर आकर प्रधान ने राजा को मुजरा किया । राजा ने हाथी पर बैठने का हुक्म दिया । प्रधान शर्मिन्दा हुआ । तब राजा ने कहा जो होना था, हो चुका । शर्माने की कोई बात नही है । मूर्खों की बातो मे आकर मैंने तुम्हारा अपमान किया है । मगर अब किसी प्रकार की शका मत रक्खो ।

दरबार मे पहुचकर प्रधान ने निवेदन किया—मेरे विरुद्ध जो भी आरोप हैं, उनकी कृपा कर जाच कर लीजिए । इससे मेरी निर्दोषिता सिद्ध होगी और चुगल-खोरो का मुँह आप ही काला हो जायगा ।

जम्बूकुमार अपनी पत्नियो से कह रहे हैं— कहो, मित्र कैसा होना चाहिए ? उनकी पत्नियो ने कहा—पहला मित्र तो मुँह देखने योग्य भी नही है । दूसरे ने हृदय को नही पहचाना और अनावश्यक वस्तुएँ पेश की । तीसरे मित्र ने हृदय को पहचाना और उसी के अनुसार उपाय किया । इसलिए मित्र हो तो तीसरे मित्र के समान ही होना चाहिए ।

जम्बूकुमार कहने लगे—प्रधान के समान मेरे भी तीन मित्र हैं । नित्य मित्र यह शरीर है । इसे प्रतिदिन नहलाता-धुलाता हू, खिलाता-पिलाता हू और सजाता हू । परन्तु कष्ट का प्रसग आने पर, जरा या रोग आने पर

सब से पहले शरीर ही धोखा देता है। इसका सत्कार-सन्मान करने पर भी यह शरीर आत्मा के बधन नही तोड सका। अतएव आत्मा से शरीर को भिन्न और अन्त मे साथ न देने वाला समझकर उस पर ममता रखना उचित नही है।

माता, पिता, पत्नी आदि कुटुम्बीजन पर्वमित्र के समान हैं। पत्नी, पति पर प्रीति रखती है किन्तु जब कर्म-रूपी राजा का प्रकोप होता है तब वह अपने पति को छुडा नही सकती।

जा दिन चेतन से कर्म शत्रुता करे
ता दिन कुटुम्ब से कोउ गर्ज न सरे

जिस दिन कर्म चेतना के साथ शत्रुता का व्यवहार करता है, उस दिन कुटुम्बीजन क्या कर सकते हैं ? वह व्याकुल भले ही हो जाएँ और सहानुभूति भले प्रकट करे किन्तु कष्ट से छुडाने मे समर्थ नही होते।

जम्बूकुमार अपनी पत्नी से कहते हैं—मेरे तीसरे मित्र सुधर्मा स्वामी हैं। उन्होने आत्मा और कर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके उसी प्रकार समझाया है, जैसे सेठ ने राजा को समझाया था। इस तीसरे मित्र की बदौलत ही आत्मा दु ख से मुक्त होता है और अपने परम पद पर प्रतिष्ठित जाता है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य।

हे आत्मा ! अगर तू चाहे तो दु ख क्षर भर भी नही ठहर सकता। मगर तू धन की कुँजी भी अपने हाथ मे रखना चाहता है। यह दोनो बातें एक साथ नही हो

सकती ।

वस्तुत सच्चा मित्र वही है तो उपकार करता है सकट से बचाता है और जो सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करता है । मित्र का यह स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से ही समझने योग्य नही है किन्तु व्यावहारिक और नैतिक दृष्टि से भी समझने योग्य है । आचारागसूत्र मे कहा है -

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्त किं बहिया मित्तं मिच्छसि ।

अर्थात्-हे पुरुष ! तू अपना मित्र आप ही है । दूसरे मित्र की अभिलाषा क्यो करता है ?

इसलिए मैं कहता हू-मित्रो ! शास्त्र के इस वचन को याद रक्खो । ससार-सागर मे अगर नौका का आश्रय लेना हो तो शास्त्र की इन सूक्तियो को मत भूलो । अगर आपने इस तथ्य को कि हम स्वय ही अपने सुख के विधाता है, समझ लिया तो दु ख आपके पास फटक ही नही सकेगा । बल्कि इससे आत्मा को अपूर्व लाभ होगा ।

वास्तव मे दु ख और सुख का कर्त्ता-हर्त्ता आत्मा ही है । लेकिन हम सुख और दु ख दोनो के आने पर गफलत मे पड जाते हैं । सुख के समय आत्मा अहकार मे डूब जाता है और जब दु ख होता है तो बिलबिलाने लगता है । आत्मा जब सुख को पुत्र, पत्नी, परिवार आदि का दिया हुआ मानता है तो अहकार के साथ उसमे एक जहरीली भावना उत्पन्न होती है । मैं श्रेष्ठ हू और दूसरे मुझसे हीन हैं, यह भावना विषैली भावना है । सुख को दूसरे का दिया हुआ मानकर इस विषमय भावना को स्थान देने से आत्मा अमृत को विष और दूध को शराब बना

लेता है। इसके विपरीत जब दुख आ पडता है तो दुख के निमित्त कारण पर निरन्तर मलीन विचार करता रहता है। फिर अपने ही पैदा किये हुए दुख से दुखी होकर अपने को अनाथ मान बैठता है और अपनी रक्षा की इच्छा से दूसरो को नाथ बनाता फिरता है। वह सोचता है कि भेरो, भवानी, भोपा आदि की शरण लेने से मेरे दुःख का अन्त आ जायगा और मैं सुखी हो जाऊँगा। इस प्रकार तत्त्व का बोध न होने के कारण आत्मा सुख में अहकार करता है और दुख मे दीन बन जाता है। इस प्रकार सारा ससार अपनी मिथ्या धारणा के कारण परेशान हो रहा है। सौभाग्य से जब कभी कोई ज्ञानघन मिलता है और उसके मिलने पर आत्मा अपने सम्बन्ध मे विचार करता है, तब उसके नेत्र खुल जाते हैं। उस समय उसकी समझ मे आता है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुक्खाण य सुहाण य।

अरे मानव! तू भ्रम मे क्यो पडा है? अपने अन्तरतम की ओर देख। वही तो वह बडा कारखाना चल रहा है जहाँ सुख और दुख तेरी भावनाओ के साँचे मे ढल रहे हैं! और तू बाहर की ओर देखता है? कस्तूरी-मृग कस्तूरी की खोज के लिए इधर-उधर भागता फिरता है। उसे नही मालूम कि कस्तूरी बाहर नही, उसी के भीतर है। यही दशा तेरी है। तू महात्माओ की वाणी सुन। वीतराग के कथन पर श्रद्धा कर और समझ ले कि अपने सुख-दुख का दाता तू आप ही है। तुझे सुख या दुख देने का सामर्थ्य दूसरे मे नही है। अगर सोने-चादी मे सुख होता तो सब से पहले सोने-चादी वालो की ही

गर्दन क्यो काटी जाती ? स्त्री से सुख होता तो जहर क्यो दिया जाता ? इन सब बाह्य वस्तुओं से सुख होने का भ्रम दूर कर दे । निश्चय समझ ले कि सुख तेरी शान्ति, समता, सतोष और स्वस्थता मे समाया है । तेरी भावनाएँ ही सुख को उत्पन्न करती है । स्त्री, पुत्र और धन-वैभव का अहकार छोड दे ।

दु ख के विषय मे भी यही बात है । समस्त ससार की शक्तियाँ सगठित होकर भी तुझे दुखी नही बना सकती । अपने दु ख का निर्माण तो तू स्वय करता है ।

सिर पर अगारे जल रहे है और कोल्हू मे पिल रहे हैं, तब भी तत्त्वज्ञानी क्या कभी अनाथ भावना उत्पन्न होने देते है ? नही । ऐसे समय मे वे जरा भी दु ख का विचार करते तो नाथ न रहते । मगर उन्होने ऐसा विचार ही नही किया । वे इस विचार पर दृढ थे कि हम अपनी ही आत्मा की शरण लेगे, स्वय सनाथ बनेगे । दूसरे को नाथ नही बनाएँगे । जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह हमारे ही प्रयत्नो का फल है । हमारे ही प्रयत्न से उसका अन्त होगा । दीन बनकर दूसरे का आश्रय लेने से कुछ हासिल होने वाला नही है । यही नही, ऐसा करने से दु ख बढ सकता है, घट नही सकता । दीनता स्वय एक व्याधि है । उसका आश्रय लेने से व्याधि कैसे मिट सकती है ?

मतलब यह है कि सुख, दु ख, कामधेनु, वैतरणी, कल्पवृक्ष और कूट शाल्मलि आदि सब वस्तुएँ आत्मा से ही उत्पन्न होती है । अब यह भी देखना चाहिए कि आत्मा इन सब को किस प्रकार बनाता है ?

हे आत्मा ! तू अन्तर्मुख होकर विचार कर । स्व-

रूप की ओर देख । तू किस प्रकार सुख बनाता है और किस प्रकार दुःख का निर्माण करता है, इस बात को भली-भाँति समझ । कब समझा जाय कि तू अपने के लिए वैत-रणी बना रहा है और कब समझा जाय कि तूने नन्दन वन और कामधेनु का निर्माण किया है ? इस बात पर विचार कर ।

मान लो कि आपके पास एक वस्तु ऐसी है जो दाहिने हाथ में लेने पर रत्न वन जाती है और बाये हाथ मे लेने पर कोयला हो जाती है । आप उस वस्तु को किस हाथ मे लेना पसद करेंगे ?

'दाहिने हाथ मे !'

एक वस्तु दाहिने हाथ में लेने पर फूल की छडी हो जाती है और बाये हाथ मे लेने पर काली नागिन बन जाती है । आप उसे किस हाथ मे लेंगे ?

'दाहिने मे !'

प्रत्येक आत्मा मे ऐसी शक्ति विद्यमान है कि वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ वस्तु को कनिष्ठ वना सकती है और कनिष्ठ से कनिष्ठ वस्तु को श्रेष्ठ बना सकती है ।

> अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
> अप्पा कायदुहा धेणू, अप्पा मे वंदण वणं ॥
> अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
> अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

—उत्तरा० अ० २०१

अर्थात् मेरी आत्मा वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूटशाल्मलि वृक्ष है, आत्मा ही कामधेनु है और आत्मा ही

नन्दन वन है। सुखो और दुखो का कर्त्ता और हर्त्ता भी आत्मा ही है। सन्मार्गगामी आत्मा ही मित्र है और कुमार्ग-गामी आत्मा ही शत्रु है।

श्री आचाराग सूत्र मे भी यही कहा है कि–'हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है, बाहर के मित्र की तरफ क्यो ताकता है !' इसी वाक्य को पलट कर कहा जा सकता है कि—'हे पुरुष ! तू ही मेरा शत्रु है तू दूसरे को क्यो शत्रु समझता है ?'

मित्रो ! जब एक ही वस्तु फूल की छडी बन सकती है और नागिन भी बन सकती है और उसका बनाना भी तुम्हारे ही अधीन है तो उसे नागिन क्यो बनाते हो ? फूल की छडी क्यो नही बनाते ?

आत्मा कब फूल की छडी बनती है और कब नागिन बनती है, इसके लिए कहा गया है—

दुप्पट्ठिय सुपट्ठिए ।

आत्मा जब कुकर्म मे लगती है तो आप ही अपना शत्रु बन जाती है। दुष्कर्म मे सलग्न आत्मा अपने आप का बैरी है। इसी प्रकार सत्कर्म मे लगी हुई आत्मा अपना मित्र है। दुष्कर्म मे लगने का फल दुःख के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

आत्मा दुष्कर्म मे किस प्रकार प्रवृत्त होती है और सत्कर्म मे किस प्रकार लगती है, इस बात को जरा स्पष्ट रूप से समझ लीजिए। पहले कानो को ही लीजिए। इन कानो से धर्मोपदेश सुना या वीतराग भगवान् की वाणी सुनी तो आत्मा ने अपने आपको मित्र बनाया। इसका फल

क्या हुआ ?

त महप्फललं खलु एगस्स वि अ यरिस्स,
धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए ।

अर्थात्—तथा रूप के श्रमण निर्ग्रन्थ के प्रवचन का एक भी वाक्य सुन ले तो उसके फल का पार नही रहता।

इसके विपरीत कानो को अगर वेश्या का गान सुनने मे लगाया या विकथा सुनने मे लगा दिया तो आत्मा दु प्रतिष्ठित हो गया। अतएव मनुष्य को विचार करना चाहिए कि—इन कानो की बडी महिमा है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की अवस्था मे अनन्तकाल तक आत्मा रहा है और उस अवस्था मे उसे कानो की प्राप्ति नही हो सकी। किसी प्रकार अनन्त पुण्य का उदय होने पर पचेन्द्रिय दशा प्राप्त हुई और तब कानों की प्राप्ति हुई है। प्रबल पुण्य का व्यय करके आत्मा ने कानइन्द्रिय प्राप्त की है सो क्या इसलिए कि उसे पाप के उपार्जन मे लगा दिया जाय ? नही ! इनसे परमात्मा की वाणी सुनना चाहिए। यही कानो का सदुपयोग है।

कहा जा सकता है कि दिन भर तो धर्मोपदेश होता नही है, फिर दिन भर इनका क्या उपयोग किया जाय ? इसका उत्तर यह है कि जब धर्मोपदेश सुनने का अवसर न हो तो आत्मा का नाद सुनो। भगवान् के स्मरण का नाद आत्मा मे चलने दो और इसी अन्तर्नाद की ओर कान लगाये रहो। इतना भी न कर सको तो परमात्मा का भजन सुनो। अगर आपने इस तरफ सावधानी रक्खी तो थोडे ही दिनो मे आप देखेंगे कि आपका कितना विकास होता है।

राते रोज विचारो आण कमाया शुं अहीं रे ।
सूता मन महीं रे ॥राते०॥
खावा पीवा प्रभुए दीधुं,
ते माठे तें शुं शुं कीधुं;
ए खातो सरभर कीधी छे के नहीं रे ॥राते०॥
पाप रूपि सो करज थयो छे,
ते साटे शुं पुण्य कर्यो छे ?
वधू घट के सुधार्यो शु तो महीं रे ॥राते०॥

गुजराती कवि कहता है--आप प्रतिदिन रोजनामचा लिखते है । जमा-खर्च, पोते वाकी, लेना-देना और जमा-पूँजी आदि देखते हैं । ससार मे कहावत है कि जिसका हिसाव वरावर हो, उसे कभी हानि नही उठानी पड़ती । जो आय-व्यय का हिसाव नही रखता, उसे आय कम और व्यय ज्यादा हो तो उसकी दुकान कितने दिन चलेगी ?

मित्रो ! आप व्यापारी है और आय-व्यय के हिसाव के महत्त्व को भलीभाँति समझते हैं । आय रुपये-पैसे का हिसाव रखते भी हैं मगर ससार से आगे की भी वात कभी सोचते है ? उसका हिसाव रखते हैं ? अनन्त पुण्य की पूँजी लगाकर आपने यह मानव भव पाया है और दूसरी सामग्री पाई है । अव इस सामग्री से आप क्या कमाई कर रहे हैं ? सोने के समय रुपयो के आय-व्यय का हिसाव कर लेते हो, लेकिन कभी यह भी देखते हो कि मैंने अनन्त पुण्य के वदले मे नवीन कमाई क्या की है ? कही ऐसा तो नही है कि मूल पूजी ही आप समाप्त कर रहे हो ?

खान-पान की सामग्री शुभ कर्म के उदय से मिलती

है और शुभ कर्म, क्रिया से उपार्जित किये जाते हैं। श्रमण के नाम और गोत्र के श्रवण से भी पुण्य की प्राप्ति होती है। इसका अर्थ यह निकला कि– 'हे प्रभो! मैं तुम्हारा ही दिया खाता हू। इस प्रकार की भावना से अहकार का त्याग होता है।

अब यह विचार करना उचित है कि मैं भगवान् के घर का खाता तो हू परन्तु बदला क्या चुकाता हू ?

मैंने कल उपवास किया था। आज दूध पीने लगा तो वह दूध बहुत स्वादिष्ट लगा। उस समय मैं विचारने लगा कि इस एक-एक घूँट दूध की कीमत क्या है ? यह कैसे पैदा हुआ ? साधु होने के कारण हम इसे माँग लाये, अन्यथा हमे इसके माँगने का क्या अधिकार है ? गृहस्थो ने गाय पाल रक्खी है। वे उसे खिलाते-पिलाते हैं और बदले मे दूध लेते हैं। परन्तु हमने क्या गाय पाल रक्खी है ? मगर तप और सयम के लिए इस शरीर की रक्षा करना है, इसलिए माँग लाये। तप-सयम के नाम पर लाये हुए दूध को पीकर अगर आत्मा तप-सयम मे लगा, तब तो उचित है, अन्यथा एक घूँट का बदला चुकाना भी कठिन हो जायगा। लोगो ने यह दूध हमे तप-सयम पालने के लिए दिया है, विकारो का पोषण करने के लिए नही दिया है। धन्ना मुनि बेले-बेले का तप करते हुए पारणे मे ऐसा आहार लेते थे जिसे भिखारी भी पसद न करे। ऐसा आहार करते हुए भी वे तप करते थे। हे आत्मन्! विचार कर कि वे तो नीरस और रूखा-सूखा आहार करते भी तप करते थे और तू कैसा आहार करता है और उसके बदले मे क्या करता है ?

इस प्रकार का विचार करने वाला अपनी जीभ पर अकुश रख सकेगा और उसकी धारणा वन जायगी कि भोजन जीभ को सतुष्ट करने के लिए नही है, वरन तप और सयम की वृद्धि के लिये है। भोजन करके जो तप और सयम का पालन करता है, उसका भोजन करना सार्थक है। जो ऐसा नही करता वह अपने माथे पर कर्ज चढा रहा है।

दिन और रात्रि सबधी प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? इनकी नियमितता पर शास्त्र मे जो जोर दिया गया है, उसका रहस्य क्या है ? जो गृहस्थ या साधु प्रतिक्रमण के असली रहस्य और उद्देश्य को समझकर भावपूर्वक प्रतिक्रमण करेगा, उसके जीवन मे उत्क्रान्ति हुए बिना नही रह सकती।

जो ज्यादा बढिया खाना खाता है और बढिया कपडा पहनता है, उसे समझना चाहिए कि मुझे इसका ज्यादा वदला देना पडेगा। होटल मे जाकर एक आदमी चने चवाता है और दूसरा पिश्ते की बर्फी खाता है। इन दोनो मे से किसे अधिक दाम देने होगे ?

'पिश्ते की चक्की वाले को।'

इसी प्रकार खाना मात्र पराया है। अतएव खाना खाकर अपने कर्त्तव्य को भूल न जाओ। माथे पर जो ऋण ले रहे हो, उसे चुकाने की भी चिन्ता रक्खो और यथाशक्ति चुकाते चलो। अगर तुम साधु हो तो वास्तविक साधुता प्राप्त करो और अगर श्रावक हो तो सच्चे श्रावक के गुण प्राप्त करो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भोजन करने की भावना रक्खो और अडवड खाना छोडो।

श्रावक मास और मदिरा का सेवन नही करता।

क्यो ? इसीलिए कि इन वस्तुओं के खान-पान से प्रकृति सात्विक नही रहेगी और खाता इतना भारी हो जायगा कि उसका चुकता करना कठिन हो जायगा ।

साधु तो दूसरो के घर से आहार लाते हैं पर श्रावक अपने घर का खाते हैं । वह सोच सकते हैं कि हम अपनी कमाई खाते हैं । पराई कमाई नही खाते । मगर उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि उनकी कमाई क्या है ? जरा अपनी कमाई का विचार तो करो ! तुम ऐसी कौन-सी चीज अपने हाथ से उत्पन्न करते हो, जिससे तुम्हारी या दूसरो की जीवन सबधी आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष पूर्ति होती हो ? किसान को ऐसा कहने का अधिकार हो सकता है, क्योकि वह मिट्टी मे से अनाज निकालता है । आप किस विरते पर ऐसा अभिमान-कर सकते हो ? पैसा कमा लेना अपनी कमाई का खाना नही कहलाता ।

मित्रो ! मेरे कहने पर विचार करो । मैं प्रतिदिन कहता हू, इस कारण इस कथन के प्रति उपेक्षा मत करो । आपके जीवन का उत्कर्ष ऐसी बातो पर गहराई के साथ, एकान्त मे विचार करने से और अपने उन विचारो को अमल मे लाने से ही होगा । निस्सदेह आप पुण्यशाली हैं । इसी कारण आपको बुद्धि मिली है । पुण्य से मिली बुद्धि को दूसरो को अपने फदे मे फँसाने के काम मे मत लगाओ । बुद्धि के दो काम हैं । प्रथम यह कि किसी को न फँसाया जाय और दूसरा यह है कि फँसे हुए को निकाला जाय । अगर फँसाने वाला ही बुद्धिमान् समझा जाय तो मच्छीमार को सबसे बडा बुद्धिमान् कहना पडेगा । दूसरे लोग कभी-कभी किसी को फँसाते है किन्तु मच्छीमार का प्रधान

धन्धा ही मछलियो को फँसाना है। मच्छीमार ऐसी चतुराई से जाल वनाता है कि मछलियाँ उसमे फँस तो जाती है मगर निकल नही सकती। फिर भी ज्ञानपूर्वक विचार करने से प्रतीत होगा कि फँसाना कोई बुद्धिमत्ता नही है। फँसे हुए को निकालने मे ही बुद्धिमत्ता है। इस तथ्य पर विचार करने से आप अपनी वुद्धि का सदुपयोग करना सीखेंगे।

आप जो खाते-पीते हैं, उसका कुछ तो बदला दीजिये। आप हल तो नही हाँक सकते, परन्तु समभाव रखकर ससार को शांति तो दे सकते हैं ? प्रत्येक श्वासोच्छ्वास मे पाप लगता है। इसका वदला आप किस प्रकार चुकाते है ?

मतलब यह है कि आपको जो इन्द्रियाँ प्राप्त हैं उनका आप जैसा चाहे वैसा उपयोग कर सकते हैं। प्रत्येक इद्रिय का बुरा उपयोग भी हो सकता है और अच्छा उपयोय भी हो सकता है। आप अपने कानो से उत्तम पुरुपो के वचन भी सुन सकते है, अपना अन्तर्नाद भी सुन सकते है। इससे आपकी आत्मा सुप्रतिष्ठित होगी। यदि ऐसा न करके दूसरो की निन्दा और विकथा सुनने मे कानो का उपयोग किया तो आपकी आत्मा दु प्रतिष्ठित हो जायगी। जिनके कान सामायिक के समय भी ठिकाने नही रहते, समझना चाहिए कि उन्होने आध्यात्मिक स्थिति नही पाई है। इस प्रकार जव आप फूल की छडी बना सकते है तो नागिन क्यो वनाते हैं ? आपकी आत्मा मे जो शक्ति है वह अनन्त पुण्य का निर्माण कर सकती है, फिर उसे आप घोर पाप के निर्माण मे क्यो लगा रहे हैं ?

इन्ही आँखो से सत—महात्माओ को देख सकते हो और

इन्ही से वेश्या का शृंगार भी देख सकते हो। सोचो कि किसके देखने में तुम्हारा हित है? और किसके देखने से आत्मा का पतन होता है? मित्रो! आत्मा को वैतरणी मत बनाओ, कामधेनु बनाओ। हाँ, अगर वेश्या को देखकर हृदय में यह विचार आता हो कि यह भी मेरी माता है तो बात दूसरी है। ऐसी स्थिति में उसके देखने से आत्मा का पतन नही होगा।

महाभारत में एक कथा है। अर्जुन तप कर रहे थे। उन्हे डिगाने के लिए एक अप्सरा आई। उसने विकार-जनक हाव-भाव दिखाने मे जरा भी कसर नही रक्खी। लेकिन अर्जुन ने उसके रगरूप की प्रशंसा करते हुए कहा—अगर मैं इस पेट से जन्मा होता तो मेरा रूप भी ऐसा ही होता! इस विचार के कारण अर्जुन को जो सिद्धि बहुत दिनों मे प्राप्त होने वाली थी वह उसी क्षण प्राप्त हो गई।

बुरे काम से बचने के लिए कइयो ने अपनी आँखे ही फोड ली है। सूरदास के विषय मे यह बात प्रसिद्ध है। भक्त तुकाराम कहते हैं—

> पापाची वासना नको दाउ डोला।
> त्यातुन आधला बराच मीं॥

वह कहते हैं—प्रभो! मुझ पर अगर तेरी कृपा है तो तू इतना कर कि मेरी आखो मे पाप की भावना न आने पावे। अगर तू इतना नही कर सकता तो मुझे अधा तो बना दे! मैं अन्धा होना अच्छा समझता हू मगर विकारयुक्त आखो से पराई स्त्री को देखना पसद नही करता।

इस प्रकार एक-एक इद्रिय के सम्बन्ध मे विचार करो और चौकसी करते रहो कि वह कहाँ-कहाँ जाती है और क्या-क्या करती है ? ऐसा करके अगर आपने इद्रियो को अच्छे काम मे लगा दिया तो आत्मा कल्पवृक्ष बन जायगा। इस प्रकार तुम्हारे दोनो हाथो मे से एक मे नरक की और दूसरे मे स्वर्ग की चाबी है। जिसका द्वार खोलना चाहो, खोल सकते हो। अपनी एक आख से कूटशाल्मलि वृक्ष बना सकते हो और दूसरी को नन्दनवन बना सकते हो। दोनो का बनाना तुम्हारे अधीन है। जो चाहो, बना लो। आपकी शक्ति स्वर्ग और अपवर्ग की ओर भी ले जा सकती है। और नरक एव निगोद मे भी घसीट सकती है जिस ओर जाना चाहो, जा सकते हो। अगर अपनी शक्ति का उपयोग करोगे तो कल्याण के भागी होओगे और अपने मानव-भव को सफल बना सकोगे।

८—चार भावनाएं

भारतवर्ष के विभिन्न सम्प्रदायो एव पन्थो में तत्त्व-ज्ञान की बडी महिमा गाई गई है। किसी पन्थ के शास्त्र को उठाकर देखिये, उसमे तत्त्वज्ञान का महत्त्व अवश्य बतलाया गया होगा। कई-एक दर्शनशास्त्र तो यहा तक आगे बढ गये हैं कि उन्होने सिर्फ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति से मुक्ति होने का विधान किया है। यह ठीक है कि चारित्र की परिपूर्णता के अभाव मे निर्वाण की प्राप्ति नही हो सकती, मगर चारित्र का प्रादुर्भाव तत्त्वज्ञान से ही होता है। जब तक दृष्टि मिथ्या है और मनुष्य मिथ्याज्ञान से घिरा हुआ है तब तक उसमे जागृति नही आती। कर्म के बधन जब कभी ढीले पडते हैं और तत्त्वज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाता है तो मनुष्य के नेत्र खुल जाते हैं। वह जिन वस्तुओ को पहले जानता था उन्ही को बाद मे भी जानता है, लेकिन उसके जानने मे आकाश–पाताल का अन्तर हो जाता है। अक्षरज्ञान से शून्य बालक भी पुस्तक के अक्षर देखता है और अक्षरज्ञान वाला भी देखता है। पर दोनो के देखने मे कितना अन्तर है? यही अन्तर मिथ्याज्ञानी और तत्त्व-ज्ञानी के जानने मे होता है।

तत्त्व का निर्णय करना बुद्धि का काम है। तत्त्व क्या है और अतत्त्व क्या है, इस बात को जाने बिना

आत्मा जड के समान है। तत्त्व-अतत्त्व का निर्णय किये विना बुद्धि का पाना और न पाना समान है और पुरुष पशु से बढ़कर नही कहा जा सकता।

प्रश्न हो सकता है कि तत्त्वज्ञान कहाँ से निकलता है और उसके प्राप्त होने पर आत्मा को क्या लाभ होता है ? तत्त्वज्ञान का प्रादुर्भाव होने पर आत्मा में क्या विशिष्ट परिवर्त्तन हो जाता है ? क्या कोई ऐसी शक्ति प्राप्त होती है जो पहले प्राप्त न हुई हो ?

इस प्रश्न के उत्तर मे शास्त्र कहता है कि आत्मतत्त्व के जान लेने पर इससे भी बडी बात होती है। मगर मुँह से कह देने मात्र से कुछ नही होता। असलियत का पता तो अनुभव करने से चलता है। ज्ञान को जब क्रिया के रूप मे परिणत किया जाता है तभी सिद्धि मिलती है। अगर क्रिया हुई और ज्ञान नहीं हुआ तो अन्धाधुन्धी चलेगी। अतएव यह आवश्यक है कि ज्ञान और क्रिया का समन्वय करके सिद्धि प्राप्त की जाय। अनन्त वार नरक की दुस्सह वेदना भोगने पर भी दु.खो का अन्त नही आया। अब कव तक दु ख भुगतने रहने की ठानी है ? कहाँ तक ससार मे और नरक मे चक्कर खाया करोगे ? मित्रो ! आत्मा को ससार रूपी गडहे मे मत डाले रहो।

किस प्रकार आत्मा गडहे मे से निकल सकता है, यह वात अन्यत्र कही जा चुकी है। 'अप्पा मित्तमित्ता च।' अर्थात् आत्मा स्वय अपना मित्र और स्वय अपना शत्रु है। अव तक तुमने वहुतो पर दोपारोपण किया है, मगर अव इस निश्चय पर आ जाओ कि यह आत्मा ही दु खो का सृष्टा है। जव आत्मा ही अपने दु खो और कष्टो का कर्त्ता

है तो वही उन्हे मिटा भी सकता है। कर्म तुम्हारे किये हुए हैं तो तुम्ही उन्हे मिटा भी सकते हो। हथकडियाँ और बेडियाँ तुमने अपने हाथ से अपने हाथो-पैरो मे डाल रक्खी हैं उन्हे तुम्ही तोड सकते हो। मगर यह सब होगा तभी जब आत्मज्ञान का तेज अपने मे आने दोगे।

जो कर्म किये जा चुके है, उन्हे किस प्रकार नष्ट किया जा सकता है ? इस प्रश्न का समाधान आत्मा की शक्ति को पहचान लेने पर अनायास ही हो जाता है।

एक वेश्या शृगार करके पुरुषो को मोह मे डालने के लिए चल रही है। उसे देखकर अगर किसी के चित्त मे विचार पैदा होता है तो वह आप ही कर्म का बधन बाँधता है या नही ?

'बाँधता है।'

तो जिसमे कर्म बाँधने की शक्ति है, वह ज्ञान प्राप्त करके देखे और अपने मन को पलट कर उस वेश्या को बुरी दृष्टि से देखने के बदले मातृभाव से देखे या कल्याण-भाव से देखे तो वह क्या अपने कर्म का आप ही नाश नही कर सकता ?

'अवश्य कर सकता है।'

वेश्या निमित्त रूप से कर्म का बध करा सकती है और कर्म का नाश भी करा सकती है। वह सुप्रतिष्ठित भी करा सकती है और दुष्प्रतिष्ठित भी करा सकती है। आपको ज्ञानघन बनना चाहिए। ससार तो यही समझता रहेगा कि वेश्या नरक का द्वार है, खराब प्रवृत्ति मे डालने वाली है, घोर मोह मे डुबाने वाली है, लेकिन ज्ञानघन

वेश्या को भी अपने कर्मनाश का कारण बना लेगा। इसलिए शास्त्रकारो ने कहा है—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ्यभाव विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव!

हे देव! अगर तू मुझ पर प्रसन्न है तो मैं और कुछ नही चाहता, केवल यही चाहता हू कि प्राणीमात्र के प्रति मेरे अन्तकरण मे मित्रता का भाव बना रहे।

आप कह सकते हैं कि वेश्या से मैत्री किस प्रकार की जाय? किन्तु वेश्या क्या प्राणी नही है? क्या वेश्या मे आत्मा नही है? उसमे आत्मा ही न होती तो उसको सगति कौन करता? आत्मा होने से ही वह बुरी या भली है। इस प्रकार जब उसमे आत्मा है तो उससे मित्रता करना ही उचित है। धूल को बाजीगर यदि धूल ही बतलाए तो उसकी विशेषता क्या है? उसकी विशेषता तो इस बात मे है कि वह धूल को रुपया के रूप मे दिखला दे। ऐसा करने पर ही आप उसे कुशल बाजीगर समझेंगे। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान की कुशलता इस बात मे है कि वह वेश्या को ज्ञान-प्राप्ति का साधन बना ले। वेश्या को देखकर विचार करना चाहिए कि इसने कैसा सुन्दर शरीर पाया है, फिर भी खेद की बात है कि यह पैसे के लोभ मे फँसकर अपना शरीर नीच से नीच पुरुष को भी समर्पित कर देती है! हाय! पैसे का लोभ कितना बुरा है! मनुष्य को कितने घोर पतन की ओर ले जाता है! ससार के अधिकाश पाप पैसे के लिए या पैसे की बदौलत ही

होते है। पैसे के संग्रह की लालसा ही ससार को विपत्ति मे डाल रही है। पैसे के लिए वेश्या कोढ़ी, रोगी और नीच पुरुष का सत्कार करती है। पैसे के पाश मे फँसकर ही वह अपनी आत्मा की हत्या कर रही है! जिसके पास खडा होने को भी मन नही चाहता, उसे भी वह आदर देती है। यह बुराई इस बात की नही पैसे की है।

हे आत्मन्! यह वेश्या तुझे उपदेश दे रही है कि 'मैं तो पैसे के लोभ मे पडकर बिगडी सो बिगडी पर तू मत बिगडना। मैं पैसे के लिए ही नीच काम करती हूं!' तुम विचार करो कि पैसा कितना नीच है कि तूने मेरी इस बहिन के जीवन को बर्बाद कर दिया! मैं तेरे चक्कर मे नही आऊँगा।

इस प्रकार विचार करने से वेश्या भी मित्र बन सकती है या नही? जिसे सत्सग का लाभ प्राप्त है और जिसमे ज्ञान है, उसी के लिए वह मित्र है, अन्यथा शत्रु तो है ही। जो पैसे के लोभ मे पडकर नीच काम करता है, वह वेश्या के ही समान है।

झूठ बोलना, बाप-बेटे मे झगडा होना, भाई-भाई मे लडाई ठनना, यह सब किस कारण से होता है? इन सब अनर्थो का प्रधान कारण पैसा ही है। पैसा घोर से घोर अनर्थ करा डालता है। वेश्या तो पैसे के लोभ मे पडकर नीच की सगति ही करती है मगर क्या आपने नही सुना कि पैसे के लोभ ने बाप के द्वारा अपने बेटे की हत्या तक करवाई है? इसी लोभ के चगुल मे पडकर पत्नी ने क्या पति को नही मार डाला?

जिसके हृदय मे वेश्या को देखकर इस प्रकार की

विचारधारा बहने लगती है, समझना चाहिए कि वही ज्ञानी है। जब वेश्या रूप निमित्त को पाकर ज्ञान उत्पन्न होता है तो वेश्या भी मित्र–हितकारिणी हुई।

ज्ञानीपुरुष को जैसी शिक्षा सती सीता के उज्ज्वल चरित्र से मिल सकती है वैसी ही शिक्षा मलीन आचरण वाली वेश्या के चरित्र से भी मिलती है। ज्ञानीपुरुष विचार करता है–– आत्मा तो इस वेश्या का भी वैसा ही है, परन्तु दुर्गुणो के कारण उसमे मलीनता आ गई है। दुर्गुण आत्मा को पतित कर देते है, इस सचाई का प्रत्यक्ष उदाहरण वेश्या है। अतएव हे आत्मन्! तू दुर्गुणो से दूर रहना! वेश्या के दुर्गुणो को और पतन को देखकर तू सावधान हो जा।

सीता सत्कर्म मे प्रवृत्त करने के कारण हितकारिणी है और वेश्या (ज्ञानी के लिए) दुष्कर्म से बचाने का निमित्त होने से हितकारिणी है।

ज्ञानियो ने नरक के जीवो का हाल बताया है या नही?

'बताया है।'

मृगापुत्र ने कहा है—

सातो नरका हूं गयो ने अनन्त अनन्ती बार,
छेदन भेदन मैं सह्याजी सही अनन्ती बार।
रे जननी! अनुमति दो म्हारी मांय॥

मृगापुत्र अपनी माता से आज्ञा माँग रहे है। आप भी कभी ऐसी आज्ञा मागते हैं?

'हिम्मत नही।'

हिम्मत तो हम देते हैं मगर आपकी इच्छा कहाँ है ? आपके अन्तर मे भी एक मा है। उससे आज्ञा मागकर कहो कि मैं नरक के जीवो का मित्र बनता हूं। अगर नरक के जीवो की घोर यातना जानकर आप नरक से बचने का प्रयत्न करते हैं तो नरक के जीव आपके मित्र हुए या नही।

लोग सुखी को मित्र मानते हैं, दु खी को मित्र नही बनाना चाहते। लेकिन भगवान् गौतम, महाप्रभु महावीर से आज्ञा प्राप्त करके प्रत्यक्ष नरक देखने गये थे। मृगालोढा का दु ख देखकर गौतम स्वामी के हृदय मे अपूर्व विचार उत्पन्न हुआ। उन्होने मृगालोढा को अपना मित्र बनाया। क्या आप भी किसी ऐसे को अपना मित्र बनाते है ? लेकिन मन्दिरो, स्थानको और गिर्जाघरो मे जाते हैं। मगर कितने ऐसे हैं जो कत्लखाना देखने जाते हैं ? गौतम स्वामी को वहा जाने मे घृणा नही हुई जहा मृगालोढा प्रत्यक्ष नरक भोग रहा था, फिर आपको कत्लखाने म जाने मात्र से घृणा होती है ? मृगालोढा राजकुमार होते हुए भी नरक भोग रहा था। गौतम स्वामी कहते हैं कि मैंने नरक का वर्णन सुना ही था, नरक देखा नही था। परतु अब साक्षात् देख रहा हूं। मृगालोढा को देखकर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि—'प्रभो! मृगालोढा नरक क्यो भुगत रहा है ?' इस चर्चा का नाम भी शास्त्र रक्खा गया है! जब उसका शास्त्र बना है तो उससे कुछ लाभ तो लेना चाहिए! कुछ लाभ न होता तो शास्त्र मे इस चर्चा को स्थान ही क्यों मिलता ?

सोक्रेटीज (सुकरात) एक बडा आत्मवादी विद्वान्

हो गया है। उसके जीवनचरित मे लिखा है—सुकरात के हृदय में कत्लखाने से जैसी जागृति हुई वैसी किसी दूसरी चीज से नही हुई। वह कत्लखाने मे जाता और वहाँ कत्ल के लिए लाई हुई गाय, भैंस आदि को देखता। वह दृश्य कितना करुणा होता होगा! उसे देखकर हृदय हिल जाता होगा। आप लोग मौज-मजे मे पडकर ऐसी बातो को नही देखते, परन्तु प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं। अगर ज्ञान-पूर्वक देखा जाय तो विदित होगा कि कसाईखाने मे मारे जाने वाले पशु भी हमारे मित्र हैं।

कसाईखाने मे जाकर पशु किस प्रकार काटे जाते है, कटते समय पशुओ की चेष्टा कैसी होती है, इत्यादि बातो को सुकरात देखा करता था। वह मन ही मन सोचता—दूर खडे होकर मैं इस दृश्य को देखता हू, फिर भी मेरे रोएँ खडे हो जाते है। मगर इन मारने वालो के चित्त पर कुछ भी असर नही होता। इसका कारण क्या है। इनका दिल क्या फौलाद का बना है? मगर मनुष्य मात्र की मूल स्थिति तो एक ही सरीखी है। जान पडता है, इस निर्दयता का कारण लोभ है। लोभ के कारण इन्हे मारने पर भी दया नही आती और मुझे देखने मात्र से दया आती है।

मतलब यह है कि दया वही उत्पन्न होगी जहाँ स्वार्थ न होगा। सुकरात ने विचार किया प्रभो! तेरी अनन्त दया है कि जिस तृष्णा के वश होकर यह लोग पशुओ को मार रहे हैं और उन्हे दया नही आती, मैं उस तृष्णा से बचा हुआ हू।

आप तो किसी पर छुरी नही फेरते?

'नही !'

आपमे धर्म और जाति सम्बन्धी कुछ ऐसे सस्कार परम्परा से चले आये हुए मौजूद हैं कि आप ऐसे प्रत्यक्ष पाप से बचे है। मगर विचार करो कि रूपान्तर से तो छुरी नही फेरते ? कसाई तो कसाई ही कहलाता है। उसे छुरी फेरते समय दया नही आती, लेकिन कलम फिरा कर आप तो किसी की गर्दन नही काटते ? अगर कलम चलाते समय आपका अन्त करण दयाहीन हो जाता है तो उसका प्रधान कारण लोभ ही है। प्राणीमात्र को अपना मित्र मानकर विचार करो कि— अरे आत्मा ! तेरे मे इतनी तृष्णा क्यो है ? तू दूसरे के पाप देखता है पर अपने पाप क्यो नही देखता ? जब तक तृष्णा से हृदय परिपूर्ण है तब तक कसाई को दया कैसे आ सकती है ! तृष्णा के होने पर दया उड जाती है और केवल स्वार्थ साधने की ही बुद्धि रहती है।

सम्पूर्ण तृष्णा तो उच्च अवस्था प्राप्त होने पर ही जीती जा सकती है, मगर अनुचित तृष्णा पर तो इस अवस्था मे भी विजय प्राप्त की जानी चाहिए। पैसे की आवश्यकता होने से कसाई पशु को मारता है, लेकिन वह चाहे तो खेती करके भी अपनी आवश्यकता पूरी कर सकता है। मगर वह विवेकहीन और मर्यादाहीन तृष्णा मे पड गया है।

सुना है कि देहली मे एक मेम तागे मे बैठकर शराव की दुकान पर शराव लेने गई। पिकैटिंग करने वालो ने विनम्रतापूर्वक शराब न खरीदने का अनुरोध किया। मेम नही मानी। पिकैटिंग करने वाला स्वयसेवक तागे के आगे

सो गया । उसने कहा– मेरे ऊपर से तॉगा हाक ले जाओ । स्वयसेवक अपने विचार मे जैसा पक्का था, मेम भी अपने विचार मे वैसी ही पक्की थी ! मेम ने अपना तागा स्वय सेवक पर चलवा दिया और तागे का पहिया उसकी गर्दन पर फिर गया । इतने पर भी स्वयसेवक ने परवाह न की और वह यही कहता रहा कि शराब मत खरीदो ।

एक आदमी शराब पीने वालों को रोकने के लिए जान देने को तत्पर होता है और दूसरा शराब पीने के लिए दूसरे की जान लेने को तत्पर होता है । अब देखना यह है कि इस अन्तर का कारण क्या है ? मूल की तरफ देखे तो प्रतीत होगा कि एक को ज्ञान है और दूसरे को अज्ञान है । एक तृष्णा के कारण आत्मविस्मृत है और दूसरा अपने प्राण देकर भी उसकी तृष्णा को रोकना उचित समझता है । इस प्राण देने वाले को कौन बुरा कह सकता है ?

'मूर्ख !'

वहुत–से ऐसे लोग मिलेगे जो प्राण देने वाले को ही मूर्ख कहेगे । गीता मे कहा है—

> या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ।
> यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

ज्ञानीलोग जिसे मूर्ख कहते है, उसे अज्ञानी वुद्धिमान् कहते है और ज्ञानी जिसे वुद्धिमान् कहते हैं उसे अज्ञानी मूर्ख कहते हैं ।

जिसके हृदय मे प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभावना उत्पन्न हो जाती है, वह स्वय कष्ट सहन करके भी दूसरो की भलाई करता हे । मैत्रीभावना वाला पुरुप अपने स्वार्थ

मे फँसकर दूसरो के हित का घात नही करता । अतएव मैत्रीभावना धारण करो और जगत् के हित मे अपना हित मानो ऐसा मानने से निश्चय ही आपका हित होगा ।

अब प्रमोद भावना का विचार करे। जिस वेश्या के प्रति मैत्रीभाव रखना है, उस पर प्रमोदभाव भी रक्खा जा सकता है । वेश्या को देखने पर गुणीजनो की याद आएगी । प्रमोदभावना वाला पुरुष विचार करेगा—एक तो यह सुन्दर शरीर वाली है और दूसरी सती भी सुन्दर शरीर वाली है । लेकिन यह अपने सौन्दर्य से लोगो को नरक की ओर ले जाती है और सती नरक से निकालती है । सती के शरीर के टुकडे-टुकडे कर दिये जाएँ तो भी वह अनाचार मे प्रवृत्त नही हो सकती ।

तात्पर्य यह है कि अन्धकार देखने पर ही प्रकाश की याद आती है । ईश्वर को भी लोग तभी याद करते हैं जब दु ख होता है । इस प्रकार वेश्या के प्रति भी प्रमोद-भावना धारण की जा सकती है ।

कष्ट मे पडे हुए, विपदा के सताये हुए जीव पर दया आती है, लेकिन ज्ञानीजन वेश्या जैसे पतित समझे जाने वाले जीव पर भी दया का भाव रखते हैं ।

अब मध्यस्थभावना की बात आती है । ससार में काला तिलक कोई नही निकालना चाहता ! जो दुराचारी है, वह भी दुराचारी नही कहलाना चाहता । ऐसा होते हुए भी वेश्या अपने को वेश्या क्यो कहती है ? इस प्रकार का विचार करके मध्यस्थभावना धारण करो । मध्यस्थ-भावना धारण करने से आत्मा की उन्नति बडे वेग के साथ होती है । राग-द्वेप नही होता तो आत्मा मे समता की

वाल विहाय जलसस्थितमिन्दुविम्ब--
मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम् ॥३॥

अर्थ---प्रभो ! आपका सिंहासन देवों द्वारा पूजा गया है । मै वुद्धिहीन, निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूं । जल मे प्रतिविंवित होने वाले चन्द्रमा को, वालक के सिवाय और कौन पकडने की इच्छा करता है ?

(१)

भगवान् आदिनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य मानतुङ्ग कहते हैं---जिनकी स्तुति इन्द्र ने ऐसे मनोहर स्तोत्र द्वारा की है कि जिस पर तीनों लोको के जीव मुग्ध हो जावे, उन भगवान् की स्तुति मैं भी करूँगा। उन भगवान् के चरणों पर इन्द्र ने अपना मुकुट नमाया है और उसके मुकुट की मणियां भगवान् के चरणो के प्रकाश से प्रकाशित हो उठी हैं।

प्रश्न हो सकता है---इन जड वस्तुओ को तो सूर्य भी प्रकाशित कर सकता है। सूर्य के सामने मणि चमक भी उठती है। ऐसी स्थिति में भगवान् के चरणो की प्रभा से अगर मणि प्रकाशित हो उठी तो इसमे कौन-सी बड़ी बात हो गई!

स्तुति मे इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है। आचार्य कहते है---भगवात् के चरण 'दलितपापतमोवितानम्' हैं। अर्थात् भय एव अज्ञान आदि रूपी मोह-अन्धकार भी भगवान् के चरणो के प्रकाश से नष्ट हो जाता है। जो भव्य पुरुप भावपूर्वक भगवान् के चरणों मे प्रणाम करता है, उसके अन्त करण मे मोह का अन्धकार नही ठहर सकता।

चारित्र, आचरण, सयम और सदाचार---इन चारों

सुधा प्रवाहित होने लगती है। उस सुधा मे ऐसी मधुरता होती है कि उसका आस्वादन करके मनुष्य निहाल हो जाता है। आत्मा को सुखी और शात बनाने के लिए यह भावना अत्यन्त उपयोगी है।

यह चार भावनाएं अगर आपने प्राप्त कर ली तो आपको सर्वत्र शाति मिलेगी। इनसे आपका परम कल्याण होगा और जीवन धन्य बन जायगा।

१—भक्तामर-व्याख्यान

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्—
उद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

अर्थ—भक्तियुक्त देवो के झुके हुए मुकुटो मे लगी हुई मणियो की प्रभा को चमकाने वाले, पापरूप अन्धकार के पटल का नाश करने वाले और इस कर्मयुग की आदि मे, भव-जल मे डूबने वाले मनुष्यो को सहारा देने वाले जिनेन्द्र भगवान् के चरण-युगल को प्रणाम करके—

य· सस्तुत· सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात् ।
उद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथै· ॥
स्तोत्रै. जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारै· ।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥

अर्थ—समस्त आगम के तत्त्व-ज्ञान से उत्पन्न हुई बुद्धि से कुशल इन्द्रो द्वारा, तीन लोक के चित्त को हरने वाले स्तोत्रो द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, उन जिनेन्द्र भगवान् की मैं भी स्तुति करूँगा ।

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ ।
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ॥

बाल विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब--
मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम् ॥३॥

अर्थ--प्रभो ! आपका सिंहासन देवो द्वारा पूजा गया है । मैं बुद्धिहीन, निर्लज्ज होकर आपकी स्तुति करने को तैयार हुआ हूं । जल मे प्रतिबिंबित होने वाले चन्द्रमा को, बालक के सिवाय और कौन पकडने की इच्छा करता है ?

(१)

भगवान् आदिनाथ की स्तुति करते हुए आचार्य मांन-तुङ्ग कहते हैं—जिनकी स्तुति इन्द्र ने ऐसे मनोहर स्तोत्र द्वारा की है कि जिस पर तीनों लोको के जीव मुग्ध हो जावे, उन भगवान् की स्तुति मैं भी करूँगा। उन भगवान् के चरणों पर इन्द्र ने अपना मुकुट नमाया है और उसके मुकुट की मणिया भगवान् के चरणो के प्रकाश से प्रकाशित हो उठी हैं।

प्रश्न हो सकता है—इन जड वस्तुओ को तो सूर्य भी प्रकाशित कर सकता है। सूर्य के सामने मणि चमक भी उठती है। ऐसी स्थिति में भगवान् के चरणो की प्रभा से अगर मणि प्रकाशित हो उठी तो इसमे कौन-सी बडी वात हो गई!

स्तुति मे इस प्रश्न का समाधान कर दिया गया है। आचार्य कहते हैं—भगवान् के चरण 'दलितपापतमोवितानम्' हैं। अर्थात् भय एव अज्ञान आदि रूपी मोह-अन्धकार भी भगवान् के चरणो के प्रकाश से नष्ट हो जाता है। जो भव्य पुरुप भावपूर्वक भगवान् के चरणों मे प्रणाम करता है, उसके अन्त करण मे मोह का अन्धकार नही ठहर सकता।

चारित्र, आचरण, सयम और सदाचार—इन चारों

को 'चरण' कहते हैं। भगवान् का चारित्र, आचरण, सयम और सदाचार इतना वीतरागतापूर्ण है कि उनके चरणो मे झुकते ही ससार के जीवो को अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है और उनके भीतर छाया हुआ मोह का अन्धकार तत्काल नष्ट हो जाता है। यह भगवान् के चरणो की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त भगवान् के चरण 'आलम्बन भव-जले पतताम् जनानाम्' है। अर्थात् भवरूपी समुद्र मे गिरते हुए मनुष्यो के लिए आलम्बन हैं। जिस प्रकार ऊपर चढता हुआ मनुष्य अगर नीचे गिरने लगे और उसे रस्सी का सहारा मिल जाय तो वह गिरने से बच जाता है, उसी प्रकार इस भव–समुद्र मे गिरते हुए जीवो को बचाने के लिए भगवान् के चरण अवलम्बन हैं। इतना ही नही, बल्कि जैसे कोई पुरुष कुए मे गिर पडा हो और वह रस्सी का सहारा लेकर बाहर आ जाता है, उसी प्रकार इस भव–समुद्र मे पडे हुए को बाहर निकालने के लिए भी भगवान् के चरण अवलम्बन हैं। कुए मे पडा मनुष्य बिना सहारे निकल सकता, उसी प्रकार इस भवकूप मे पडा हुआ मनुष्य भी विना सहारा पाये नही निकल सकता। अर्थात् उसका उद्धार नही हो सकता। आचार्य कहते हैं भगवान् ऋषभ-देव के चरण इस भवरूप कूप से निकालने के लिए अव-लम्बन है। यह भी भगवान् के चरण की विशिष्टता है। इन विशेषताओ के कारण भगवान् के चरण सूर्य से भी विशिष्ट है। सूर्य द्रव्यप्रकाश तो देता है मगर भावप्रकाश नही दे सकना। भगवान् के चरण भावप्रकाश देते हैं और उस प्रकाश की लोकोत्तर आभा मे आन्तरिक तम-मोह विलीन हो जाता है। प्रभु के पदयुगल ससार-सागर से

पार उतारने वाली नौका हैं ।

यहा एक प्रश्न और हो सकता है । भगवान् के चरण भव-कूप से निकलने के लिए आलम्बन हैं । भगवान् त्रिलोकीनाथ हैं, वीतराग हैं और सभी भगवान् को मानते हैं । वीतराग होने के कारण उन्हे किसी से प्रार्थना, अनुनय या आजीजी कराने की भी आवश्यकता नही है । उनका सर्वत्र समभाव है । फिर भी भगवान् की चरण-नौका सब जीवो का उद्धार क्यो नही करती ? ससार के जीवो को दु ख मे पडा देखकर तो यही जान पडता है कि इन दुखिया प्राणियो को तारने वाला कोई नही है ! अगर कोई तारने वाला होता तो यह बेचारे नाना प्रकार के कष्टो से क्यो पीडित होते ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है । मान लीजिए, एक मनुष्य कूप मे गिर पडा है । उसमे रस्सी लटकी हुई है । उसे आवाज दी जा रही है कि– इस रस्सी को पकड ले तो हम तुझे बाहर खीच लेगे । इतना होते हुए भी अगर गिरा हुआ मनुष्य लटकती हुई रस्सी को न पकडे तो किसका दोष समझा जाय ?

'गिरे हुए का ही ।'

मधु-विन्दु के लोभ का उदाहरण प्रसिद्ध है । मधु के बूदो के लोभ मे फँस हुए एक मनुष्य को विमान मे बैठने के लिए बुलाया जाय । उससे कहा जाय–'भाई, आ जा । तेरा जीवन चारो ओर से खतरे मे है । तू शीघ्र ही नीचे गिरने वाला है और नीचे गिरते ही भयानक विषधर तुझे डँस लेगा । इसलिए तू इस विमान मे वैठ जा । विमान मे बैठकर तू सकुशल अपने स्थान पर पहुच जायगा ।' मगर

वह मधु का लोभी मधु के बूँदो पर इतना अधिक मोहित हो गया है कि अपने भविष्य की चिन्ता नही करता। बूँदों का लोभ नही छोड़ सकता। ऐसी दशा मे तारक क्या करे ? विमान का अवलम्बन देने के लिए जो तैयार है, उसका क्या अपराध है ?

यही वात भगवान् के विषय मे है। भगवान् वीत-राग है। सबके तारनहार हैं। सव पर समभाव होने से किसी की प्रार्थना की भी अपेक्षा नही रखते। परन्तु जव तिरने वाले की इच्छा ही न हो तो वे तारे कैसे ? वीत-राग होने के कारण भगवान् का न किसी पर राग है, न द्वेष है। उनके चरण-कमल सबके लिए समान हैं। बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र प्रभु के चरणो का सहारा ले सकते है। जो सहारा लेता है वह तर जाता है और जो सहारा लेगा, तर जायगा। मगर मोह की प्रबलता के कारण जो मनुष्य सहारा ही नही लेता, बल्कि लेना ही नही चाहता, वह कैसे तरेगा ? ऐसी हालत मे अगर वह तर नही सकता और दुखो का पात्र वना ही रहता है तो अपराध उन चरणो का नही है। भगवान् के चरणो का आश्रय लेकर तो असख्य मनुष्य तरे हैं। बडे-वडे पापियो को भी भगवान् की चरण-नौका ने तार दिया है।

प्रश्न हो सकता है—जिस समय भयवान् सशरीर विद्यमान थे उस समय उनके चरणो का दर्शन हो सकता था और चरण पकडे भी जा सकते थे। मगर आज क्या किया जाय ? आज भगवान् मौजूद नही हैं और उनके चरण पकडे विना ससार-सागर से तर नही सकते। तो क्या अव अनन्त भवसागर मे ही गोते लगाते रहना पडेगा ?

इस प्रश्न के सम्बन्ध मे पहले ही कहा जा चुका है कि सम्यग्ज्ञान के साथ पालन किया जाने वाला सम्यक् चारित्र ही असल मे चरण है। दयारूप मोक्षमार्ग ही भगवान् का चरण है। और उस मोक्षमार्ग को ग्रहण करना ही भगवान् के चरण ग्रहण करना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ग्रहण न किया जाय तो भगवान् के साक्षात् मिल जाने पर भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता। प्रयोजन की सिद्धि तो इस रत्नत्रय की प्राप्ति से ही हो सकती है। जो मनुष्य ससार-सागर से तिरने की इच्छा रक्खेगा वह कभी नही कहेगा कि भगवान् नही हैं या उनके चरण नही हैं। जब भगवान् के बतलाये सम्यग्ज्ञान चारित्र मौजूद हैं तो समझना चाहिए कि भगवान् के चरण ही मौजूद हैं।

जो जीव भगवान् के चरणो का आश्रय लेना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे आरम्भ और परिग्रह की लहरो से बचकर भगवान् के चरणो का आश्रय ले। जिन्होने प्रभु के परम पावन पद–पकज का आश्रय लिया है, ससार की कोई भी शक्ति उन्हे दु खी नही कर सकी।

हाँ, एक बात ध्यान मे रखनी होगी। एक साथ दो घोडो पर सवार होने की चेष्टा करने से लक्ष्य की प्राप्ति नही होती। ऐसा करने वाला सफलता नही पा सकता। इसी प्रकार धन का भी अवलम्बन चाहने से और भगवान् का भी अवलम्बन चाहने से काम नही चलेगा। जो भगवान् के चरणो का आधार चाहता है उसे धन का आधार त्यागना पडेगा। जो धन के आधार पर निर्भर है उसे भगवान् के चरणो का आधार नही मिलेगा। ठाणागसूत्र

मे कहा हैं—

दुवे ठाणे आया केवलीपण्णत्तं धम्म नो लभेज्जा सवणियाए।

अर्थात् दो बातो को बुरी समझे बिना और उनके प्रति राग का त्याग किये बिना सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म का श्रवण प्राप्त नही होता। वे दोनो बाते हैं—आरम्भ और परिग्रह। जब तक इन दोनो की ओर से आत्मा विमुख न हो जाय तब तक अरिहन्त भगवान् के शरण मे नही पहुचता।

प्रश्न किया जा सकता है—क्या धर्म और ईश्वर का दायरा इतना सकीर्ण है? केवली द्वारा प्ररूपित धर्म को अगर आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये बिना कोई सुन भी नही सकता तो उसका आचरण कैसे कर सकेगा? ऐसी दशा मे केवली का धर्म सिर्फ साधुओ के लिए ही है, गृहस्थो के लिए नही? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि केवली-कथित धर्म उसी को प्यारा लगेगा जिससे आरभ-परिग्रह का त्याग होगा, यह कथन सत्य ही है। मगर यह आवश्यक नही कि सभी लोग एकदम ही सम्पूर्ण आरभ-परिग्रह त्याग दे। जैसे किसी ऊँचे महल पर चढने के लिए सीढियाँ होती है और सर्वसाधारण क्रमश सीढिया पर चढते हैं, उसी प्रकार आरभ-परिग्रह त्यागता चलता है वही केवली-कथित धर्म की ओर उतना ही अग्रसर होता जाता है और उतने ही अशो मे भगवान् के चरणो पर निर्भर बनता जाता है।

महाराज उदायी सोलह देशो पर राज्य करते थे, फिर भी वह श्रावक थे। श्रावक भी वह सिर्फ धर्म का श्रवण करने वाले नही वरन् आराधना करने वाले थे।

उदायी के सिवाय और भी अनेक राजा-महाराजा हुए हैं जिन्होने परमात्मा की शरण ली है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि पूर्णत आरभ-परिग्रह का त्याग किये बिना परमात्मा नही मिल सकता ?

आनन्द श्रावक के पास बारह करोड स्वर्ण-मुद्राएं थी। चार करोड पृथ्वी में गडी थी, चार करोड की ऊपरी सम्पत्ति थी और चार करोड़ व्यापार में लगी थी। यह सम्पत्ति आनन्द श्रावक के पास, भगवान् महावीर ने समक्ष व्रत धारण करने से पहले से ही थी। व्रत धारण कर लेने पर उसने सम्पत्ति बढाने का त्याग कर दिया था। अब आपको केवली—कथित धर्म का श्रवण करने पर धन सबधी ममता घटाना चाहिए या बढाना चाहिए ?

आनन्द श्रावक चार करोड स्वर्ण-मोहरों की पूंजी से व्यापार करता था, मगर सम्पत्ति बढाने का उसने त्याग कर दिया था। इतना विशाल व्यापार करते हुए भी वह सम्पत्ति नही बढने देता था। अब आप विचार कीजिए कि आनन्द ने किस उद्देश्य से और किस प्रकार व्यापार किया होगा ? गहराई से विचार करो तो आपको विदित होगा कि आनन्द का व्यापार कैसा था और आज का व्यापार कैसा चल रहा है ! आज व्यापार के नाम पर गरीबो का किस प्रकार गला घोटा जा रहा है, यह बात उसकी समझ मे आ सकती है, जिसके दिल मे दया का वास हो। आज के व्यापारियो ने व्यापार को व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि का साधन समझ रक्खा है, जब कि वह सामाजिक लाभ का द्वार होना चाहिए। व्यापार भी वही आदर्श समझा जा सकता है, जिसकी छाप दुनिया पर उत्तम

पड़े और जिससे न्याय-नीति का प्रकाश हो। आज लोभ मे पडी दुनिया व्यापार करती है परन्तु दूसरे का गला घोटने के लिए ही। कदाचित् कही ऐसी दुकान हो जहाँ नफा न लिया जाता हो और जो गरीबो का विश्रान्तिस्थल हो तो कितनी अच्छी बात हो।

कहा जा सकता है कि व्यापार मे नफा लेकर धर्म कर देने–दान दे देने मे क्या हानि है? इसका उत्तर यह है कि पहले कीचड से हाथ भरे जाएँ और फिर धोए जाएँ, ऐसा करने से क्या लाभ है? पहले ही नफा न लेकर वस्तु दी जाए तो कितना सुन्दर आदर्श हो। नीतिकार भी कहते हैं—

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।

अर्थात्—पहले कीचड लगाकर फिर धोने की अपेक्षा तो कीचड से दूर रहना ही भला है।

आज मुनाफा न लेने वाली या मर्यादित मुनाफा लेने वाली दुकान कही हो तो उससे जनता को बडी जबर्दस्त शिक्षा मिल सकती है।

कहा जा सकता है कि आज इस प्रकार का व्यापार करने से दिवाला निकल जाने मे क्या देर लगेगी? आज इतनी तेजी–मंदी चलती है कि न पूछिए बात।

यह ठीक है, मगर आज का व्यापार, व्यापार नही, कानून द्वारा सम्मत लूट है। अमेरिका की किसी राजनैतिक घटना का प्रभाव भारत के व्यापार पर पड़े और वह भी अचानक बिजली की तरह पड़े, भला यह भी कोई व्यापार है? इसके अतिरिक्त आज सट्टे के व्यापार की ही सर्वत्र

प्रधानता देखी जाती है। सट्टा देश का दिवाला निकालने का साधन है।

प्रतापगढ मे पन्नालालजी मोगरा नामक एक सज्जन थे। वह श्री राजमलजी महाराज के बडे भक्त थे। एक दिन उन्होने मुनिजी से कहा--महाराज, आजकल व्यापार नही चलता, इसलिए धर्मकार्य करने मे भी मन नही लगता। मुनिजी ने उत्तर दिया तुम श्रावक होकर दु ख मानते हो, यह आश्चर्य की बात है। लोभ मे पडकर दुगने-ड्योढे करना चाहते हो, इसी कारण तुम्हे लगता है कि व्यापार नही चलता ! पन्नालालजी के मन मे मुनिजी की बात बैठ गई। उसी समय उन्होने एक आना प्रति रुपया से अधिक नफा न लेने की मर्यादा कर ली। वह कपडे की दुकान करते थे। उन्होने सब कपडो पर अङ्क चढाकर कीमत निश्चित कर दी। आरभ मे तो उन्हे कुछ असुविधाओ का सामना करना पडा परन्तु कुछ दिनो बाद ऐसा विश्वास जमा कि लोग उन्ही की दुकान से खरीद करने लगे। भील भी उन्ही के ग्राहक बन गये। पन्नालालजी की ऐसी प्रतिष्ठा जमी कि लाखो रुपया खर्च करने पर भी वैसी न जमती। इस प्रकार उनका व्यापार भी खूब चमक उठा और प्रतिष्ठा भी चमक उठी। लोगो मे यह बात फैल गई कि पन्नालालजी झूठ नही बोलते !

आनन्द श्रावक की सम्पत्ति मर्यादित थी। व्रत ग्रहण करने के पश्चात् उसने अपना धन नही बढाया। इसके अतिरिक्त आनन्द का धन उसी के भोग-विलास के लिए नही था, वरन् दूसरे को आपत्ति के समय सहायता पहुचाने के लिए था। एक व्यक्ति वह है जो अपने दीपक से दूसरों

के दीपक को प्रज्वलित करता है और दूसरा वह है जो दूसरो के दीपको का तेल अपने दीपक मे उडेल लेता है। इन दोनो व्यक्तियो मे जो अन्तर है वही प्राय आनन्द के और आधुनिक व्यापारियो के व्यापार मे अन्तर है।

कहने का आशय यह है कि आरम्भ और परिग्रह का त्याग किये विना केवलि द्वारा प्ररूपित धर्म नही सुहाता। यह पीली और सफेद मिट्टी (अर्थात् सोना और चादी) ही धर्म का आचरण करने मे बाधक नही है वरन् लोगो की वढी हुई तृष्णा भी बाधक है। ज्ञानीजन कहते है कि सर्वज्ञ भगवान् के कथित धर्म का श्रवण करने से यह लालसा शात हो जाती है। जिसने धर्म को सुनकर उस पर मनन किया होगा वह अपनी सम्पत्ति को अपने भोग-विलास के लिए नही समझेगा किन्तु ससार के लाभ के लिए समझेगा। और ऐसा समझने वाला ही भगवान् का सच्चा भक्त हो सकता है। इसलिए मैंने कहा है कि एक साथ धन की और भगवान् की सहायता नही मिल सकती।

सेवा करने वाला सेवक कहलाता है। जो भगवान् की सेवा करना चाहता है वह जड पदार्थों की सेवा नही कर सकता। एक प्रश्न आप अपने अन्त करण से पूछिए—तू धन का सेवक है या स्वामी है ? अगर आप धन के सेवक नही है तो भगवान् की सेवा कर सकते हैं और यदि धन के सेवक हैं तो फिर भगवान् के सेवक नही वन सकते। जो धन का गुलाम है उसे अन्याय और न्याय नही सूझता। उसे पैसा ही पैसा सूझता है और जिसे पैसा ही पैसा सूझता है भगवान् कैसे सूझेगा ? वह भगवान् की सेवा नहीं कर सकता। उसके लिये पैसा ही परमेश्वर बन जाता है।

काम कराने के लिए नौकर रक्खा जाता है। अगर नौकर की ही सेवा करनी पडे या उसकी सेवा का उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ पडे तो आप यही कहेगे कि यह नौकर क्या रक्खा हम स्वय इसके नौकर बन गये ! आप ऐसे नौकर को रखना पसद नही करेगे और अलहदा कर देगे। यही वात धन के सम्बन्ध मे है। धन के द्वारा आपने अपनी आत्मा की कुछ भलाई कर ली तब तो आप उसके स्वामी हैं। अगर धन की बदौलत नरक मे पहुचाने वाले काम हुए—धन ने आपको नरक का पात्र बना दिया तो आप धन के स्वामी कैसे कहलाए ? चार आने के लिए झूठ बोलना, कम तौलना, कम नापना अच्छी चीज मे बुरी मिलाकर बेचना और झूठे दस्तावेज बनाना धन की गुलामी करना नही है तो क्या है ? ऐसा धन धनी को भोगता है, धनी उसको नही भोगता।

धन के आगे धर्म प्यारा न लगना धन की गुलामी का अर्थ है। धर्म की परवाह न करने जो अनीति और छलकपट से धन एकत्रित करने मे लगा रहता है, वह वीतराग का मार्ग नही पा सकता। जिसे वीतराग का मार्ग पाना है उसे धन के लिए अन्याय-अनाचार करने का परित्याग करना चाहिए। जो पुरुष ऐसा करने के लिए सकल्प करके तैयार हो जायगा और तात्कालिक कठिनाइयो की परवाह न करके अपने सकल्प पर दृढ रहेगा, वही भगवान् के चरणो का आश्रय पा सकेगा।

भगवान् के चरण भव-कूप मे डूबते को अवलम्बन है। आचार्य ने कहा है कि मैं भी उन चरणो की स्तुति करूँगा।

प्रश्न हो सकता है-- तीन ज्ञान के धनी देवराज इन्द्र ने भगवान् की प्रभावशाली स्तोत्रो द्वारा स्तुति की है। क्या आप उससे भी अधिक प्रभावशाली स्तुति कर सकते हैं ? अगर नही कर सकते तो फिर क्यो व्यर्थ चेष्टा करते हैं ? इसके उत्तार मे आचार्य कहते हैं---

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ ।
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ॥
बाल विहाय जलसस्थितमिन्दुबिम्बम्--
अन्यः क इच्छति जन. सहसा गृहीतुम् ॥३॥

आचार्य कहते हैं--हे प्रभो ! मैं बुद्धिहीन हू । इन्द्र से मैं वुद्धि मे ऊँचा नही हू कि उससे भी बढ़कर स्तुति कर सकूँगा । फिर भी मेरी बाल-लीला नही रुकती । हे इन्द्र द्वारा पूजित सिहासन वाले । जहॉ आपके चरण पडते है उस पाट को भी इन्द्र नमस्कार करता है। मुझमे ऐसी बुद्धि नही है कि आपके गुणो का कीर्तन कर सकूँ। फिर भी आपके गुणकीर्तन की अभिलाषा ऐसी प्रबल हो उठी है कि वह रोके नही रुकती । विद्वत्ता मुझमे से निकल गई है और मैं बालभाव मे आ गया हू। अतएव मुझे यह शर्म नही रही कि मुझसे स्तुति बनेगी या नही बनेगी ! बालक नही सोचता कि मुझसे यह काम हो सकेगा या नही, फिर भी वह काम मे जुट जाता है। ऐसी ही अवस्था मेरी है। मेरी यह स्तुति नही, बालचेष्टा है । जैसे स्तुति बालक जल मे पडे हुए चन्द्रमा के प्रतिविम्ब को पकडने की चेष्टा करता है-- सफलता और असफलता का विचार नही करता, उसी प्रकार मैं भी स्तुति-चन्द्र को पकडना चाहता हू । वह स्तुति-चन्द्र भले ही पकड मे न आवे, परन्तु इस चेष्टा

से मेरा मन अवश्य ही प्रसन्न होगा ।

स्तुति के इस कथन का अभिप्राय हमे समझना चाहिए । इसमे गहरा मतलब भरा है । वे कहते है–मुझे पडित वनना नही आता तो क्या हुआ, बालक बनना तो आता ही है । भगवान् की स्तुति करने के लिए स्तोता को बालक बन जाना चाहिए ।

लोग बालक को बुद्धिहीन और मूर्ख समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं । परन्तु बालक जैसे निरहकार होते हैं, वैसे अगर आप बन जाएँ तो आपका बेडा पार हो जाए । बुद्धिमत्ता का ढोग छोडकर अगर आप अपने अन्त करण मे बालसुलभ सरलता उत्पन्न कर ले तो कल्याण आपके सामने उपस्थित हो जाय । बालक का हृदय कितना सरल होता है, यह बात एक दृष्टान्त से समझिए ।

एक मुहल्ले मे आमने-सामने दो घर थे । उन दोनो घरो मे देवकी और यशोदा नाम की दो लडकिया थी । देवकी और यशोदा नही जानती थी कि हम देवकी और यशोदा हैं, पर उनके माता-पिता ने उन्हे यही नाम दे दिये थे । फाल्गुन का महीना था । दोनो बालिकाओ के माँ-बापो ने उन्हे अच्छे-अच्छे कपडे पहनाये थे । बच्चो को स्वभावत घर प्यारा नही लगता । वे बाहर घूमना-फिरना और खेलना बहुत पसद करते है । शायद अपने शरीर का निर्माण करने के लिए उन्हे प्रकृति से यह अव्यक्त प्रेरणा मिलती है । अगर वालको की तरह आप भी घर से उतना प्रेम न रक्खे तो आपको पता चलेगा कि इसका परिणाम कितना अच्छा होता है ।

देवकी और यशोदा कपडे पहनकर अपने-अपने घर

से बाहर निकली । वर्षा होकर बन्द हो चुकी थी किन्तु पानी गलियो मे अब भी बह रहा था। देवकी और यशोदा उसी बहते पानी मे खेलने लगी । दोनो ने पानी मे अपने-अपने पैर छपछपाये । पैरो के छपछपाने से कीचडभरा पानी उछला और कपडो पर धब्बे पड गये। दोनो के कपडो पर धब्बे पड गए है, यह देखकर दोनो एक दूसरी को आपस मे उलाहना देने लगी । उलाहना देती हुई वह अपने-अपने घर लौटी । कीचड से भरे कपडे देखकर और बालिकाओं का आपस मे उलाहना देना सुनकर दोनों घर वाले झगडने लगे ।

यद्यपि झगडे का कोई ठोस आधार नही था, और अगर दोष समझा जाय तो दोनो बालिकाओ का दोष बराबर ही था, परन्तु दोनो के मा-बापो के दिल मे पहले की कोई ऐसी बात थी कि उन्हे लडने का बहाना मिल गया। दोनो ओर से वाग्युद्ध हो रहा था कि इतने मे एक वृद्धा वहाँ आ पहुची । उसने दोनो घर वालो से हाथ जोडकर कहा--आज होली का त्यौहार है । आनन्द मनाने का दिन है । प्रसन्न होने का अवसर है । फिर आप लोग आपस में एक-दूसरे की होली क्यो कर रहे हैं ? आप दोनो पडोसी हैं । एक के बिना दूसरे का काम नही चल सकता । दोनों लड़किया खेल रही थी । एक के कूदने से दूसरी के कपडे गदे हो गये तो कौन बडी बात हो गई ? इन नादान बच्चो के पीछे आप बडे-बडे क्यो झगडते है ? इससे आपकी ही हँसी होती है ।

वृद्धा के बहुत समझाने पर भी वे न माने । लडाई का जोश इतना तीव्र था कि बुढिया की बात सुनने की

किसी ने परवाह न की। खूब तपे हुए तवे पर पानी के कुछ बूँद कोई असर नहीं करते। इसी प्रकार तीव्र क्रोध से उत्पन्न होने पर शाति की बात व्यर्थ हो जाती है।

इधर दोनो घर वाले झगड़ रहे थे, उधर मौका देखकर दोनो लड़किया फिर घर से बाहर निकल पड़ी। वे वहाँ पहुची जहा पानी बह रहा था। बहते पानी को रोकने के लिए दोनो ने मिलकर रेत का बाँध बनाया। पानी रुक गया। रुके पानी मे दोनो लडकियों ने घास का तिनका या लकड़ी का टुकड़ा डाला। उसे पानी मे गिरते देखकर दोनो उछलने लगी। एक ने कहा—देख, देख, मेरी नाव तैर रही है! दूसरी ने कहा—और मेरी भी तैर रही है। देख ले न!

सयोगवश वह वृद्धा उधर से ही निकल पडी। उसने देखा—इन लडकियो को लेकर उधर झगडा मच रहा है, सिर फुटौवल की नौबत आ पहुची है, और इधर ये मस्त होकर खेल रही हैं। उसने झगड़ने वालो के पास जाकर कहा अरे झगडना बन्द करके एक तमाशा देख लो! पडौसी हो; चाहोगे तभी झगड लोगे, मगर वह तमाशा चाहे तब नही देख पाओगे। आओ मेरे साथ चलो।

तमाशे की वात प्यारी लगती ही है। फिर बुढिया के कहने का ढङ्ग भी कुछ आकर्षक था। अत झगडने वाले बुढिया के पीछे हो लिये और वहाँ पहुचे जहाँ दोनो बालिकाएँ अपनी-अपनी नाव तिरा रही थी। दोनो घर वालो को दिखाते हुए बुढिया ने कहा—यह तमाशा देखो, पानी मे लकडियो के टुकडे तैर रहे है। दर असल यह नाव है।

एक झगडने वाले ने कहा—यह कौन-सा तमाशा हुआ ! तैराई होगी, किसी ने ! वृद्धा—और किसी ने नही, यशोदा और देवकी ने तैराई है । इतना कहकर उसने उन लडकियो से पूछा इनमें कौन किस की नाव है बेटियो ! जरा बताओ तो सही ।

दोनो ने साथ-साथ उत्तर दिया— यह मेरी है, यह मेरी है !

तब मुस्किराती हुई वृद्धा ने कहा—देखो, दोनो लडकिया इकट्ठी हो गई हैं और जिनको लेकर तुम लड रहे हो वह लडकिया भी मिल गई हैं । अब तुम कब मिलोगे ? यह तो नादान बालक होकर भी मिल गई और तुम समझदार होकर भी झगडते रहोगे ? वृद्धा की समयोचित शिक्षा से दोनो घर वाले शर्मिन्दा हो गये । उनकी लडाई समाप्त हो गई और मेल–मिलाप से रहने लगे ।

मित्रो ! बालक लड-झगड कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार अगर आप लोग भी आपस मे एकतापूर्वक रहे तो कैसा आनन्द हो ? एकता आपको इतनी शक्ति प्रदान करेगी कि आप अपने को अपूर्व शक्तिशाली समझने लगेगे । मगर बडे लोगो की लडाई भी बडी होती है । वे लडकर आपस मे मिलते तक नही है । यहाँ तक कि धर्मस्थान मे अगर पास-पास बैठना पड जाय तो भी एक दूसरे को देखकर गाल फुलाने लगते है । यह कहाँ तक उचित है ? ऐसे करने वाले बडे अच्छे या ऐसा न करने वाले नादान बालक अच्छे ? बालक वास्तव मे ही सरलहृदय होते है ।

इसी कारण आचार्य कहते हैं—जब मैं बालक हुआ तभी मुझसे स्तुति बनी । बडा बना बैठा रहता तो स्तुति

बनती ही नही । इस प्रकार अपनी बुद्धिमत्ता का ढोंग छोड कर जो बालक के समान सरल बन जाता है, उसके क्लेशो का अन्त आ जाता है । जब आप सच्चे अन्त करण से अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करेगे और उदारता के साथ अपने अपराधी को क्षमादान देंगे तो आपके हृदय का शल्य निकल जायगा और आप ऐसी शांति पाएँगे, जो अनुभव करने की चीज है । आपस मे वैर-भाव रखना और अदालत की शरण लेना धर्मप्रिय लोगों के लिए उचित नही है । अदालत की शरण लेने से अदावत का अन्त नही होता । ऐसा करने में लाखो-हजारों रुपयों का पानी हो जाता है और अन्त मे अदावत कई गुनी बढ जाती है । अगर दूसरा धर्म छोडता है तो उसका अनुकरण मत करो । तुम अपना धर्म मत छोडो । बालक माता के पेट मे से कुचाले सीखकर नही आते, यहाँ माँ-बाप से ही सीखते हैं । इसलिए उनके सामने शाति और प्रेम का आदर्श उपस्थित करो ।

धर्म और सदाचरण ही प्रभु के चरण हैं । उनकी शरण गहो और उन्हे अपने हृदय मे स्थापित करो । बाल-स्वभाव धारण करके सरलता, शान्ति और स्नेह की भावनाएँ बढाओ । वैर-विरोध को पास मत फटकने दो । इससे आपका अन्त करण हल्का होगा और अन्त करण हल्का होगा तो आत्मा मे गुरुता आएगी ।

बीकानेर,
११-७-३०

{२}

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ॥
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम्,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

अर्थ— हे गुणो के सागर । तेरे चन्द्रमा के समान निर्मल गुणो का बखान करने मे, बुद्धि से वृहस्पति के समान होकर भी कौन समर्थ हो सकता है ? प्रलयकाल के पवन से मगरमच्छ जिसमे उछल रहे हो, उस समुद्र को अपनी भुजाओ से कौन पार कर सकता है ?

स्तुति करने वाले के अन्तकरण मे यह विचार होना आवश्यक है कि वह किसकी स्तुति करता है और स्तुति करने का उनका ध्येय क्या है ? इन बातो पर समुचित विचार करने के वाद की गई, स्तुति कल्याणकारक होती है । देखा-देखी की जाने वाली स्तुति से भी कल्याण तो होता है, मगर मोक्ष नही प्राप्त होता ।

आचार्य मानतु ग कहते है—प्रभो ! वुद्धि मे साक्षात् देवगुरु वृहस्पति के समान होने पर भी तुम्हारे गुणो का कथन करने मे कोई समर्थ नही हो सकता । आपके गुण चन्द्रमा की काति के समान निर्मल अवश्य है, मगर आप

गुणो के सागर है और उनका जो बखान करना चाहेगा वह वृहस्पति के समान बुद्धिशाली होने पर भी परिमित बुद्धि वाला ही होगा ! ऐसी अवस्था मे समस्त गुणो का वर्णन कर सकना किसी के लिए कैसे सभव है ? आपके गुणो का वर्णन करना इसी प्रकार असभव है जैसे—

कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्र,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्यां ।

समुद्र मे जब प्रलयकाल का तूफ़ान चलता है तब उसमे के जीवजतुओ मे उथल-पुथल मच जाती है। जब ऐसा तूफान आया हो तब किसकी शक्ति है कि वह अपनी भुजाओ के बल से समुद्र को पार कर जाय ? ऐसा करना असभव है । इसी प्रकार आपके गुणसमुद्र को कथन द्वारा पार करना मानव की शक्ति से परे है ।

प्रश्न किया जा सकता है जब भगवान् की स्तुति करना इतना असभव कार्य है तो फिर उसे आरभ ही क्यो करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कहते हैं—स्तुति के इस असभव कार्य को क्यो आरभ किया है, यह बात मेरा ही दिल जानता है । दूसरा कोई इसका मर्म नही समझ सकता । अगर कोई मनुष्य प्रलयकाल के तूफान से क्षुब्ध समुद्र मे पड गया हो तो उसे उसी मे पडे-पडे मर जाना चाहिए या किनारे लगने का प्रयत्न करना चाहिए ? समुद्र को पार करने का प्रयत्न करने वाला अपने कर्त्तव्य का पालन करता है । जो कर्त्तव्य का पालन न करके समुद्र मे ही पडा-पडा मर जाता है, निकलने की चेष्टा ही नही करता, वह मूर्ख गिना जाता है ।

यह संसार-समुद्र भी प्रलयकाल के तूफान से क्षुब्ध समुद्र के समान है। ससारसमुद्र मे कर्मरूपी प्रलयकालीन पवन से तूफान उठ रहा है और कुटुम्ब-परिवाररूपी मच्छ-कच्छ जीव है। इस ससार-समुद्र को भी अपनी भुजाओ से पार करना कठिन है, फिर भी कोशिश करना मेरा कर्त्तव्य है।

मित्रो ! इस प्रकार हिम्मत करने वाले ही कठिन-कठिन कार्यों मे भी सफलता पाते हैं। जो कायर पुरुष, पहले से ही हिम्मत हारकर बैठा रहता है और कहता है कि भई, यह काम तो मुझसे नही हो सकेगा, वह साध्य कार्य मे भी सफलता नही पा सकता।

एक वौद्ध सम्प्रदाय के ग्रन्थ मे महाजातक की कथा पढी थी। उसका सार यह है—

किसी सेठ का एक लडका जहाज की मुसाफिरी के लिए तैयार हुआ। उसके पिता ने उसे उसे वहुत समझाया। कहा— वेटा ! अपने घर मे वहुत धन है। जहाज में मुसाफिरी करना खतरनाक है। तू क्यो व्यर्थ कष्ट सहन करता है ? मगर लडका वडा उद्योगशील था। उसने पिता को उत्तर दिया—पिताजी, आपका कथन सत्य है, किन्तु इस धन को उपार्जन करने में आपने भी तो कष्ट सहन किये होगे ? फिर क्या मेरे लिए यह उचित होगा कि मैं स्वय परिश्रम किये विना ही इसका भोग करूँ ? अगर मैं इस धन को, विना परिश्रम किये ही खाने लगा और गुलछर्रे उडाने लगा तो किसी दिन आप ही मुझे कपूत कहने लगेंगे। कदाचित् पितृप्रेम के कारण आप न कहेगे तो भी दुनिया का मुँह कौन बन्द करेगा ? फिर

इस धन का उपार्जन करके आपने जो ख्याति प्राप्त की है, वह ख्याति मैं कभी नही पा सकूँगा। बिना कमाये खाने से मैं मिट्टी के पुतले के समान बन जाऊँगा। जब मैं उद्योग कर सकता हू तो फिर बिना कमाये खाना–पहनना मुझे उचित नही मालूम होता। अत आप कृपा करके आज्ञा दीजिए और आशीर्वाद दीजिए।

अपने पुत्र की कार्यनिष्ठा और साहस देखकर पिता को सतोप हुआ। उसने कहा—ठीक है। सुपुत्र का यही कर्त्तव्य है कि वह अपने पिता के यश और वैभव मे वृद्धि करे। उद्योगशील होना मनुष्य का कर्त्तव्य है। तुम्हारी प्रबल इच्छा है तो मैं रोकना नही चाहता।

साहूकार के लडके ने जहाज तैयार करवाया। समुद्र में जहाज किस प्रकार तूफान से घिर जाता है और उस समय किन-किन वस्तुओ की आवश्यकता होती है, इसका विचार करके उसने सब आवश्यक वस्तुएँ जहाज में रख ली और यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया। चलते-चलते जहाज बीच समुद्र मे पहुचा तो अचानक तूफान घिर आया। जहाज के डूब जाने की स्थिति आ पहुची। मल्लाहो ने तनतोड परिश्रम किया मगर जहाज की रक्षा करने मे सफल नही हो सके। अन्त में वे भी हार गये। उन्होने कह दिया—अब हमारा वश नही चलता। जहाज थोडी देर मे डूब जायगा। जिसे बचने का जो उपाय करना हो करे।

ऐसे विकट प्रसग पर कायर पुरुप को रोने के सिवाय और कुछ नही सूझता। कायर नही सोचता कि रोना व्यर्थ है। रोने से कोई लाभ न होगा। अगर वचाव का कोई

रास्ता निकल सकता है तो सिर्फ उद्योग करने से ही।

मल्लाहो का उत्तर सुनकर साहूकार का लडका पहले शौचादि से निवृत्त हुआ। उसने अपना पेट साफ किया। फिर उसने ऐसे पदार्थ खाये जो वजन मे हल्के किन्तु शक्ति अधिक समय तक देने वाले थे। इसके बाद उसने अपने सारे शरीर मे तेल की मालिश की, जिससे समुद्र के खारे पानी का चमडी पर असर न पडे। फिर उसने शरीर से सटा हुआ चमडे का वस्त्र पहना जिससे मच्छ-कच्छ हानि न पहुचा सके। इतना करने के बाद वह एक तख्ता लेकर समुद्र मे कूद पडा। उस तख्ते के सहारे वह किनारे लगने के उद्देश्य से तैरने लगा।

साहूकार के लडके ने सोचा—ऐसे समय मे जहाज बड़ा नही, आत्मा बडा है। इसलिए जहाज को छोड़ देना ही ठीक है। जहाज छोड देने पर भी मृत्यु का भय तो है ही, लेकिन उद्योग करना आवश्यक है।

मनुष्य के जीवन मे कई बार ऐसे विकट सकटमय अवसर आ जाते है, जब उसकी बुद्धि थक जाती है। किसी प्रकार का निर्णय करना कठिन हो जाता है। एक ओर कुआ दूसरी ओर खाई दिखाई देती है। ऐसे प्रसग पर अपनी बुद्धि को ठिकाने रखना ही बुद्धिमत्ता है। 'परिच्छेदो हि पाडित्यम्' अर्थात् जो दो मार्गो मे से एक मार्ग अपने लिए चुन लेता है, क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्त्तव्य है, यह निर्णय कर लेता है, वही वास्तव मे पण्डित पुरुष है। जो विपत्ति के समय अपनी बुद्धि खो बैठेगा और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय न कर सकेगा, वह विपत्ति को और अधिक बढ़ा लेगा और बुरी तरह चक्कर मे पड़ जायगा।

यह बात केवल लोकव्यवहार के लिए ही नही है, वरन् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सभी पुरुषार्थो के विषय मे लागू होती है। 'सशयात्मा विनश्यति।' सदेह मे पडे रहना और निर्णय न करना अपना नाश करना है। निर्णय किये बिना सिद्धि प्राप्त नही होती।

साहूकार के लडके के सामने इस समय दो बातें उपस्थित थी। एक तो जहाज को बचाने की और दूसरी अपने आपको बचाने की। जब जहाज का बचना सभव न रहा तो उसने बिना किसी दुविधा के आत्मरक्षा करने का निर्णय कर लिया। उसने विचार किया—जब जहाज मे रहने पर भी मैं मर जाऊँगा तो कायरो की तरह क्यो मरूँ? मरना ही होगा तो मर्दानगी के साथ मरूँगा। यद्यपि इस विशाल समुद्र से तैर कर पार होना अशक्य है, लेकिन प्राण छूटने तक हाथ-पैर हिलाते हुए मरूँगा। कायर की मौत मरना उचित नही। सफलता मिले या न मिले, मैं अपना उद्योग नही छोडूँगा।

कार्य मे जो सफलता की आशा रखता है, बल्कि सफलता की खातिरी करके ही जो कार्य करना चाहता है, वह कार्य नही कर सकता। भूल-चूक मे कार्य को आरभ कर देता है और जब सफलता नही पाता तो उसके पश्चात्ताप का पार नही रहता। वह निराशा के गहरे कूप मे गिर पडता है। इसीलिए कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

अर्थात्—तुझे कार्य करने का अधिकार है, फल की लालसा करने का अधिकार नही है। तू निष्कामभाव से अपना कर्त्तव्य पाल। फल तुझे खोजता फिरेगा। तू फल

की आशा की भारी गठरी सिर लाद कर चलेगा तो चार कदम भी नही चल सकेगा ।

साहूकार का लडका पटिया के सहारे हाथ-पैर मारता हुआ समुद्र मे बह रहा था । उस समय समुद्र का देव उसके उद्योग को देखकर सोचने लगा–इससे पूछना तो चाहिए कि जव मौत सामने मुँह फाडे खडी है, तब यह समुद्र को पार करने की निष्फल चेष्टा क्यो कर रहा है ? देव ने आकर पूछा–– ओ पुरुष ! निरर्थक श्रम करने वाला मूर्ख होता है । समुद्र को तैर कर पार करना सभव नही है और फिर तूफान के समय की तो बात ही क्या है । मृत्यु के समय अनावश्यक परिश्रम क्यो कर रहा है ? अब हाथ–पैर हिलाना छोड दे और इच्छा हो तो भगवान् का नाम जप ।

महाजातक हाथ–पैर हिला रहा था । देव की सलाह सुनकर भी वह निराश नही हुआ । उसने देव से पूछा— आप कौन हैं ? देव ने कहा— मैं समुद्र का देव हू ।

महाजातक––आप देव होकर भी क्या हम मनुष्यो से गयेबीते हैं ? आपका काम तो उद्योग करने के लिए उपदेश देने का है, लेकिन आप तो उद्योग छोडकर डूब मरने का उपदेश देते हैं ! आप अपना काम करिये और किसी का भला हो सकता हो तो वह कीजिये । मुझे भुलावे मे मत डालिये । मै अपने उद्योग मे लगा हू । रही भगवान् का नाम जपने की वात । सो मौत से वचने के लिए भगवान् का नाम जपना मैं कायरता समझता हू । यो अपने कल्याण के लिए और मृत्यु से दु ख न पहुचने देने के लिए म परमात्मा का स्मरण अवश्य करूँगा ।

महाजातक ने देव से दूसरों का भला करने के लिए तो कहा, मगर अपने लिए सहायता न माँगी।

महाजातक का उत्तर प्रभावित करने वाला था। उसने सोचा—यह मनुष्य ऐसे विकट समय मे भी उद्योगशील और मृत्यु की ओर से निर्भय है! इसके विचार कितने उच्च है!

देव ने फिर कहा – भाई, उद्योग करना तो अच्छा है, मगर उसके फल का भी तो विचार कर लेना चाहिए। फल की प्राप्ति की सभावना न हो तो उद्योग करना वृथा है।

महाजातक—मैं फल देखकर ही उद्योग कर रहा हूं। उद्योग का पहला फल तो यही है कि मुझे जो शक्ति मिली है, उसका उपयोग कर रहा हूं। दूसरा फल आपका मिलना है। अगर मैं जहाज के साथ ही डूब मरता तो आपके दर्शन कैसे होते? मैंने साहस किया, उद्योग किया तो आप मिले। ऐसी दशा मे मेरा श्रम क्या वृथा है?

महाजातक का उत्तर सुनकर देव बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा— तुमने मुझसे बचा लेने की प्रार्थना क्यो नही की?

महाजातक—मैं जानता हूं कि देवता कभी प्रार्थना करवाने की गरज नही रखते। उद्योग मे लगे रहने से मेरा मन प्रसन्न है और यही देवता की प्रार्थना है। जिसका मन प्रसन्न और निर्विकार होगा उस पर देवता स्वय प्रसन्न होगे। इसके अतिरिक्त मेरे प्रार्थना करने पर अगर आप मुझे बचाएँगे तो आपके कर्त्तव्य का गौरव कम हो जायगा।

बिना प्रार्थना के आप मेरा उपकार करेंगे तो उस उपकार का मूल्य बढ जायगा। मैं आपके कर्त्तव्य की महत्ता को कम नही करना चाहता और न यही चाहता हू कि आपके उपकार का मूल्य कम हो जाय।

लोग कहते है— देवता को फूल चढाओ तो वह प्रसन्न होगे। लेकिन फूल का दूसरा नाम 'सुमन' है। 'सुमन' का अर्थ है— अच्छा मन-प्रशस्त विचार। तात्पर्य यह है कि मन को पवित्र रखने से देव प्रसन्न होते हैं।

महाजातक की बात से देव अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने जहाज के साथ उसे किनारे लगा दिया। फिर महाजातक पर पुष्पवर्षा करके देव ने कहा— तुम्हारा सरीखा धीर और गभीर दूसरा पुरुष तो क्या देव भी कही नही देखा। वास्तव मे हम देवताओ की अपेक्षा मनुष्यो की शक्ति बडी है। देव, मनुष्य की उद्योग शक्ति के दास है।

श्री मानतु गाचार्य कहते है परमात्मा का गुणगान करना भुजाओ से समुद्र को पार करने के समान कठिन है। फिर कोई पूछे कि इस कठिन कार्य मे उन्होने क्यो हाथ डाला, तो मैं यही कहूगा कि इस प्रश्न का उत्तर महाजातक से पूछो। स्तुतिकार कहते हैं—जैसे सेठ के लडके (महाजातक) ने उत्तर दिया था कि चाहे पार होऊँ, या न होऊँ, उद्योग करना मेरा काम है। उद्योग से उपरत हो जाना कायरो को शोभा देता है। इसी प्रकार मैं सोचता हू कि शब्द चाहे जैसे हो, लगाना चाहिए उन्हे परमात्मा की स्तुति मे ही, परमात्मा के गुण-सागर के पार पहुचना चाहे असभव हो, फिर भी पहुचने का उद्योग करना तो असभव नही है। अतएव जिस प्रकार महाजातक पटिया

लेकर कूद पडा था, उसी प्रकार मैं भी कूद पडा हू। पार होना या न होना दूसरी बात है, लेकिन मेरा कर्त्तव्य यही है। मुझे यही उद्योग करना चाहिए।

लोग ससार-समुद्र मे पडे चक्कर लगा रहे है। कायरतापूर्वक रोते रहने से इस चक्कर से छुटकारा नही होगा। चक्कर से बाहर निकलने का उपाय उद्योग करना ही है और वह उद्योग योग्य दिशा मे विधिपूर्वक करना चाहिए। जैसे तूफान के समय समुद्र को पार करने के लिए अधिक हाथ-पैर हिलाये जाते हैं, उसी प्रकार सकट के समय पुरुषार्थ न खोकर परमात्मा मे चित्त को अधिक लगा देने से सकट से पार हो सकते हो। पुरुषार्थ करने से तो कुछ-न-कुछ फल निकल सकता है, मगर रोना तो अपने आपको डुबाना ही है।

अधिकाश लोग परमात्मा का नाम इसलिए लेते हैं कि उन्हे उद्योग किये बिना ही धन मिल जाय। आलस्य मे पडे रहने पर भी धन मिल जाय तो वे समझते हैं कि भगवान् बडे दयालु हैं! लेकिन जब उद्योग करना पडता है तो भगवान् को भूल जाते हैं। मगर याद रक्खो, भगवान् कायरो का साथ नही देते। उद्योगी ही उनकी सहायता से सिद्धि प्राप्त करते है। शास्त्र मे कहा है कि श्रावक लोग देवताओ की भी सहायता नही लेते और कहते है— हम क्या देवो से कम हैं? जिनका जहाज समुद्र मे डूबा जा रहा था, वे भी नही घबराये तो आपको घबराने की क्या आवश्यकता है?

बहुतेरे ईर्षालु लोग है, जो दूसरो की ऋद्धि देखकर जलते हैं और सोचते हैं कि ऐसी ऋद्धि मेरे यहाँ क्यो नही

है ? क्या ऋद्धिमान् के प्रति ईर्षा करने से आप ऋद्धि-शाली हो जाएँगे ? अथवा वह ऋद्धिशाली, ऋद्धिहीन हो जायगा ? अगर आपकी ईर्षा इन दोनो मे से कोई भी परिवर्त्तन नही कर सकती तो फिर उसमे लाभ कहा है ? ईर्षा करने से लाभ तो कुछ भी नही होता, उलटी हानि होती है । ईर्षालु पुरुप अपने आपको व्यर्थ जलाता है और अपने विवेक का विनाश करता है । वास्तव मे ऋद्धि का वीज पुरुपार्थ है । पुरुषार्थ करने वाले ही ऋद्धि के पात्र बनते है ।

लोग कहते हैं कि स्वर्ग के देवों को कुछ भी पुरुपार्थ नही करना पडता और फिर भी उन्हे सब प्रकार के सुख प्राप्त होते है । क्या देवलोक मे आलसियों का समूह इकट्ठा हुआ है ? नहीं । उन्होने पहले ही बहुत उद्योग किया है और उसी उद्योग की बदौलत वे सुख भोग रहे हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे युवावस्था मे कमाई करने के बाद कोई वृद्धावस्था मे उसका फल भोगता है। कहा भी है—

> देवलोक मे अप्सरा रे,
> प्रत्यक्ष जोड़े हाथ ।
> क्या करणी किस काम से रे,
> हुआ हमारा नाथ ?
> तू मान कह्यो रे,
> मत कर मगरूरी झूठी जिंदगी ॥
> आचारज की महर से रे,
> हुआ तुम्हारा नाथ ।
> प्रथम न्दें हम जाय के रे,
> तुम चलो हमारे साथ ।

तू मान कह्यो रे,
मत कर मगरूरी झूठी जिन्दगी ॥

तात्पर्य यह कि देव जब देवलोक मे उत्पन्न होता है, उसी समय देवागनाएँ हाथ जोडकर उससे प्रश्न करती है— 'महानुभाव ! आपने कौन–सा पुरुषार्थ किया था, जिससे आप हमारे नाथ हुए है ?' इस प्रश्न से यही नतीजा निकलना है कि देवत्व की प्राप्ति पुरुषार्थ का ही फल है ।

सच्चा पुरुषार्थी कभी हार नही मानता । वह अगर असफल भी होता है तो उसकी असफलता ही उसे सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा करती है । इसी प्रकार पुरुषार्थी मनुष्य न तो अपनी असमर्थता का रोना रोता है और न कार्य की असभावनीयता का ही विचार करता है । वह अपनी थोडी–सी शक्ति को भी समग्रता के साथ प्रयुक्त करता है और कार्य की सिद्धि कर लेता है । यह ठीक है कि भगवान् के गुण अनन्त है और उनकी पूरी तरह स्तुति नही की जा सकती । परन्तु इसी कारण अपनी शक्ति के अनुसार स्तुति न करना उचित नही कहा जा सकता । सम्पूर्ण आकाश को लाघना किसी के लिए सभव नही है, फिर भी लोग आवश्यकता पर यथाशक्ति लाघते ही है । मुक्ति का मार्ग लम्बा है और कठिन भी है, यह सोचकर उस ओर पैर ही न वढाना एक प्रकार की कायरता है । मार्ग कितना ही लम्बा क्यो न हो, अगर धीरे-धीरे भी उसी दिशा मे चला जायगा तो एक दिन वह तय हो ही जायगा, क्योकि काल भी अनन्त है और आत्मा की शक्ति भी अनन्त है । इस दृढश्रद्धा के साथ जो भगवान् के

मार्ग पर चलेगा और निराश न होकर चलता ही जायगा, उसे अवश्य ही अक्षय कल्याण की प्राप्ति होगी ।

बीकानेर, }
७-८-३० }

(३)

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्त ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो (गो) मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति किं निजशिशोः, परिपालनार्थम् ॥५॥

अर्थ—हे मुनियो मे श्रेष्ठ ! मैं आपकी भक्ति के वश होकर अशक्त होने पर भी आपकी स्तुति करने मे प्रवृत्त हुआ हूं । क्या मृगी (मृग) अपनी शक्ति का विचार न करके, अपने बच्चे की रक्षा करने के निमित्त सिंह का सामना नही करती ?

जिस प्रकार समुद्र को तैर कर पार करना और जल मे पडते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडना अशक्य है, इसी प्रकार प्रभो ! तेरे गुणो का वर्णन करना मेरे लिए अशक्य कार्य है । मैं अपनी इस कमजोरी को जानता हूं । फिर भी तेरा गुणगान करने के लिए मै तैयार हुआ हूं । इसका कारण यह है कि तेरी भक्ति मुझे विवश कर रही है । भक्तिभाव की तीव्रता के कारण मुझमे यह विचार ही नही रह गया है कि मै अपनी योग्यता-अयोग्यता अथवा शक्ति-अशक्ति का खयाल करूँ । बस, इसी हेतु मै आपका स्तोत्र करने मे प्रवृत्त हो गया हू और अपने हृदय के उद्गार प्रकट कर रहा हू ।

प्रश्न हो सकता है–क्या भक्ति के वश होने पर मनुष्य को अपनी शक्ति-अशक्ति का भी विचार नही रहता ? क्या वह अपनी अयोग्यता को भी भूल जाता है ? इसका उत्तर यह है कि परमात्मा की भक्ति का तो कहना ही क्या है, सन्तानप्रेम से भी मनुष्य ऐसा विवश हो जाता है कि जिस काम को करने की उसमे शक्ति नही होती, उस काम को भी करने मे प्रवृत्त हो जाता है ! तात्पर्य यह है कि मनुष्य के हृदय मे जब तक किसी भावना की प्रबलता नही होती, तब तक तो उसमे सकल्प-विकल्प बना रहता है मगर जब एक भावना उत्कट रूप धारण कर लेती है । और न केवल मनुष्यो मे ही, वरन् पशु-पक्षियो मे भी भावना की यह उत्कटता पाई जाती है । पशु-पक्षी भी सतानप्रेम की उत्कटता के वश मे होकर अपनी शक्ति-अशक्ति का और कार्य की शक्यता-अशक्यता का खयाल भूल जाते है और जिस कार्य के लिए वे समर्थ नही है, उसी मे जुट पडते हैं । जिस समय सिह हिरन के बच्चे पर हमला करने के लिए उद्यत होता है उस समय उसके माता-पिता मे यह शक्ति नही होती कि वे सिह का सामना करके अपने बच्चे की रक्षा कर सके, फिर भी सतान-प्रेम की प्रबलता हिरण-हिरणी को अपनी असमर्थता का विचार करके चुपचाप नही बैठने देती । वे अपनी शक्ति का विचार न करके सिह का सामना करते हैं और अपने बच्चे की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं ।

आचार्य कहते है—पशु भी सतानप्रेम मे मतवाला होकर अपने बल-अबल का ध्यान भूल जाता है, तो परमात्मा की भक्ति का लोकोत्तर प्रेम मुझे बल-अबल का ध्यान कैसे

रहने देगा ? अतएव परमात्मा के गुण-समुद्र को पार करने की शक्ति न होने पर भी मैं उसकी स्तुति करने को उसी प्रकार ललचाया हूं, जिस प्रकार मृग अपने बालक की सिंह से रक्षा करने के लिए ललचाता है। वास्तव में मैं स्तुति करने में असमर्थ हू किन्तु केवल भक्ति से विवश होकर प्रवृत्त हुआ हूं।

आचार्य का यह कथन मर्म से भरा हुआ है। इसके मर्म को समझने का हमे प्रयत्न करना चाहिए। आचार्य विद्वान् थे। वे स्तुति-कार्य को करने की बहुत कुछ शक्ति रखते थे। फिर भी अपने आपको अशक्त बताकर उन्होंने कहा कि मैं गुणगान के कार्य मे प्रवृत्त होता हूं। आचार्य का यह कथन उनके लिये है या हमारे और आपके लिए ? उनके इस कथन से स्पष्ट है कि जिसमे भक्ति है उसमे शक्ति आये बिना नही रहेगी। जिसमे वास्तविक भक्ति होगी वह कार्य मे लगेगा ही। जो कार्य मे नही लगता, समझना चाहिए कि उसमे भक्ति ही नही है। मृगी अगर अपने बच्चे को बचाने के लिए सिंह का सामना न करे तो यही समझा जायगा कि उसमे पुत्रप्रेम ही नहीं है। चिडिया अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए बाज का सामना करती है। मतलब यह है कि शक्ति अल्प होने पर भी सतानप्रेम से प्रेरित होकर पशु-पक्षी भी उस कार्य मे जुट जाते हैं, जिसे करने मे वे असमर्थ होते हैं। ऐसी दशा में अगर हमारे हृदय मे भक्ति है तो क्या हम परमात्मा का गुणगान किये बिना रहेगे ? अतएव स्वय अपने हृदय को टटोलो कि मुझमे भक्ति है या नही ? मै यह नहीं कहना चाहता कि आपमे भक्ति है ही नही। ऐसा होता

तो आप मेरे पास आते ही क्यो और भक्ति सम्बन्धी उपदेश सुनते ही क्यो ? मगर अपनी त्रुटि को देखो । सोचो-हमारी भक्ति-भावना मे कहाँ कमी है और क्या त्रुटि है ? मैं भी अपने सम्बन्ध मे विचार करता हू और आप भी विचार कीजिए। एक ही काम मे सब तल्लीन हो जाएँगे तो अपूर्व रहस्य निकलेगा ।

मै अपने विषय मे सोचता हूं तो भीतर से उठने वाली अन्तर्ध्वनि मुझे सुन पडती है और वह मेरी अनेक त्रुटियाँ मुझे बतलाती है । मैं अपनी कमी का वर्णन कहाँ तक करूँ ? मै मन-ही-मन सोचता हू— हे आत्मन् ! तूने सयम ग्रहण किया है । गृहस्थ तो कदाचित् छुटकारा पा सकते हैं लेकिन तू क्या कहकर अपना बचाव कर सकता है ? तिस पर भी तेरे ऊपर आचार्य पद का उत्तरदायित्व है । अगर तू भक्ति मे लग जाय और उसी मे तल्लीन रहे तो कोई भी त्रुटि शेष न रहे । जब तुझे किसी पर क्रोध न आवे, जब तू दूसरे के कहे हुए कटुक वचनो को अमृत मानने लगे, ऐसी अद्भुत जागृति तेरी अन्तरात्मा मे आ जाय, तभी समझना चाहिए कि तुझ पर भक्ति का रस चढा है । जहा प्रभुभक्ति है वहाँ क्रोध नही हो सकता। भक्त पर अगर कोई जुल्म करता है तो भक्त कही फरियाद करने नही जाता । परमात्मा ही भक्त का न्यायाधीश है और परमात्मा का दरबार ही उसका न्यायालय है । भक्त अगर किसी दूसरे के पास फरियाद करने जाता है तो समझना चाहिए कि उसने अभी तक परमात्मा को पहिचाना ही नही है । जैसे साभर झील मे पडी हुई सब वस्तुएँ नमक बन जाती है, उसी प्रकार भक्त के कानो मे

पडा हुआ प्रत्येक शब्द अमृत बन जाता है, चाहे दूसरे को वह बाण सरीखा तीखा या विष के समान कटुक भले प्रतीत हो। भक्त गाली सुनकर सोचता है कि गाली देने वाला मेरी सहनशीलता की परीक्षा कर रहा है। मुझे इस परीक्षा मे उत्तीर्ण होना चाहिए।

शास्त्र मे क्षमा को मुनि का प्रधान लक्षण बतलाया गया है। भक्ति जितनी गाढी होगी, क्षमाभावना उतनी ही प्रबल होगी। भक्त को क्रोध नही आ सकता और बिना क्षमा के भक्ति नही होती।

वर्षाऋतु मे जब वर्षा होती और कीचड की अधिकता के कारण आना-जाना रुक जाता—कोई खास काम न रहता, तब मेरे ससारावस्था के मामाजी दुकान पर गेहू भेज देते। वे कहलाते—बैठे-बैठे क्या करोगे, गेहू बीनो। लेकिन बीनना क्या था—गेहू या ककर ? गेहू तो अच्छे ही हैं, लेकिन ककरो पर नजर न रही तो गेहुओ मे ककर रह जाएँगे, पिस जाएँगे, पेट मे जाएँगे और फिर पत्थरी की बीमारी पैदा करेंगे। इसी प्रकार आत्मा के गुणो पर ध्यान न देकर दोषो पर ध्यान देना आवश्यक है। यह देखना चाहिए कि आत्मा कहाँ भूल करता है ? इस बात पर ध्यान रक्खा जाय और जैसे गेहुओ मे से ककर निकाल दिये जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा के दोषो को, त्रुटियो को, भूलो को निकाल दिया जाय तो आत्मा की शुद्धि हो सकती है।

जिन लोगो पर तुम्हारा वश नही चलता, उन पर क्रोध न करना तुम्हारी क्षमाशीलता की कसौटी नही है। जो तुम्हारे अधीन हैं, तुम्हारे मुखापेक्षी है, जिनको तुम

बना–बिगाड सकते हो, उन पर भी क्रोध न आने दो। उनके कटुक वचन को भी अमृत समझ लो। यह तुम्हारी क्षमाशीलता की कसौटी है। जो इस कसौटी पर खरे उतरते है वे धन्य हैं।

विच्छू का विष दूसरो को चढता है, लेकिन मत्रवादी कहता है कि मुझे नही चढता। अब अगर मत्रवादी को भी जहर चढ़ गया तो वह मत्रवादी ही क्या रहा ? साप-विच्छू का जहर उतर जाना उतना कठिन नही है, जितना क्रोध भरे कटुक शब्दरूपी बाणो का जहर उतरना कठिन होता है। मगर भक्त वह है जो इस जहर को चढ़ने ही नही देता। वास्तव मे जिसके हृदय मे दुर्वचन सुनकर भी क्रोध नही होता और जिसके मन मे विकार नही आता, वह महापुरुष कोटि-कोटि धन्यवाद का पात्र होता है।

भक्ति के विपय मे मीराबाई कहती है—

अब तो मेरो राम नाम दूसरो न कोई।
मात छोडे तात छोडे छोडे सगे साई ॥
सतन सग बैठ बैठ लोक लाज खोई।
अन्त मे से तन्तु काढ़ पीछे रही सोई ॥
राणा मेल्या विपना प्याला।
पी के मस्त होई ॥अब तो०॥

मीराँ कहती है— 'इस ससार मे परमात्मा के सिवाय कोई नही है।' इसे कहते हैं भक्ति! जब मृगी अपने बच्चे की रक्षा के लिए सिंह के सामने जाती है तब उसे ससार मे बच्चे के सिवाय कुछ नही दीखता। उस समय वह अपने प्राणो को भी तुच्छ समझती है। इसी प्रकार हृदय

मे अगर परमात्मा की सच्ची भक्ति हो तो दूसरी बात याद ही नही आनी चाहिए। अगर दूसरी बात याद आई तो समझ लो कि भक्ति मे कमी है।

मीरा कहती है–ससार मे परमात्मा के सिवाय और कोई नही है। ससार, शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाली सब वस्तुए अनित्य है, केवल आत्मा नित्य है। इस ससाररूपी छाछ मे से मैंने अविनाशीरूपी मक्खन निकाल लिया है। अब मुझे इस छाछ की चिन्ता नही रही। अनित्य मे से नित्य को पाकर मैं निश्चिन्त हो गई।

राणा ने मीरा के पास विष का प्याला भेजा। कहला भेजा–तुम साधुओ और भिखारियो के पास बैठ-बैठ कर मुझे लज्जित करती हो। तुम्हारी भक्ति मुझे पसद नही है। इसलिए ससार मे रहना है तो राजकुल की मर्यादा के अनुसार नियमपूर्वक राजघराने मे रहो अन्यथा विष का यह प्याला पीकर ससार से विदा लो। राणा ने स्पष्ट कहला दिया था कि यह विष का प्याला है। फिर भी मीरा ने कहा—मेरे लिए यह विष नही, अमृत है। पहले तो इसे मेरे उन प्राणनाथ ने भेजा है, जिन्हे भक्ति मे होती हुई भी मैं नही भूली हू। इसके अतिरिक्त उनसे भी बडे पति—परमात्मा की भक्ति के लिए यह जहर पीना पड रहा है। अगर चोरी या अन्याय के अपराध के दड मे जहर पीना पडता तो दुख की बात थी, मगर भक्ति के लिए और वह भी परमात्मा की भक्ति के पुरस्कार मे विष का पान करना क्या बुरा है? कहा है—

> जिसका पर्दा दुई का दूर हुआ।
> फिर उसमे खुदा मे फरक ही नहीं॥

न तो आवे हवा न आतिश वा।
कोई मेरे सिवा तो बशर ही नहीं॥

आप भी कहते हैं -

तू सो प्रभु प्रभु सो तू है।
द्वैत—कल्पना मेटो॥

जहाँ यह भेद मिटा और पुद्गल का भाव गया, वहाँ चिदानन्द और परमात्मा मे कोई अन्तर नही रह जाता। फिर जहाँ देखो, परमात्मा ही परमात्मा है।

कभी ऐसा प्रसग उपस्थित हो जाय कि आपको मक्खन और छाछ मे से एक चीज को छोडना आवश्यक हो जाय और आप यह जानते हैं कि मक्खन सारभूत पदार्थ है, छाछ निस्सार है, तो आप किसे लेना पसन्द करेंगे और किसे छोडना चाहेगे ?

'छाछ छोडना चाहेगे।'

लेकिन समय आने पर आप छाछ के लालच मे पड-कर मक्खन को छोड देते है। अर्थात् पुद्गल के लोभ में फँसकर आत्मा की अपेक्षा कर देते हैं। इसका अर्थ यह है कि आप भक्ति की बात कहते–सुनते तो हैं मगर अभी उससे दूर है। जिस समय आप भक्ति के निकट पहुंच जाएँगे, उस दिन ऐसी भूल कदापि नही करेंगे।

मीरा कहती है—'मैंने अनित्य मे से नित्य को अलग कर लिया है। अब यह अनित्य रहे या न रहे, मुझे इसकी परवाह नही है।'

मित्रो ! आपको भी एक जहर पीने का अभ्यास करना चाहिए। मैं उस जहर को पीने के लिए नही कहता,

जो मीरा ने पिया था। मीरा को भी उसे पीने की आवश्यकता नही थी। वह तो मौका आ जाने के कारण पीना पडा था। मैं कटुक शब्दरूपी विष को पीने के लिए कहता हू। जब आपके कानरूपी प्याले मे कटुक शब्दरूपी विष पडे, तब आप उसे अमृत समझ कर पी जाएँ। अगर आप मे इतनी शक्ति आ जाय तो समझ लीजिए कि आपके हृदय मे भक्ति आगई है। धीर, वीर और गभीर पुरुष ही इस विष का पान कर सकते हैं और फिर सब ऋद्धियाँ उनकी दासी बन जाती हैं।

तात्पर्य यह है कि भक्ति की आन्तरिक प्रेरणा शक्ति से परे का भी कार्य करने को विवश कर देती है। जब एक मृग जैसा पशु भी अपनी सतति के प्रेम के वश होकर अपने प्राणो की ममता छोडकर, अपनी शक्ति का विचार न करके सिंह के मुख से अपने बालक को छुडाने के लिए तैयार हो जाता है तो जिस मनुष्य मे परमात्मा के प्रति प्रकृष्ट प्रेम है, जिसके चित्त मे भगवान् की भक्ति की लहरे उठती हैं वह क्यो विवश न होगा ?

सुबुकुतगीन बादशाह का वृत्तान्त इतिहास मे आया है। वह अफगानिस्तान का बादशाह था। वह एक गुलाम खान-दान मे पैदा हुआ था और सिपाही था। एक बार वह ईरान से अफगानिस्तान की ओर घोडे पर सवार होकर आ रहा था। मार्ग की थकावट मे या किसी अन्य कारण से उसका घोडा मर गया। जो सामान उससे उठ सका वह तो उसने उठा लिया और शेष वही छोड दिया। मगर उसे भूख इतनी तेज लगी कि व्याकुल होने लगा। इसी समय सामने की ओर से हिरनो का एक झुण्ड आ निकला।

उसने झपट कर उस झुण्ड मे से एक वच्चे की टाग पकड ली । झुण्ड के और हिरन तो भाग गये मगर उस वच्चे की माँ वही ठिठक गई और अपने वच्चे को दूसरे के हाथ मे पडा देख कर आँसू वहाने लगी । अपने वालक के लिए उसका दिल फटने लगा ।

वच्चे को लेकर सुवुकुतगीन एक पेड के नीचे पहुचा और उसे भून कर खाने का विचार करने लगा । उसने रूमाल से वच्चे की टागे बाँध दी ताकि वह भाग न जाय । इसके वाद वह कुछ दूर एक पत्थर के पास जाकर अपनी छुरी पैनी करने लगा । इतने मे मृगी अपने वच्चे के पास आ पहुची और वात्सल्य के वश होकर वच्चे को चाटने लगी, रोने लगी और अपना स्तन उसके मुँह की ओर करने लगी । वच्चा वेचारा वँधा हुआ तडफ रहा था । वह अपनी माता से मिलने और उसका दूध पीने के लिए कितना उत्सुक था, यह कौन जान सकता है ? मगर विवश था । टागे वंधी होने के कारण वह खडा भी नही हो सकता था । । अपने वच्चे की यह दशा देखकर मृगी की क्या हालत हुई होगी, यह कल्पना करना भी कठिन है । माता का भावुक हृदय ही मृगी की अवस्था का अनुमान कर सकता है । मगर वह भी लाचार थी । वह आँसू वहा रही थी और इधर-उधर देखती जाती थी कि कोई किसी ओर से आकर मेरे वालक को बचा ले ।

इसी समय छुरी पैनी करके सुवुकुतगीन लौट आया । वच्चे की मा हिरनी यहा भी उसके पास आ पहुची है, यह देखकर उसको आश्चर्य हुआ । हर्प और विपाद की अनुभूति हृदय मे होती है मगर चेहरे पर उस अनुभूति का

असर पडे बिना नही रहता । उसने हिरनी के चेहरे पर गहरे विपाद की परछाई देखी और नेत्रो मे आसू देखे । यह देखकर उसका हृदय भी भर आया । वह सोचने लगा—मैं इन मृगों को नाचीज समझता था, बेजान मानता था और सोचता था कि यह मनुष्य के खाने के लिए ही खुदा ने बनाये हैं । मगर आज मालूम हुआ कि मैं भारी भ्रम मे था । कौन कह सकता है कि इस हिरनी में जान नही है ? जो इसे बेजान कहते हैं, समझना चाहिए कि वह खुद ही बेजान है । अगर हिरनी मे जान नही है तो इसान मे भी जान नही है । अगर इन्सान में जान है तो फिर हिरनी में भी जान है । अगर हिरनी को मनुष्य की भाषा प्राप्त होती और मैं इससे पूछता तो यह तीन लोक के राज्य से भी अपने बच्चे को बडा बतलाती । मेरे लिए यह बच्चा दाल–रोटी के बराबर है, मगर जिसके हृदय मे इसके प्रति गहरा प्रेम है, उसका हृदय इस समय कितना तडफता होगा ? अपना खाना–पीना छोडकर और प्राणों की परवाह न करके हिरनी यहाँ तक भागी आई है । इस बच्चे के प्रति इसके हृदय मे कितना प्रेम होगा ? धिक्कार है मेरे खाने को ! जिससे दूसरे को घोर व्यथा पहुचती हो, वह भलेमानुस का खाना नही हो सकता । अगर मैं अपना पेट भरने के लिए इस बच्चे की जान ले लूंगा तो इसकी इस स्नेहमयी माता को कितनी व्यथा होगी ! अब चाहे मैं भूख का मारा मर जाऊँ मगर इस अपनी माता के दुलारे को नही खाऊँगा ।

आखिर उसने बच्चे को छोड दिया । बच्चा अपनी माता से और माता अपने बच्चे से मिलकर उछलने लगे ।

यह स्वर्गीय दृश्य देखकर सुबुकुतगीन की प्रसन्नता का पार न रहा । इस प्रसन्नता मे वह खाना-पीना भूल गया। आज ही उसकी समझ मे आया कि प्राणी पर दया करने से कितना आनन्द होता है ।

जगली पशुओ के डर से सुबुकुतगीन रात के समय पेड पर चढकर सोया करता था । उस दिन भी वह पेड पर ही सोया था । स्वप्न मे उसके पैगम्बर ने उससे कहा– 'तूने बच्चे पर दया करके बहुत अच्छा काम किया है । तू अफगानिस्तान का बादशाह होगा ।' उसके पैगम्बर की भविष्यवाणी सच्ची हुई । कुछ दिनो बाद वह सचमुच ही अफगानिस्तान का बादशाह बन गया ।

अब आप विचार कीजिए कि बच्चे से उत्कट प्रेम होने के कारण हिरनी ने प्राण की परवाह नही की तो परमात्मा से प्रेम होने पर मनुष्य को कैसा होना चाहिए ? जिसके हृदय मे परमात्मा के प्रति सच्ची भक्ति होगी वह धन–दौलत को बडी चीज नही समझेगा । उसकी बुद्धि झूठ-कपट आदि बुरे कामो की ओर कभी नही जाएगी । भक्तहृदय भलीभाति समझता है कि यह सब कुत्सित काम भक्ति का विनाश करने वाले है । जो ऐसी भक्ति तक पहुच जाता है, उसका कल्याण ही कल्याण होता है।

पात्र के भेद से भक्ति अनेक प्रकार की है । मगर इतना विवेचन करने का समय नही है । साहित्यशास्त्र मे अनेक रसो मे से भक्तिरस भी अलग माना गया है । भक्तिरस मे अपूर्व मिठास है । भक्तिरस की मधुरता हृदय मे अद्भुत आह्लाद उत्पन्न करती है । जिसके अन्त करण मे भगवद्भक्ति का अखण्ड स्रोत वहता है वह पुरुष बडा

भाग्यशाली है। उसके लिए तीन लोक की सपदा-निखिल विश्व का राज्य भी तुच्छ है। प्रह्लाद ने, ध्रुव ने और कामदेव ने भक्तिरस के महत्त्व को समझा था और इसी-लिए उन्होंने बडे-से-बडे सकट को तुच्छ माना था। दूसरे रस क्षणिक आनन्द देने वाले हैं मगर भक्तिरस शाश्वत सुख उत्पन्न करता है। जैसे मामूली वस्तु भी नदी के प्रवाह मे बहती हुई समुद्र मे मिल जाती है, उसी प्रकार भक्ति के प्रवाह मे बहने वाला मनुष्य ईश्वर मे मिल जाता है अर्थात् स्वय परमात्मा बन जाता है। भक्ति वह अलौकिक रसायन है जिसके द्वारा नर-नारायण हो जाता है भक्ति से हृदय मे अपूर्व शाति और असाधारण सुख प्राप्त होता है। भक्ति का मार्ग सरल और सुगम है। सभी मुमुक्षु इसका अवलम्बन ले सकते हैं। जो भक्तिमार्ग का अवलवन लेकर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हैं, वे अना-यास ही ऐसा कर सकते हैं। मेरी कामना है कि आप विवेक के साथ भक्तिरस का पान करे और अपना कल्याण-साधना करें। तथाऽस्तु।

बीकानेर,
१०-८-३०

(४)

> अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम ।
> त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
> यत्कोकिलः किल मधौ मधुर विरौति ।
> तच्चारुचूतकालिकानिकरैकहेतुः ।।६।।

अर्थ—मै अल्पज्ञ हू । शास्त्रवेत्ताओ के उपहास का पात्र हू, लेकिन आपकी भक्ति ही मुझे स्तुति करने के लिए जबर्दस्ती प्रेरणा करती है । वसन्त ऋतु मे कोयल जो मधुर शब्द करती है सो उसका कारण सुन्दर आम की मजरियो का समूह ही है ।

प्राचीनकाल के आचार्य अपनी लघुता प्रकट करने मे गुरुता समझते थे, लेकिन आज के अधिकाश लोग अपनी लघुता बताने मे लघुता समझते हैं । इन दोनो भावनाओं मे बडा अन्तर है । जो परमात्मा नही बन गया है वह अपूर्ण है और जो अपूर्ण है उसमे लघुता अवश्य रहती है । जो अपनी लघुता को समझता है और उसे बिना सकोच प्रकट कर देता है, समझना चाहिए कि वह अपनी लघुता को त्यागना चाहता है और पूर्णता प्राप्त करने का अभिलाषी है । उसके परिणामो मे इतनी सरलता होती है कि वह जैसा है वैसा ही अपने को प्रकट करता है, वह ढोग नही करना चाहता । इस कारण वह निरन्तर अपनी लघुता

को कम करता रहता है, गुरुता प्राप्त करता रहना है और एक दिन वह पूर्णता भी प्राप्त कर लेगा।

मगर जो वास्तव मे लघु है किन्तु अपनी लघुता को समझना ही नही चाहता अथवा समझ कर भी छिपाना चाहता है, अपमान के भय से प्रकट नही करता चाहता, बल्कि अपनी गुरुता प्रकट करता है, उसका हृदय सरल नही है। उसके हृदय मे कपट है। वह अपने ढोग के कारण ऊपर नही चढेगा। उसका पतन अवश्यभावी है। उसे समझना चाहिए कि अपूर्णता होना अनोखी बात नही है। वह तो मनुष्यमात्र मे होती है। लेकिन जो मनुष्य अपनी अपूर्णता को सरल हृदय से स्वीकार करता है और उसे दूर करने की निरन्तर चेष्टा करता रहता है, वह अवश्य ही उसे दूर कर देता है।

आचार्य मानतुग ने भक्तामरस्तोत्र की रचना करते हुए अपनी जो लघुता प्रकट की है, उससे क्या उनके गौरव को क्षति पहुची है ? नही। इससे उनका गौरव घटा नही, वढा ही है। उनके लघुताप्रकाशन से उनकी सरलता, निरभिमानता और महत्ता ही प्रकट होती है और ऐसे महानुभाव जनता के आदर के पात्र बन जाते हैं।

आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य कहते हैं—मैं बहुत कम जानता हू। इतना कम जानता हू कि विद्वान् पडित मेरे शब्दो का उपहास करेगे। अर्थात् विद्वानो के सामने मैं हँसी का पात्र बनूंगा। वे कहेगे कि मानतुग कुछ न जानता हुआ भी स्तुति करने को तैयार हो गया ! लेकिन उन विद्वान् पडितो की हँसी से मेरी कुछ भी हानि नही है, वल्कि लाभ ही होगा। हँसने वालो

को भी लाभ होगा । वे मुझे हँसी का बनाकर अगर प्रसन्न हो लेंगे तो क्या हानि है ? अगर मै किसी को रिझाने के लिए स्तुति करने का उद्यम करता होता तो कदाचित् मेरे लिए लज्जा की बात होती । मगर मेरी यह स्तुति न किसी को रिझाने के लिए है और न किसी को बताने के लिए है । मेरे हृदय मे परमात्मा के प्रति जो प्रबल प्रेरणा का उदय हुआ है, उसी का फल है कि मैं स्तुति कर रहा हू ।

आचार्य कहते है—प्रभो ! मेरी यह स्तुति किसी वासना या तृष्णा की पूर्ति के लिए नही है । आपकी भक्ति की प्रेरणा मेरा मुँह बन्द नही रहने देती । उस प्रेरणा ने मुझे वाचाल बना दिया है । अब मुझ से बिना बोले नहीं रहा जाता । इस पर अगर कोई हँसता है तो हँस ले । लेकिन भक्ति तो हो ही जायगी ।

ससार मे सर्वत्र स्वार्थ का साम्राज्य है । जो बोलता है सो या तो किसी के दबाव मे आकर या किसी आशा से ही बोलता है । क्या कोई उदाहरण ऐसा मिल सकता है कि कोई बिना खुशामद की भावना के सिर्फ निष्काम भक्ति से ही बोलता हो ?

मित्रो ! जब ऋतुराज वसन्त का आगमन होता है तब आम्र के बगीचे फूल उठते हैं । आमो मे मजरियाँ आ जाती हैं । प्रकृति अनोखे सौन्दर्य से सज जाती है । उसकी रचना ही कुछ अलबेली हो जाती है । उस समय प्रकृति के सौन्दर्य के उपासक आम्रवृक्षो पर आकर किलोल करते है । उनमे कोयल नामक एक पक्षी भी होता है । जब आम की मजरियो का सौरभ वायुमडल को सुवासित करता

है, तब वह कोयल अपने सुमधुर कठ से पंचम स्वर मे आलापती है ।

शास्त्र मे पंचम स्वर का बडा महात्म्य बतलाया गया है और भगवान् के शब्दो की उपमा पचम स्वर से दी गई है ।

कोयल के इस मधुर आलाप मे क्या रस है और कितनी मिठास है, यह तो कोई अनुभवी ही जान सकता है या कोई वैज्ञानिक समझ सकता है । दूसरो को उसका पता चलना कठिन है । वैज्ञानिक कहते है कि कोयल के स्वर का मुकाबिला अन्य स्वर नही कर सकते । मगर देखना यह है कि कोयल उस समय जो राग आलापती है सो क्या किसी की खुशामद के लिए ? कोई उसके राग को सुने या न सुने, चाहे कोई धनिक सुने या गरीब सुने, कोई निन्दा करे या प्रशसा करे, कोई गाने को कहे या बन्द करने को कहे, कोयल अपनी इच्छा के अनुसार गाती है और अपनी इच्छा के अनुसार ही गाना बन्द करती है । यह किसी के कहने-सुनने की या निन्दा-प्रशसा की परवाह नही करती । उसके राग आलापने का और कोई हेतु नही है । आम्रवृक्ष के फूलने पर उसके हृदय मे अनुराग उत्पन्न होता है और अनुराग में मस्त होकर वह गाने लगती है । अनुराग की वह मस्ती रोके नही रुकती ।

कोयल जब गाती है तो कौवे उसे मारने दौडते है ? बिचारने की बात यह है कि कोयल ने कौवो का क्या विगाडा है जो वे उसे मारने दौडते हैं ? सभव है, अपने राग की कर्कशता के विचार से उन्हे कोयल के प्रति ईर्षा होती हो । लेकिन उन्हे यह भी सोचना चाहिए कि कहाँ

तो गदगी खाने वाले वे और कहाँ आम की मजरियो का रस चूसने वाली कोयल! ऐसी अवस्था मे अगर कौवा और कोयल के स्वर मे अन्तर हो तो आश्चर्य ही क्या है ?

कौवे जब कोयल को सताने लगते है, तब भी कोयल 'कुहू-कुहू' करती हुई आम की एक शाखा से दूसरी-शाखा पर जा बैठती है और वहाँ फिर अपना राग आलापने लगती है। मतलब यह है कि जब वह गाना चाहती है तो किसी के मारने से भी नही रुकती और जब नही गाना चाहती तो किसी के मारने पर भी नही गाती। वह आम की मजरियो की सुगध से प्रेरित होकर गाती है और उसी समय गाती है जब आम मे मजरिया होती हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कोयल आम की मजरियो के प्रेम के कारण ही गाती है। उसके गाने का और कोई अभि-प्राय नही है।

आचार्य कहते हैं कि यह स्तुति किसी की प्रेरणा से नही की जा रही है और न किसी की खुशामद के लिए ही की जा रही है। प्रभु-भक्ति की प्रेरणा मेरे अन्त करण को स्तुति करने के लिए विवश कर रही है।

मित्रो ! एक भक्ति करने वाले महात्मा ने भगवान् की स्तुति का जो प्रयोजन प्रकट किया है, वह सभी के लिए मार्गदर्शक होना चाहिए। उन्होने बतला दिया है कि भक्ति, चाहे उसे सेवा कहो, आराधना कहो, उपासना कहो, कैसी होनी चाहिए ?

भक्तामरस्तोत्र की स्तुति भक्तिमार्ग को दिखलाने का साधन है। जैसे रत्न की परीक्षा जौहरी ही कर सकता है उसी प्रकार इस स्तुति का तत्त्व ठडे दिमाग से विचार

करने वाले को ही मालूम हो सकता है। इसके तत्त्व का वर्णन करना मेरे लिए शक्य नही है। फिर भी यथाशक्ति अपने भावो को प्रकट करता हू।

आचार्य भी भक्ति कर रहे हैं और आप लोग भी भक्ति करने के लिए उत्सुक हैं, मगर भक्ति करने से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि भक्ति किस प्रकार होती है ? किसी का यह विचार हो कि विद्वान् लोग ही भक्ति कर सकते हैं, तो आचार्य ने यह कह कर कि मैं अल्पज्ञ हू— मैं कुछ नही जानता, यह स्पष्ट कर दिया है कि भक्ति के लिए पडिताई की अनिवार्य आवश्यकता नही है। विद्वान् और अज्ञ सभी समान रूप से भक्तिरस के अमृत का पान कर सकते हैं। जब अविद्वान् भी भक्ति कर सकता है तो विद्वान् का तो कहना ही क्या है? विना दांत वाला भी जिस वस्तु को खा सकता है, उसे खाने मे दात वाले को क्या कठिनाई हो सकती है ? अतएव सर्वसाधारण को यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि विद्वान् न होने के कारण भक्ति नही हो सकती।

दूसरा भ्रम भक्ति के उद्देश्य के सम्बन्ध में दूर होने की आवश्यकता है। यद्यपि इस वात पर पहले प्रकाश डाल दिया गया है, फिर भी स्पष्ट कर देना अनुचित नही है कि तुम जो भक्ति करो, अपनी अन्त प्रेरणा से करो। दूसरे के दबाव से या दूसरे को खुश करने के उद्देश्य से भक्ति मत करो। ऐसा करने मे परमात्मा की भक्ति से वचित रह जाना पडता है।

वहुत-से लोग चक्रवर्ती की महिमा, प्रतिष्ठा औ विभूति देखकर, उसे प्राप्त करने की आशा से अभव्य हे

हुए भी साधु बन जाते हैं। वे मास-खमण आदि तपस्या भी खूब करते है। वे ऐसी अच्छी क्रिया करते है कि वही क्रिया अगर शुद्ध मन से की जाय तो मोक्ष पहुचा दे। मगर उनकी क्रिया उन्हे मोक्ष नही पहुचाती। इसका कारण यही है उस क्रिया को वे स्वतन्त्रभाव से, निरीह-वृत्ति से नही करते है, महिमा-प्रतिष्ठा आदि के लोभ से करते है। इस प्रकार की अशुद्ध भावना से की हुई क्रिया मनुष्य को स्वर्ग मे भले ही पहुचा दे, मगर उससे मोक्ष प्राप्त नही हो सकता।

यह आवश्यक नही कि भक्ति या स्तुति के शब्द उच्च श्रेणी के हो, भाषा की दृष्टि से सुन्दर हो। ऐसा हो तो भी कोई हानि नही है। शब्द भले ही टूटे-फूटे हो, लेकिन निन्दा-प्रशसा की परवाह न करके स्वाधीन और निस्पृह भाव से भक्ति की जानी चाहिए।

भक्ति करना ही भक्त का एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए। भक्ति के लौकिक फल की ओर अगर उसकी भावना दौड गई तो समझ लीजिये कि भक्ति अशुद्ध हो गई। इहलोक के सुख, परलोक के चक्रवर्त्ती-इन्द्र आदि के सुख, कामभोग, जीवन-मरण इत्यादि मे से किसी भी बात की इच्छा न रहे, पूर्ण निष्काम भाव से भक्ति की जाय तो महान् फल की प्राप्ति होती है। जैसे कोयल अपने गान के बदले मे कुछ नही चाहती, उसी प्रकार आप भी भक्ति के बदले मे कुछ न चाहे।

लोग कहते है—कलकत्ता की गौहरजान नामक वेश्या का राग बहुत ऊँचा है। उसके गाने की फीस भी बहुत है। उसका गाना सुनने के लिए लोगो की भीड टूट पडती

है। कई एक रईस तो उसके पीछे अपना घर बर्बाद कर चुके है।

मित्रो! यह कितना अज्ञान है! कैसी भ्रष्टता है! पैसे की लोभिनी हो और विपयो की कीडी हो, फिर वह कोई भी क्यो न हो, उसका राग अच्छा कैसे हो सकता है? उसके राग मे कल्याण का मधुर रस और निर्मलता की मिठास किस प्रकार सभव हो सकती है? मै कहता हू— उसके राग मे हजारो विपयविकार के विषैले कीडे भरे है! राग तो कोयल का है जो अपने गाने के बदले कुछ भी नही चाहती! न मानप्रतिष्ठा चाहती है, न धन-दौलत चाहती है, न किसी को रिझाना चाहती है, न लूटना चाहती है, न किसी के द्वारा निन्दा करने पर दुख मानती है।

मतलब यह है कि आत्मा को निस्पृह, निष्काम, निरीह बनाये बिना सच्ची भक्ति नही होती। साधु का वेष धारण कर लेना सरल है, लेकिन हृदय के विकारो पर विजय प्राप्त कर लेना सरल नही है। भक्त कहता है—

माधव ! मोह पाश किम टूटे,
बाहर कोटि उपाय करत हौं।
अभ्यन्तर गाठ न छूटे ॥माधव०॥

इस भजन को सुनकर आप शायद सोचते होगे कि मै ऋषभदेव की स्तुति करना छोडकर अन्यत्र चला गया। मगर ऐसी वात नही है। मैं भगवान् ऋषभ की ही स्तुति कर रहा हू। सस्कृत भापा मे 'मा' शब्द का अर्थ लक्ष्मी होता है और 'धव' पति को कहते है। इस प्रकार माधव

का अर्थ—लक्ष्मीपति । आप कह सकते हैं कि हम लक्ष्मीपति को मानते ही कब हैं ? लेकिन आप यह देखे कि इस प्रार्थना मे क्या बात कही गई है ? इसमे माधव से मोह-पाश तोडने के लिए कहा गया है । इसलिए जिसने अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान अनन्तचारित्र और अनन्तसुख पा लिए है वही वास्तव मे माधव है । जो स्वय स्त्री का स्वामी होगा वही मोहपाश का नाश कैसे कर सकता है ? जिसने अपने मोह के समस्त पाशो को छिन्नभिन्न करके हटा दिया है, जो पूर्वोक्त अनन्त चतुष्टय रूपी अलौकिक लक्ष्मी का स्वामी बन गया है वही सच्चा माधव है ।

इस भजन मे कहा गया है कि बाहर के करोडो उपाय करने पर भी मोह की गाठ नही खुली है । यथा-प्रवृत्तिकरण उस गाठ के पास अनन्त बार जा आया, फिर भी गाठ न खुली । और उस गाठ के खुले बिना मोक्ष मिलना तो दूर रहा, मिथ्यात्व भी नही हटता ।

कोई साधु हो गया है, इसका यह अर्थ नही कि उसने मोह की ग्रन्थि तोड डाली है ! मोहग्रन्थि के टूट जाने की पहिचान है— अपनी प्रशसा सुनकर प्रसन्न न होना और निन्दा सुनकर दु खी न होना । इस कसौटी पर सभी जिज्ञासु अपनी-अपनी अन्तरात्मा को कस सकते है । आत्मा जब कोयल की भाँति निरपेक्ष बन जाय, बिना किसी आशा-अभिलाषा के परमात्मा के स्वरूप मे तल्लीन रहने लगे और मान-सन्मान की कामना न करे, तभी समझना चाहिए कि मोह की गाठ टूट गई है । अगर आप समाज मे प्रतिष्ठा पाने के उद्देश्य से सामायिक करते है, कीर्ति के लिए उपवास करते हैं और सन्मान पाने के लिए

भक्ति करते हैं तो समझ लीजिए कि अभी मोह की ग्रंथि नही खुली है । अगर आप निष्काम भक्ति करेंगे तो आपके शल्य नष्ट हो जाएँगे और देवता भी आपकी पूजा करेंगे। इसलिए मित्रो ! मैं बार-बार दोहराता हू कि कामना का परित्याग कर दो और निष्काम भाव से भक्ति करो। कामना करने से ही क्रिया का फल तो मिल नही सकता, और क्रिया का फल कामना न करने पर भी मिलता है। फिर कामना करके फल को क्यो तुच्छ बनाते है ? हृदय मे शल्य क्यो पैदा करते हैं ?

मान लीजिए, एक आदमी इष्टदेव की पूजा के लिए मँजी हुई थाली मे पूजा की सामग्री सजाकर, स्नान आदि करके पूजा करने चला । बीच मे उसे एक भगी मिला । वह कहने लगा— पूजा की यह सामग्री मेरे टोकरे मे भी डाल दीजिए । तो क्या कोई पुजारी डाल देगा ?

'नही !'

कदाचित् दूसरे को उठाने के लिए तो दे भी सकता है, मगर भगी के टोकरे मे क्यो नही डालता ? इसीलिए कि टोकरे मे मलीन चीज भरी है और देवता को चढने वाली पवित्र चीज का स्पर्श उससे कैसे होने दिया जाय ?

मित्रो ! और लोग तो अपने देव को फूल-पत्ती, इत्र आदि से प्रसन्न करते है, मगर आपके भगवान् को वीत-राग हैं। वे इन चीजो से भी प्रसन्न नही हो सकते । उन्हे प्रसन्न करने के लिए शुद्ध अन्तःकरण में दान, शील, तप और भावना की सामग्री भरी हो, मगर हो वह पवित्र ही । इन्हे अपवित्र कर देने पर परमात्मा से भेट नही हो

सकती । कल्पना कीजिए कि आपने दान किया । लेकिन दान के साथ अगर अभिमान आ गया तो समझ लीजिए कि आपकी पवित्र वस्तु को चाण्डाल का स्पर्श हो गया। फिर वह अपवित्र वस्तु भगवान को चढाने योग्य नही रही। इसी प्रकार अगर स्तुति के वदले कल्दार की कामना की तो वह भी अपवित्र हो गई। वह भगवान् को अर्पण करने योग्य नही रही।

लोग मनुष्य के शरीर को अछूत मानकर उससे परहेज करते है। मगर हृदय की अपवित्र वासनाओं से उतना परहेज नही करते। वास्तव मे अपावन वासनाएँ ही मनुष्य को गिराती हैं और उसकी छूत से अत्यधिक बचने की आवश्यकता है।

कामना करने से वस्तु नही मिलती। निष्काम भावना से क्रिया करने पर ही अभीष्ट की प्राप्ति होती है। सुसराल मे जाकर अगर कोई पकवान माँगे तो कदाचित् एक बार मिल जाएँगे, लेकिन न मागने पर जैसे बार-बार और आदर के साथ मिलते है वैसे मागने पर नही मिलते। धैर्य के साथ परमात्मा मे अपने मन को लीन कर दो। फिर स्वय ही अपूर्व आनन्द का झरना वहने लगेगा। उस समय आपको अनिर्वचनीय तृप्ति और शाति का अनुभव होगा। कामना की आग मे जलते रहने से कुछ भी लाभ नही होता। अतएव एकमात्र भगवद्भक्ति के प्रयोजन से परमात्मा की स्तुति करो तो आपका कल्याण अवश्य होगा।

बीकानेर,
११-८-३०

(५)

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धम् ।
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ॥
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु ।
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

भवभवान्तर में बंधे हुए प्राणियो के पाप आपकी स्तुति से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार ससार में फैला हुआ, भौंरे के समान काला-काला अन्धकार सूर्य की किरणों से तत्काल नष्ट हो जाता है।

स्तुतिकार आचार्य मानतुंग कहते हैं—हे नाथ ! मैं भव-भव में उत्पन्न किये हुए पापो के समूह को अपने आत्मा के साथ बांधे हुए हूं। एक भव के पापो का ही पार नही होता तो भव-भव के पापों का पार कैसे हो सकता है ? वह अपार पाप मेरी आत्मा को सता रहा है। मगर जैसे चिरकाल के रोगी को महान् कुशल वैद्य के मिल जाने पर आनन्द होता है और वह मान लेता है कि अब मेरा रोग नष्ट हो जायगा, उसी प्रकार भव-भव मे कष्ट सहने के बाद अब आपका संयोग मिला है। मै अपने पापो की गुरुता को देखकर निराश हो जाता था और विपुलता को देखकर डरता था कि इनसे किस प्रकार छुटकारा पा सकूंगा ! मगर आपकी और आपके स्तोत्र की शक्ति को

देखकर मुझे बहुत आश्वासन मिला है। अब पापो से छुटकारा पाने की आशा बँध गई है। इसलिए मैं बहुत प्रसन्न हू । मैंने सुना है कि आपके गुणो म तन्मय हो जाने वाले देहधारी के अनेक भवो के पाप क्षणभर मे नष्ट हो जाते है । अब मुझे उन पापो से डर नही लगता ।

कहा जा सकता है कि परमात्मा के गुणो मे तन्मय हो जाने वाले के पाप एक क्षण मे किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं ? इस प्रश्न का उत्तार देते हुए आचार्य कहते है—

ससार भर को जिसने व्याप्त कर लिया है, वह रात भर का इकट्ठा हुआ अन्धकार और उपायो से अगर नष्ट हुआ भी तो थोडे-से भाग का नष्ट होता है, सारे ससार का अन्धकार नष्ट नही होता । एक शक्ति को छोडकर और कोई शक्ति नही है जो ससार भर के अन्धकार का नाश कर सकती हो । हाँ, एक शक्ति ऐसी है जो देखते-देखते उस अन्धकार को समाप्त कर देती है । सूर्य की किरणो के फैलते ही अन्धकार कहाँ विलीन हो जाता है, पता नही चलता । प्रकृति की यह घटना प्रत्यक्ष देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि जब एक सूर्य ससार भर के अन्धकार को नष्ट कर डालता है तो जिसके सामने अनन्त सूर्य भी तुच्छ हैं, ऐसे परमात्मा की स्तुति मे जब मै तल्लीन हो जाऊँगा, परमात्मा के साथ आत्मा को मिला दूँगा, तब पाप-तिमिर किस प्रकार ठहर सकेगा ?

आचार्य ने यह बात किस भावना से कही है, यह तो कोई पूर्ण पुरुष ही जान सकता है । लेकिन जब पख मिले है तो उडने का अधिकार भी मिला है । अतएव प्रत्येक व्यक्ति इस विषय पर विचार कर सकता है । यहाँ

विचारणीय यह है कि सूर्य के अन्धकार के नाश होने की बात अनुभव से सिद्ध है। हम नित्य ऐसा देखते हैं। मगर परमात्मा की स्तुति की है लेकिन पापों का नाश अब तक भी नहीं हुआ। अगर भगवान् अनन्त प्रकाश के अनुपम पुंज है और उनके लोकोत्तर प्रकाश के सामने पाप नहीं ठहर सकते तो फिर संसार का सब पाप नष्ट क्यों नहीं हो गया ? इस प्रकार भगवान् की स्तुति से ही पापों का नाश हो जाता है तो साधु बनना, श्रावक के व्रत धारण करना, तपस्या करके शरीर को सुखाना, ध्यान-मौन आदि का आचरण करना वृथा है। काम, क्रोध, मोह आदि को जीतने के लिए कठोर साधना करने की आवश्यकता ही क्या है ? बस, भगवान् की स्तुति की और पाप समाप्त हो जाने चाहिए। अगर पापों का नाश नहीं होता तो फिर स्तुति के विषय में यह कहना कैसे ठीक होगा ?

इस प्रकार संदेह करने वालों में कुछ लोग वे हैं जिन्हें परमात्मा पर भरोसा नहीं हैं। बहुतों को परमात्मा सम्बन्धी और आत्मा सम्बन्धी आस्था ही नहीं है। वे नास्तिक हैं। कुछ आस्तिक लोग भी है जो ऐसा सन्देह करते है। जिन्हें परमात्मा पर ही आस्था नहीं है, उन्हें परमात्मा की महिमा समझाना कठिन है। अलबत्ता जो जिज्ञासुभाव से शंका प्रकट करते हैं वे समझ सकते हैं।

उस संदेह के विषय में पहली बात यह है कि सूर्य कैसे ही प्रकाशमान क्यों न हो, जिसने अपने द्वारों के कवाड बन्द कर रक्खे हैं, सूर्य की किरणें जहाँ प्रवेश नहीं पा सकती, जहाँ सूर्य की किरणों का विरोध किया जाता है, वहाँ का अन्धकार अगर नष्ट नहीं होता तो किसका

दोप समझा जाय ?

दूसरी बात भो है। कई जीव सूर्य से विरुद्ध प्रकृति वाले भी है। सूर्य सबको प्रकाश देता है लेकिन उल्लू चमगीदड आदि कई ऐसे जीव है जो अन्धकारमयी रात्रि को ही प्रकाश मानते है और सूर्य के निकलने पर उनके लिए अन्धकार हो जाता है। अब अगर वे कहने लगे कि सूर्य किस प्रकार प्रकाश देता है, यह हमे दिखलाओ तो कैसे दिखलाया जाय ? जब तक उनकी आँखो की रोशनी न वदले तव तक उन्हे सूर्य या उसका प्रकाश कैसे दीख सकता है ?

तीसरे, सूर्य का प्रकाश फैला होने पर भी जिसने आखे मूद रक्खी है, उसे आखे खोले बिना प्रकाश दिखाई दे सकता है ?

जिसे सूर्य के प्रकाश को देखना है, समझना है और उसके महत्त्व को जानना है उसे अपने द्वार खुले रखने होगे, अपने नेत्र खुले रखने होगे और अपनी विरोधी प्रकृति का परित्याग करना होगा। इस विपय मे शास्त्रकारो का कथन है कि अगर किसी को परमात्मा का प्रकाश लेना है तो उसे अपना मन तैयार करना चाहिए। मन का डांवाडोल होना प्रकृति का उलटा कर लेना है अथवा आखे या द्वार वद कर लेने के समान है। जैसे आखे और किवाड वद कर लेने पर या प्रकृति विपरीत होने पर सूर्य नजर नही आता, इसी प्रकार जव तक तुम्हारा मन अस्थिर है तव तक तुम्हे परमात्मा का प्रकाश नही मिल सकता। मतलव यह है कि तुमने अपने ज्ञानचक्षुओ पर पर्दा डाल रक्खा है और चर्मचक्षुओ से, जिनसे सिर्फ स्थूल भौतिक

पदार्थ ही दीख सकते हैं, परमात्मा को देखना चाहते हो। यह कैसे हो सकता है ? जिन आखो से जो वस्तु देखी जा सकती है, उनसे वही वस्तु देखने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक वस्तु ज्ञान-चक्षु से ही दिख सकती है चर्मचक्षु से नही। उस ज्ञानचक्षु पर तुमने पर्दा डाल रक्खा है। तब परमात्मा का प्रकाश तुम्हे कैसे मिल सकता है। शब्द की उपलब्धि आख से नही हो सकती, रस का ज्ञान नाक से नही हो सकता, स्पर्श का ज्ञान कान से नही होता। यद्यपि इन सब इन्द्रियो मे एक आत्मा की शक्ति ही काम करती है, फिर भी इन्द्रिया अपने योग्य विषय को ही जानती है। परमात्मा रूप, रस, गध और स्पर्श से रहित है, इसलिए वह किसी भी इन्द्रिय का विषय नही है। उसे जानने-पहचानने के लिए ज्ञानचक्षु चाहिए। उस पर जब तक पर्दा डाल रक्खा है तब तक परमात्मा का ज्ञान नही होगा।

प्रश्न हो सकता है— ज्ञानचक्षु पर पर्दा कैसे डाल रक्खा है ? इस प्रश्न का समाधान विचार करने पर आप ही आप हो सकता है। क्या पर्दा पडा है, यह बात तो स्पष्ट है, परन्तु लोगो ने अपनी उलटी समझ के कारण उसे उलटा समझ रक्खा है। स्वाभाविक जीवन जीना स्वाभाविक बात है। भगवान् ऋषभदेव ने स्वाभाविक जीवन का पता लगाकर प्रजा को समझाया है और बतलाया है कि मेरी प्रजा को किस प्रकार रहना चाहिए ?

भोगभूमि कहो या अकर्मण्यभूमि कहो या अकर्मभूमि कहो, उसका अर्थ यह है कि खाना, पीना और मौज तो करना मगर खाने, पीने और मौज करने के लिए पैदा कुछ

भी न करना । युगलियों को सब वस्तुओ की आवश्यकता होती है लेकिन वह सब कल्पवृक्षो से उन्हे मिल जाती हैं। उनके लिए उन्हे उद्यम नही करना पड़ता । ऐसी स्थिति मे युगलियो को उद्योगी कैसे कहा जा सकता है ? वे अकर्मण्य ही कहलाते है । वे कल्पवृक्षो से भीख माग-माग कर ही अपनी जिन्दगी व्यतीत करते है ।

इस अकर्मण्य दशा मे उन्हे मोक्ष प्राप्त हो सकता है ? नही ! हा, प्रकृतिजन्य कर्म के विकार उनमे नही हैं, क्योकि उन्हे किसी चीज की कमी नही पडती । कल्पवृक्षो से सब की सब आवश्यकताएँ अनायास ही पूरी हो जाती है । इस कारण वे चोरी आदि कुकर्मो से बचे रहते है और इसी कारण वे नरक एव तिर्यच गति से भी बचे रहते है । फिर भी उन्हे मोक्ष नही मिलता । अनन्त बार युगलियो के भोग भोग लेने पर भी आत्मा का प्रयोजन सिद्ध नही हुआ ।

युगलियो की इस अवस्था मे भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ । उनके जन्म लेते ही ससार पलट गया । कल्पवृक्षो ने फल देना बन्द कर दिया जैसे पहले मागने से सब कुछ मिल जाता था, अब मिलना बन्द हो गया ।

कोई कह सकता है कि भगवान् के जन्म से पहले आनन्द था, शाति थी, मगर भगवान् के जन्म लेते ही हाय-हाय मच गई ! ऐसी हालत मे भगवान् का जन्म अशान्तिकारक हो गया ! लेकिन गीता मे कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मान सृजाम्यह ॥

जैनधर्म के अनुसार इस श्लोक का अर्थ दूसरे प्रकार से ही हो सकता है। यहाँ इसका तात्पर्य यह है कि जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का प्रसार बढ जाता है तो कोई महापुरुष जन्म लेता ही है।

कहा जा सकता है कि भगवान् ऋषभदेव से पहले धर्म की कौन-सी ग्लानि हुई थी कि उनका जन्म हुआ ? बिना आरभ-समारभ किये सीधी तरह खाने-पीने को मिल जाता था, सब लोग मजे मे रहते थे और मौज करते थे। धर्म की इसमे क्या ग्लानि हुई ? तीर्थंकर जैसे परमोत्कृष्ट पुण्यशाली पुरुष का जन्म होने पर तो कल्पवृक्षों की शक्ति अधिक बढनी चाहिए थी, मगर उन्होने तो, जो पहले देते थे, वही देना बन्द कर दिया। इसका क्या कारण है ?

मित्रो ! लोग ऐसे ही चक्कर मे पडे है। 'आत्मा जिस सुख के लिए ललचा रहा है, जिस सुख को भोगने की इसे टेव पड गई है, उसमे कमी होते ही यह चिल्लाने लगता है, हाय-हाय करने लगता है। पहले कल्पवृक्ष वस्तुएँ देते थे और फिर उन्होने देना बन्द कर दिया। ऐसी दशा मे हाय-हाय होना स्वाभाविक है। और उस हाय-हाय को मिटाने के लिए महापुरुष का जन्म होना भी स्वाभाविक है।

तीर्थंकर अनेक लब्धियाँ लेकर जन्मते है। उनमे आश्चर्यजनक शक्तिया मौजूद रहती है। फिर भी उन्होने ससार की हाय-हाय मिटाने का उपाय कृत्रिम बतलाया है या अकृत्रिम बतलाया है ? महापुरुष का जन्म और कर्म कितना दिव्य होता है, यह बात पूरी तरह तो दिव्य दृष्टि प्राप्त होने पर ही जानी जा सकती है। शास्त्रो मे वह दिव्यता प्रकट की गई है लेकिन सर्वसाधारण की समझ

निराली होती है। भगवान् ऋषभदेव दिव्यज्ञानी थे। वे ऐसे पोले उपाय नही बतला सकते थे कि अमुक मन्त्र जप लो और तुम्हारी मनचाही चीज तुम्हे मिल जायगी। भगवान् का जन्म अकर्मण्यभूमि मिटाकर कर्मभूमि बनाने के लिए हुआ था। यह बात प्राचीन है और समझ की कमी के कारण उसे समझना कठिन हो रहा है। स्तुति मे कहते हैं—

श्री आदीश्वर स्वामी हो,
प्रणमूं सिर नामी तुम भणी।
आदि धरमप्रभु अन्तर्यामी आप कीधी हो,
भरत खेतर सर्पिणि काल में॥
कॉई जुगल्याधर्म निवार,
पेला नरवर मुनिवर हो॥
तीर्थंकर जिन हुआ केवली,
प्रभु थाप्या तीरथ चार॥श्री०॥

कुछ लोग कहेगे कि भगवान् ने 'जुगल्याधर्म' मिटाकर कौन-सा अच्छा काम किया ? मजे मे बिना हाथ-पैर हिलाये सीधा खाना-पीना मिलता था। फिर कर्मभूमि चलाने से क्या लाभ हुआ ? कुछ लोग तो यहॉ तक कहते हैं कि भगवान् ऋषभदेव ने आरभ-समारभ करना ही सिखलाया है। घर बनाना, खेती करना, वर्त्तन और कपड़े बनाना आदि काम बतलाकर निरारभी जीवन मे बाधा डाल दी है।

वास्तव मे सकीर्ण विचार वाले लोग धर्म के तत्त्व को नही समझ सकते। पहले कहा जा चुका है कि नैतिक जीवन के अभाव मे धार्मिक या आध्यात्मिक जीवन नही

बन सकता । मगर लोग नैतिक जीवन के महत्त्व को नहीं समझते । पर भगवान् ने सबसे पहले नैतिक जीवन की ओर ही दृष्टिपात किया । उन्होने सोचा कि यह लोग अगर आलसी बने रहेंगे तो इनकी आत्मा ऊँची नही चढ सकेगी । अतएव सर्वप्रथम इनका आलस्य मिटाकर इनके जीवन को नीतिमय बनाना आवश्यक है । जब मनुष्य में सामर्थ्य है तो उसका उपयोग होना चाहिये ।

भगवान् ने उस समय की प्रजा से कहा— अरे मनुष्यो ! तुम्हारे हाथ-पैर हैं, नाक-कान हैं, तुम्हारे भीतर शक्ति भरी हुई है, फिर आलस्य मे क्यो पडे रहना चाहते हो ? क्यों किसी की भीख के सहारे जीना चाहते हो ? अपनी शक्ति को पहचानो और अपनी शक्ति के सहारे रहो । ऐसा करने से प्रकृति तुम्हारा साथ देगी । तुम हाथ मे हल पकडोगे तो बैल भी तुम्हारी मदद करेगे । अगर तुम हाथ-पैर ही न हिलाओगे तो प्रकृति कैसे मदद करेगी ? इसलिए आलस्य छोडो, फितूर मत बढाओ, सादगी से रहो और अपना भार दूसरों पर मत डालो । अपने लिए आप ही उद्योग कर लो । जब जीवन मे इतनी नैतिकता आ जाएगी तो जीवन आध्यात्मिकता की ओर भी अग्रसर हो सकेगा ।

भगवान् की यह बात युगलियो ने स्वीकार की मगर—

महाजनो येन गत. स पन्था ।

इस कहावत के अनुसार भगवान् को सब काम अपने हाथ से करके बतलाने पडे । बहुत से काम आखो से देखकर ही सीखे जाते हैं, तदनुसार भगवान् ने सब काम असली

तौर पर उस समय की प्रजा को सिखलाए ।

भगवान् ने आरभ-समारभ करना क्यो सिखलाया ? इस सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि जीवन सर्वथा निरारम्भ न हुआ है, न है और न होगा । आरभ के अभाव मे जीवन टिक ही नही सकता । ऐसी स्थिति मे आरभ की तरतमता का विचार करना पडता है और जो कार्य कम आरभ का हो उसे अपनाना पडता है । आत्मघात करने वाला धर्मात्मा नही हो सकता । अतएव जीवन निभाने के लिए किये जाने वाले अनिवार्य आरंभ का विरोध करना बुद्धिमत्ता नही है ।

भगवान् ऋषभदेव पर यह आरोप लगाना कि उन्होने पाप करना सिखलाया है, निरी मूर्खता है । कल्पवृक्षो से जीवनोपयोगी वस्तुएँ मिलना बद हो गया था, ऐसी दशा मे भगवान् लोगो को अगर कार्यकलापो के द्वारा जीवन धारण करने की शिक्षा न देते तो लोग अनार्य कलापो की ओर झुकते, उनमे प्रवृत्त होते और फिर उनके जीवन का पतन कहाँ जाकर रुकता ? उस समय की जरा कल्पना कीजिए कि कल्पवृक्षो ने देना बन्द कर दिया और प्रजा को कलापो का ज्ञान नही था ! उस समय की प्रजा पर यह कितना घोर सकट था ! उन पर जो बीती होगी उसे कौन अनुभव कर सकता है ! उस समय भी अगर भगवान् कलाएँ न सिखलाते तो ससार मे घोर पाप छा जाता । यहाँ तक कि आत्मघात की नौबत आ जाती या मनुष्य, मनुष्य को खाने लगता । क्या ऐसा करना घोरतर पाप न होता ? शास्त्र मे कहा है कि अन्न-पानी के विना जो विलविलाहट करता हुआ मरता है वह अकाममरण मरता

है और अनन्त ससार बढाता है ।

एक ओर उस समय की प्रजा के भूखों मरने का प्रश्न था और दूसरी ओर महारभ होने की सभावना थी। तब भगवान् ने विचार किया कि महारभ से बचकर जीवन नीतिमय और धर्ममय किस प्रकार बन सकता है और फिर आध्यात्मिक प्रगति कैसे हो सकती है? जीवन धारण करने का अल्पारभ के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नही था और न आज है । अतः अल्पारभ का मार्ग सिखाकर भगवान् ने प्रजा को महारभ के महापाप से बचाने का उपाय किया ।

'अन्न वै प्राण' अर्थात् अन्न प्राण है । शरीर के लिए अन्न की अनिवार्य आवश्यकता है और खेती के बिना अन्न प्राप्त नही हो सकता । इसलिए भगवान् ने अन्न उत्पन्न करने की कला बतलाई । खेती के कार्य मे आरभ तो है ही, लेकिन भगवान् कहते है कि शरीर निभाने के लिए खेती करने वाला अल्पारभी है। अलबत्ता जो धनवान् बनने के उद्देश्य से खेती करता है वह अवश्य महारभी है । इसी प्रकार अपना तन ढँकने तथा गर्मी-सर्दी और वर्षा से बचने के लिए वस्त्र बनाने वाले को अल्पारभी और धन के लिए मील चलाने वाले को महारभी कहा है । मतलब यह है कि जीवन की रक्षा के लिए जो कार्य आवश्यक हैं और जिनके विना जीवन की रक्षा नही हो सकती, उन कार्यों मे होने वाले आरभ को भगवान् ने अल्पारभ कहा है और भोग-विलास आदि की अभिलाषा से किये जाने वाले अनावश्यक सावद्य व्यापार को महारभ कहा है।

महारभ से बचाने के लिए ही भगवान् ने पुरुषो को

वहत्तर कलाएँ और स्त्रियो को चौसठ कलाएँ सिखलाई, जिससे कि सुखपूर्वक नैतिक जीवन व्यतीत हो सके और आध्यात्मिक जीवन मे प्रगति हो सके। जब आध्यात्मिक जीवन मे प्रवेश हो चुके तब इन इन्ही कामो को भगवान् ने त्याज्य बतलाया है। आध्यात्मिक जीवन की साधना के पथ पर आरूढ होने के पश्चात् शरीर पर भी ममता न रखने का विधान किया गया है। भगवान् ने कहा है कि पूरी तरह ममता का त्याग कर दो और आत्मा पर ही ध्यान रक्खो और सोचो कि मैं अविनाशी हू।

इस रीति से भगवान् ने आध्यात्मिक विचार फैलाया, जिससे बहुत से लोगो ने अपनी आत्मा को ऊँचा चढाया, अपना कल्याण किया।

साराश यह है कि आप यह तो कहते है कि भगवान् ऋषभदेव के स्तोत्र से पापो का नाश होता है तो फिर हमारे पापो का नाश क्यो नही हुआ, परन्तु स्तोत्र के अनुसार आप कार्य नही करते। आप भगवान् ऋषभदेव के कथन के विरुद्ध जीवनयापन करते हैं। आप प्रत्येक वस्तु को भोग की तराजू पर तोलते हैं, कमाते नही है। जब शरीर को वस्तु की आवश्यकता है तब बिना पैदा किये उस वस्तु का भोग कैसे होगा? जब तक यह बात आप भलीभांति नही समझ लेगे तब तक आध्यात्मिक जीवन को कैसे समझेंगे? और जब तक आध्यात्मिक जीवन को नही समझेंगे तब तक स्तोत्र बोल लेने मात्र से पापो का नाश कैसे हो सकता है? जिसने पक्षपात और स्वार्थ की दृष्टि का त्याग कर दिया है, उसके पाप भगवान् के स्तोत्र से अवश्य ही नष्ट हो जाते है।

एक आदमी दूसरे गरीब के कधे पर चढा है और कधे को इस तरह दबाता है कि जिधर चाहे उधर ही उसे ले जाता है। तिस पर भी सवार कहता है कि मै इस गरीब पर दया करता हू। मैं न होऊँ तो इसकी न ज़ाने क्या दशा हो! मगर कधे पर चढने वाले से पूछा जाय कि जब तुझे कधे पर बिठाने वाला नही मिलेगा तो तेरी क्या दशा होगी? आज करीब-करीब यही दशा हो रही है। अमीर लोग गरीबो पर सवार है, उनके धन का शोषण कर रहे हैं, तिस पर ऐहसान करते हैं कि हम गरीबो पर दया कर रहे हैं! सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने उपकारी का उपकार करने का ही विचार करता है। किसी से उधार लेकर न देना सम्यग्दृष्टि का काम नही है। लेकिन अपने ऐश-आराम के लिए गरीबो के प्रति अन्याय करना और फिर उस अन्याय को गरीबो पर दया करना कहना आत्मा और परमात्मा के बीच दीवाल खडी करना है। जब तक यह दीवाल नही हटेगी और हृदय साफ नही होगा तब तक परमात्मा का दर्शन किस प्रकार हो सकेगा? आरम्भ-परिग्रह का त्याग न कर सको तो कम से कम उपकारी के उपकार को तो स्वीकार करो।

आज समय बदल रहा है तो लोग रोते है, जैसे युगलिया रोते थे। यह रोना और हाय-हाय केवल भोग के लिए है। ऐश-आराम मे कमी हो जाने के डर से ही यह रोना है। मगर मित्रो! भोग के लिए क्यो रोते हो? जरा भगवान् ऋषभदेव को याद करो।

धनिक लोग सोचते है कि हमने पुण्य किया है। उसका फल भोग रहे हैं। अब उद्योग करने की आवश्यकता

ही क्या है ? उसके कथन का आशय यह है कि जो परिश्रम न करे वह धर्मात्मा है और जो परिश्रम करके खाता है वह पापी है। यह समझ की बडी भूल है। अब समय पलट रहा है। समय की प्रगति को देखो और अपने धर्म का भी विचार करो। आपको सही रास्ता मिल जायगा। अगर आपका बिगडा हुआ नैतिक जीवन सुधर जाएगा और आरभ-परिग्रह के प्रति आपकी उग्र ममता छूट जाएगी तो परमात्मा की स्तुति आपके पापो का नाश कर देगी और आप निष्पाप बन जाएँगे। आपका कल्याण होगा।

बीकानेर,
१४-८-३०

(६)

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद—
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सता नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननून्दविन्दु. ॥८॥

हे नाथ, ऐसा मानकर अल्पबुद्धि वाला भी मै आपके प्रभाव से स्तुति आरभ करता हू । यह स्तुति (आपके प्रभाव से) सत्पुरुषो के चित्त को हरण करेगी । जल का बूँद कमलिनी के पत्तो पर मोती की कान्ति प्राप्त करता है ।

श्री मानतु गाचार्य कहते है— हे नाथ ! मैं आपके प्रताप से आपके बल पर ही स्तुति बनाना प्रारभ करता हू, अपने बुद्धिबल के सहारे नही । मै अपने बुद्धिबल के सम्बन्ध मे तो पहले ही कह चुका हू कि मुझमे अल्पबुद्धि है । ऐसी स्थिति मे मै आपके सहारे ही स्तुति करने को उद्यत हो रहा हू । मेरे द्वारा की गई आपकी स्तुति अवश्य ही सज्जनो के चित्त को हरण करने वाली होगी । इसका कारण यह नही है कि मैं अपने बुद्धिकौशल से सुन्दर रचना करूँगा, बल्कि यह स्तुति आपकी है । आपकी स्तुति, जो पारमात्मिक भाव से होती है, सज्जनो के मन को हरण करने वाली होनी ही चाहिए । जल का वूँद जब कमलिनी

के पत्ते पर ठहरा होता है तब मोती की तरह चमकने लगता है, यह बात छिपी नही है। यह बड़ाई उस पानी की नही है किन्तु उस स्थान की है, जिसे पाकर वह चमकने लगता है। मेरे शब्द भी पानी के समान है किन्तु आपका आधार पाकर अर्थात् आपकी स्तुति के काम मे आकर वे मोती के समान हो गये है।

मित्रो ! मानतुगाचार्य के काव्य की उत्तमता को देखते हुए यह नही कहा जा सकता कि वे विद्वान् नही थे या उनका काव्य साधारण कोटि का है। उनकी कविता से प्रकट है कि वे असाधारण विद्वान् थे। ऐसा होते हुए भी उन्होने जो नम्रता प्रकट की है, वह हम लोगो को मार्ग दिखाने के लिए है। आचार्य दिग्गज विद्वान् और भक्त कवि थे। ऐसी सुन्दर रचना करना साधारण कवि का काम नही है। इसमे भाषा की सुन्दरता के साथ भावो की जो विशिष्ट सुन्दरता है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि इसके रचयिता असामान्य भक्त विद्वान् थे। फिर भी उन्होने जो नम्रता प्रकट की है उससे हम लोगो को यह सूचना मिलती है कि अपनी शक्ति का अहंकार तज दो। शब्द चाहे जैसे हो, परमात्मा को समर्पित कर दो। मुझ अल्पबुद्धि वाले के शब्द भी प्रभु की स्तुति मे लगने के कारण सज्जनो का मन हरण करेंगे, यह कहकर आचार्य प्रकट करते है कि मनुष्य को देखना चाहिए कि उसके शब्द किधर जाते है। शब्द भले ही टूटे-फूटे हो फिर भी यदि वे परमात्मा के प्रति समर्पित होगे तो उत्तम ही है और सज्जन पुरुषो को मनोहर प्रतीत होगे।

बहुत-से लोग देवता को फूल-फल-पत्ता चढाते है और

कई अनार्य पुरुष बकरा तथा भैंसा जैसे त्रसजीवों की बलि देते है। यह सब आडम्बर है। देवता सज्जन हैं। उन्हें प्रसन्न करना है तो परमात्मा को अपनी वाणी चढाओ। ऐसा करने से देवता स्वत प्रसन्न हो जाएंगे, क्योंकि वे भी परमात्मा के भक्त और दास हैं। महामहिम परमात्मा की स्तुति करने से देवताओं का प्रसन्न हो जाना स्वाभाविक है।

आधार-आधेय का विचार करके देखना चाहिए कि वस्तु कहाँ जाती है? विद्वानो ने वस्तु की गति तीन प्रकार की बतलाई है। एक ही वस्तु उत्तम स्थान पर जाने से उत्तम हो जाती है, मध्यम स्थान पर जाने से मध्यम हो जाती है और नीच स्थान पर जाने से नीच बन जाती है। भर्तृहरि ने जल के सम्बन्ध मे कहा है—

> संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
> मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थि राजते।
> स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतित तन्मौक्तिकं जायते,
> प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो देहिनाम्॥

यो पानी के बिन्दु की कोई कीमत नही करता। लेकिन वही पानी का बिन्दु जब स्वाति नक्षत्र मे सीप के मुख मे गिरता है तो मोती बन जाता है। तब यह आदर पाता है और उसे धारण करने के लिए राजा अपना कान छिदवाता है और रानी अपनी नाक छिदवाती है। वह मोती है उसी पानी का प्रताप, मगर पानी जब सीप से मिला तभी उसे यह प्रतिष्ठा मिली। उत्तम पात्र को पाकर पानी भी उत्तम हो गया।

जल के बूद की दूसरी गति है कमल के पत्ते पर गिरना। कमल के पत्ते पर गिरने वाला पानी मोती तो नही बनता, लेकिन मोती सरीखा दिखाई देता है। उसकी कीमत तो नही आ सकती फिर भी देखने से चित्त को वह प्रसन्न अवश्य करता है।

जो जल-बिन्दु सीप मे पडकर मोती बन जाता है, कमल के पत्ते पर पडकर मोती सरीखा दिखाई देने लगता है, वही अगर गरम तवे पर पड जाय तो तत्काल भस्म हो जाता है। यह उसकी तीसरी गति हुई।

जल-बिन्दु की यह तीन बडी गतियाँ बतलाई गई है। उसकी अवान्तर दशाएँ तो बहुत-सी है। जैसे—वह अन्न मे पडकर अन्न-सा हो जाता है, इक्षु मे पहुचकर मधुर हो जाता है, नीम मे पहुचकर कटुक बन जाता है और साँप के मुँह मे पडकर जहर बन जाता है। इस प्रकार की अनेक अवस्थाएँ उसकी होती है। मगर तीन अवस्थाएँ उसकी ध्यान आकर्षित करने वाली है। इन तीन अवस्थाओ मे से स्तुतिकर्त्ता ने यहाँ मध्यम अवस्था पकडी है। मध्यम के सहारे आदि और अन्त की अवस्था भी पकड़ी जा सकती है। आचार्य कहते है— मेरे शब्द भले ही कौडी के बराबर हो लेकिन भगवान् की स्तुति मे लग जाने से मोती बन गये है।

हम लोगो को पुण्य के उदय से मन, वचन और काय की प्राप्ति हुई है। वह पुण्य तीव्र था, इस कारण आर्य क्षेत्र मिला, मनुष्यगति मिली और दूसरी सब उत्तम सामग्री मिली। वैसे देखा जाय तो इन सब की कोई कीमत नही है, फिर भी यह महान् दुर्लभ वस्तुएँ है।

लोगो का दृष्टिकोण इतना अर्थप्रधान बन गया है कि अर्थ के सामने किसी दूसरी चीज की कोई कीमत ही नही है। महत्त्व उसी का समझा जाता है जिसके बदले मे पैसा चुकाना पडता है। यह एकदम भौतिक दृष्टिकोण अपने आप को भुलावे मे डालने वाला है। धनवान् की कोई कीमत नही, जो कुछ है धन की ही कीमत है। धन के सामने जीवन तुच्छ है, आत्मा नाचीज है। यह दृष्टिकोण इतना व्यापक हो गया है और इसका असर लोगों पर इतना अधिक हो चुका है कि इससे भिन्न दूसरी बात सोचना भी उनके लिए कठिन हो गया है। मगर मनुष्य अपनी मनुष्यता को भूल जाय, यह कितने सताप की बात है। आर्थिक मूल्य न चुकाने पर भी देखना चाहिए कि वस्तु का महत्त्व कितना है ? इस दृष्टि से अपने वचन और काय की कीमत समझनी चाहिए। इसके लिए हमे पैसा नही देना पडा है, यह सही है मगर यह मुफ्त मे भी नही मिले हैं। इनके लिए पहले से सचित पुण्य की एक बडी राशि खर्च करनी पडी है और पुण्य की पूजी पैसे की पूजी से हल्की नही वरन् बहुत ज्यादा कीमती है। कहना चाहिए कि पुण्य की पूजी से ही पैसे की पूजी प्राप्त होती है। जब पुण्य समाप्त हो जाता है तब जमीन-खोदकर गाडा हुआ धन भी कोयला हो जाता है, मोतियो की माला भी साप बन जाती है। इस प्रकार पुण्य ही सब प्रकार की सम्पत्ति का आद्य स्रोत है। जिस वस्तु के लिए पुण्य को व्यय करना है वह बडी कीमती वस्तु है। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि गगा, यमुना और सरस्वती के सगम की अपेक्षा भी मन, वचन और काय का सगम होना कठिन है।

गगा, यमुना और सरस्वती के एक ही जगह मिलने से उस स्थान को त्रिवेणी कहते हैं और लोग उसे तीर्थ मानते है। इसी प्रकार मन, वचन और काय का जहाँ सगम है, वह क्या तीर्थ से कम है ? यह तीर्थ सच्चा तीर्थ है, जिसके द्वारा भवसागर तिरा जा सकता है। मगर इन तीनो के लिए आपको इस समय पैसा नही देना पडा है, इसीलिए आप इनकी कद्र नही करते। फिर भी विचार करने पर मालूम होगा कि यह कितनी उत्तम वस्तुएँ है। आपके मन, वचन और तन की आर्थिक दृष्टि से कितनी कीमत है ? कितना धन लेकर आप अपना मन बेच सकते हैं ? कितने रुपये पाकर आप वचन बेच देगे और गूगा होना स्वीकार कर लेंगे ? और आपकी काया की कीमत क्या है ? कितना मूल्य लेकर आप अपनी काया त्याग सकते हैं ? इन प्रश्नो पर विचार करो तो असली बात समझ मे आयगी। जब इनका महत्व इतना अधिक है और यह उत्तम वस्तुएँ है तो इन्हे उत्तम काम मे ही लगाना चाहिए या नीच काम में लगाना चाहिए ? किसी पागल को राज्य देने लगो तो उसके किस काम का ? अर्थात् मन राज्य से भी मूल्यवान् है। वाणी की महिमा किसी गूगे से पूछो। उसे वाणी और मोतियो की माला मे से एक चीज देना चाहो तो वह माला पसन्द नही करेगा, वाणी ही लेना चाहेगा और काया के सहारे तो यह सब खेल ही है। यह तीनो चीजे आपको मिली है और वे भी दुरुस्त हालत मे मिली हैं, यह कितने आनन्द और सन्तोष की बात है। जिन्हे यह प्राप्त नही है, उनके साथ अपनी तुलना करके देखो तो ज्ञात हो कि यह अपूर्व और अमूल्य वस्तुएँ हैं। किन्तु बादामपाक खाते-खाते जिसे अजीर्ण हो

गया वह रोटी की कीमत नही समझता, उसी प्रकार आप भी इस अपूर्व सम्पत्ति की कीमत नही समझते ।

मन, वचन और काय अत्यन्त तीव्र पुण्य के उदय से मिले हैं और धर्मरूपी सीप हमारे सामने मुँह फाडे खडा है, तो हम इन्हे पानी के बूँद की तरह धर्म-सीप के ही मुँह मे क्यो न डाल दे ? धर्म और परमेश्वर एक ही हैं, दो नही । उसे धर्म भी कह सकते हो और परमेश्वर भी कह सकते हो । 'सच्च भगवओ' (सत्य भगवान्) भी कह सकते हो । उस सत्य की सीप म अपने मन, वचन, काय को डाल दोगे तो ये मोती बन जाएँगे । ये ऐसे मोती वनेंगे जो राजा-महाराजाओ के आदर के ही पात्र नही बनेंगे वरन् देवता भी इनकी पूजा करेंगे ।

देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सयामणो ।

अर्थात् जिसके मन मे सदैव धर्म का वास होता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं ।

इस प्रकार काक्षाहीन होकर अगर आप भगवान् की भक्ति करेंगे तो देवता भी आपको नमस्कार करेंगे । विनय-चन्द्रजी कहते हैं -

आगम--साख सुणी छे एहवी,
जो जिनसेवक थाय हो सुभागी ।
तेहनी आशा पूरे देवता,
चौंसठ इन्द्रादिक साय हो सुभागी ॥
श्री शान्ति जिनेश्वर सायब सोलवा,
शान्तिदायक तुम नाम हो सुभागी ।
तन मन वचन हो शुध कर ध्यावता,
पूरे मगली हाम हो सुभागी ॥श्री०॥

यह आगम की साक्षी है कि जो तन, मन और धन का अहंकार त्याग कर उन्हे परमात्मा को समर्पित कर देता है और फिर भी निष्काम बना रहता है, उसकी आशा देवता पूर्ण करते हैं। आप देवताओ से आशा रखते है, इसी कारण वे आपकी आशा पूरी नही करते। अगर आप तन, मन, धन परमात्म-समर्पण कर दें तो देवता आपकी आशा पूरी करेंगे और इन्द्र दास हो जाएँगे।

मन रात-दिन घोडे की तरह दौड़ लगाता रहता है। लेकिन यह देखना आवश्यक है कि परमात्मा की ओर कितना दौडता है और नीच कामो की ओर कितना दौडता है ? यह अपूर्व चीज आपको मिली है। क्षण भर के लिए भी इसका दुरुपयोग मत होने दो। सोते-बैठते सब समय परमात्मा मे ही सलग्न रहना चाहिए।

सुत्ता मुणिहया

जितात्मा सयमी मुनि जब सोते है तब भी उनके योग उसी प्रकार काम करते रहते है, जैसे कि जागृत अवस्था मे करते हैं। कुम्भार का चाक वेग के साथ घुमा-कर छोड दिया जाता है तो थोडी देर तक बिना घुमाये घूमता रहता है। इसी प्रकार जिसने जागते समय मन को परमात्मा मे सम्पूर्णता के साथ लगाया है, उसका मन सोते समय भी वहाँ लगा रहेगा। जो निरन्तर परमात्मा की भावना से हृदय को भावित करता रहेगा, उसका मन सुषुप्ति दशा मे अन्यत्र जा ही नही सकता।

आज अधिकाश लोग ऊपरी दिखावे के लिए परमा-त्मा के भक्त बनते है। जैसे कोई अच्छा मकान बनाने वाला समझता है कि फर्नीचर के बिना इस मकान की

इज्जत नही होगी और यह सोचकर वह दिखावे के लिए फर्नीचर बसा लेता है, इसी तरह लोग सोचते हैं--दुनियादारी के सब काम-काज करते हैं, अगर धर्म न करेंगे तो अच्छा नही लगेगा। करीब-करीब ऐसे विचारो से लोग धर्मक्रिया करते है। मगर जो धर्मात्मा है, जिसने धर्म का मर्म समझ लिया है, उसके विचार निराले होते हैं। वह सोचता है ससार-व्यवहार के काम माथे आ पडे हैं तो मकान मे फर्नीचर बसाने की तरह करने पडते हैं, लेकिन धर्म तो मकान ही है। फर्नीचर के चक्कर मे फँसकर मकान की उपेक्षा नही की जा सकती। मकान ही न होगा तो फर्नीचर किसमे बसाएँगे ?

जल मे रहने वाली मछली खाती तो है, मगर उसके भीतर ही, बाहर नही। वह देखती भी है, मगर जल के भीतर ही। जल के बाहर तो उसके लिए घोर अन्धकार है। वह चलती-फिरती भी है, मगर जल के बाहर नही। इसी प्रकार जिसमे सच्ची धर्मभावना होगी वह धर्मभावना से बाहर कभी नही निकलेगा। उसे धर्मभावना से बाहर निकलना उसी प्रकार अरुचिकर होगा, जिस प्रकार जल से बाहर निकलना मछली के लिए अरुचिकर होता है। ऐसी प्रगाढ धर्मभावना की प्रशसा इन्द्र भी करते हैं।

इन्द्र पौपधशाला मे बैठे हुए की प्रशसा करे तब तो कोई बात ही नही, मगर इन्द्र जहाज मे बैठे हुए धर्मात्मा की, जहाँ आरभ ही आरभ है, प्रशसा क्यो करता है ? इसका कारण यही है कि जहाज मे बैठे हुए भी धर्मात्मा की भावना परमात्मा मे ही लगी है। धर्मभावना वाला पुरुप चाहे जहाज मे बैठा हो, चाहे पौषधशाला मे बैठा हो,

मन उसका परमात्मा मे ही लगा रहता है। इसी कारण वह इन्द्र द्वारा प्रशसनीय हो जाता है।

आप यह न समझे कि धर्म केवल पौषधशाला मे ही है, अन्यत्र पाप ही पाप है। इस प्रकार की भावना से पाप की अधिक वृद्धि होती है। आपका विचार यह होना चाहिए कि मै धर्मी हू और धर्म की आजीविका करता हू। पौषधशाला तो धर्म की शिक्षा-शाला है। उस शिक्षा का उपयोग तो वाहर ही होता है अगर आपने पाठशाला मे पाच और पाच दस गिने और पाठशाला से वाहर निकलते ही ग्यारह गिनने लगे, तो आपका सीखना निरर्थक हुआ। इसी प्रकार अगर पौषधशाला मे धर्म की शिक्षा ली और बाहर जाकर उसे भूल गये और अधर्म मे प्रवृत्त हो गये, कपट करने लगे, झूठ बोलने लगे, तो आपकी वह शिक्षा व्यर्थ हुई। धर्म का सस्कार धर्मस्थान से ऐसा ग्रहण करो कि वह जीवन-व्यवहार मे काम आवे। कदाचित् आप सोचते हो कि व्यवहार मे धर्म का अनुसरण करने से काम नही चलेगा, व्यवहार चौपट हो जायगा, तो आप अपने हृदय से यह भ्रम दूर कर दीजिए। धर्म का व्यावहारिक अनुसरण करने वाले कभी भूखो नही मरते।

बहुत लोग धर्म के सम्बन्ध मे एक भ्रम मे पडे हैं। उनका यह अभिप्राय है कि धर्म व्यवहार की वस्तु नही है? अगर धर्म व्यवहार मे लाने की वस्तु न होती तो उसका माहात्म्य ही न होता। प्राचीनकाल के अनेक चरित हमारे सामने है, जिनमे भलीभाँति समझा जा सकता है कि लोकव्यवहार मे धर्म का आचरण करने वालो का व्यवहार कभी नही रुका है। धर्म न दिखावे की वस्तु है

और न कीर्ति उपार्जन का साधन है। यह बात दूसरी है कि धर्मात्मा की कीर्ति स्वत ससार मे फैल जाती है, पर धर्म का उद्देश्य कीर्ति उपार्जन करना नही है। धर्म तो आचरण की वस्तु है। धर्मस्थान का जीवन और दुकान का जीवन अलग-अलग नही है। वह एक है, अविभक्त है। अतएव धर्मस्थान और दुकान के जीवन-व्यवहार मे भी एकरूपता होनी चाहिए।

जीवन मे एकरूपता लाने के लिए सदा सर्वदा परमात्मा की भक्ति मे लीन रहना चाहिए व्यावहारिक कार्य करते समय भी परमात्मा अन्त करण में मौजूद रहना चाहिए। परमात्मा को भुलानेवाला अर्थात् परमात्मा के आदेशो के विरुद्ध व्यवहार करने वाला भक्ति के मर्म को नही समझा है। जो भक्ति के मर्म को और प्रभाव को समझ जायगा वह क्षणभर के लिए भी परमात्मा को विस्मरण नही करेगा। वही कल्याण का पात्र बनेगा।

बीकानेर,
१२-८-३०

{(७)}

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्सकथाऽपि जगतां दुरिता निहन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाजि ॥९॥

अर्थ—

सूर्य की बात तो जाने दीजिए, उसकी प्रभा से ही सरोवरो मे कमल खिल जाते है। इसी प्रकार समस्त दोपो से रहित आपकी स्तुति की तो बात ही क्या, आपका नाम लेने से ही जीवो के पापो का नाश हो जाता है।

भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए आचार्य मान-तुग कहते है कि साधारण वस्तु भी जब किसी विशिष्ट वस्तु का आश्रय लेती है तो उसकी साधारणता मिट जाती है और उसमे असाधारणता आ जाती है। आश्रय की विशेपता वस्तु मे विशेषता उत्पन्न कर देती है। इसी प्रकार अच्छी वस्तु अगर बुरी वस्तु का आश्रय लेती है तो वह भी बुरी बन जाती है। मुझे जो सामान्य वस्तु मिली है, उसे अगर परमात्मा का आश्रय प्राप्त हो जाय, अगर वह प्रभु के प्रति समर्पित हो जाय तो वह असाधारण बन जायगी।

परमात्मा का यह आह्वान है कि तू जैसा है वैसा ही मेरे पास आ। यह मत विचार कि मेरे पास ऋद्धि, सम्पदा या विद्वत्ता नहीं है तो मैं परमात्मा के पथ पर कैसे पॉव रख सकूंगा ! इस विचार को छोड दे और जैसा है वैसा ही परमात्मा की शरण मे जा। जैसे कमल के पत्ते का सयोग पाकर जल की साधारण बूँद भी मोती की कान्ति पा जाता है, उसी प्रकार तू परमात्मा का सयोग पाकर असाधारण बन जायगा।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अगर किसी मे स्तोत्र बनाकर गाने की शक्ति न हो तो उसे क्या करना चाहिए। स्तोत्र छन्दबद्ध होने के कारण बडो का अर्थात् विद्वानो का मन चाहे हर ले, लेकिन छोटो का इससे क्या लाभ होगा ? लेकिन स्तोत्र से अगर विद्वानो का ही मनोरजन होता हो और छोटो को उससे लाभ न पहुंचे तो वह स्तोत्र ही क्या ? जवार मोतियो से कम कीमती होने पर भी अधिक कीमती होती है, क्योकि उससे गरीब और अमीर–सब का काम चलता है। मोती तो सिर्फ अमीरो के ही काम आते है। इसी प्रकार वही स्तोत्र मूल्यवान् है जिससे सब लोग लाभ उठा सकते हो। मगर जो लोग छन्दबद्ध स्तोत्र से लाभ नही उठा सकते वे अपने मन, वचन और काया परमात्मा को किस प्रकार अर्पित कर सकते है ?

इस सम्बन्ध मे आचार्य कहते है कि जिसके प्रभाव से सब पाप धुल जाते हैं, उस प्रभु की प्रसगकथा भी सब पापो का नाश कर सकती है, यहाँ तक कि उसका नामकीर्तन भी पापो को नष्ट कर देता है। जिस प्रभु का नामकीर्तन और प्रसगकथा भी पापमोचिनी है उसके स्तोत्र

के प्रभाव का कहना ही क्या है !

प्रभु के स्तोत्र मे वह शक्ति है कि अन्त करण की बलवती प्रेरणा से स्तोत्र बनाने वाला स्वय इन्द्र की स्तुति का पात्र बन जाता है। जिनके स्तोत्र बनते है उनकी कथा भी महान् होती है। इसी कारण स्तोत्र भी महान् बनते हैं।

इतिहास वह है जिसमे बीती बातो का वर्णन हो। इतिहास के लिखने मे तो थोडी ही देर लगती है और परिश्रम भी कम करना पडता है, लेकिन इतिहास मे वर्णित कार्यों को करने मे कितना परिश्रम हुआ होगा ? कितना समय लगा होगा ? किसी व्यक्ति के चरित को ही लीजिए। चरित की रचना तो सहज ही की जा सकती है मगर चरित मे लिखित बातो का अमल करने मे चरित-नायक को कितना परिश्रम करना पडा होगा ? कल्पना कीजिए—किसी राजा ने एक सुन्दर और विशाल महल बनवाया। दूसरे आदमी ने उसका वर्णन लिखा कि इस महल मे इतने कमरे, इतनी खिडकियाँ और इतने द्वार है, आदि-आदि। बस, मकान की कथा तो इतने मे ही समाप्त हो गई, मगर विचार कीजिए कि महल बनाने मे कितना श्रम और समय लगा होगा ? इस प्रकार विचार करने पर आपको भगवान् की कथा की महिमा ज्ञात होगी। महापुरुषो की कथा पापो को हरण करने वाली होती है और जिनकी कथा पापो को हरण करने वाली होती है, उन्ही का स्तोत्र महान् कल्याणकारी होता है।

आचार्य कहते है— परमात्मा सम्बन्धी कथा भी पापो का विनाश करने वाली होती है। जैसे कमल को विकसित करने के लिए सूर्य तो दूर रहा, उसकी प्रभा ही पर्याप्त

है, उसी प्रकार भगवान् की स्तुति का तो कहना ही क्या है, उनकी कथा भी पापो का नाश करने वाली है। जिसकी कथा भी पापो को हरण कर सकती है, उसका स्तोत्र पापो का क्यो विनाश करेगा ? तात्पर्य यह है कि स्तोत्र सूर्य के समान है और कथा प्रभा के समान। अतएव पापो को हरने के लिए कथा ही काफी है। गीता मे कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्य-मेव यो वेत्ति नन्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

अर्थात्— जिस दिव्य दृष्टि से मेरा जन्म और कर्म जानने योग्य है, उस दिव्य दृष्टि से जो मेरे जन्म और कर्म को जान लेता है, वह देह त्याग कर पुनर्जन्म धारण नही करता।

जिनकी कथा से पाप-नाश होता है और फिर जन्म नही लेना पडता, उनकी कथा कैसी होती है, यह भी जान लेना आवश्यक है।

कोई भी लोकोत्तर शक्तिसम्पन्न महापुरुष, यकायक महापुरुष नही बन जाता। आत्मा नित्य है और वह एक भव के पश्चात् दूसरे भव को ग्रहण करता है। दूसरे भव मे पहले भव का शरीर नही रहता मगर सस्कार अवश्य रहते हैं। इस प्रकार एक आत्मा अपने पूर्वभव के सस्कारो के साथ अगला भव ग्रहण करता है और उस भव मे अपने पूर्वकालीन सस्कारो मे वृद्धि करता है, उन्हे अधिक उच्च और पवित्र बनाता है। इस प्रकार क्रमश उच्च और पवित्र वनते हुए सस्कार जिस जन्म मे वहुत विकसित हो जाते है, उसी भव मे आत्मा महापुरुष की पदवी प्राप्त करता है। किसी भी महापुरुष की महत्ता उसके वर्त्तमान्

जीवन की साधना का ही परिणाम नही है, किन्तु भव-भवान्तर की चिरसाधना का फल है।

चाहे भगवान् ऋषभदेव की कथा लो, चाहे किसी दूसरे महापुरुष की, उसे पूर्वजन्म की सहायता प्राप्त होती है। पूर्वजन्म मे उन्होने महान् तप और धर्म का आचरण करके ससार के कल्याण मे भाग लिया है। उस समय उनकी क्रिया जब उत्कृष्ट दशा को पहुच गई, तब उन्होने नवीन जन्म धारण किया। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव को पहचानने के लिए उनके तेरह भवो की कथा देखने की आवश्यकता है। उन्होने ऋषभदेव के भव मे जो महिमा और सिद्धि प्राप्त की है, उसके लिए पहले के बारह भवों मे साधना की थी। तब कही तेरहवे भव मे ऋषभदेव हुए। जो भव्यपुरुष उन कथाओ के साथ अपने जीवन की तुलना करेगा, उनके आदर का अनुशरण करेगा, वह अवश्य ही ससार के जन्म-मरण रूप दु खो से मुक्त होगा।

एक पूर्वभव मे भगवान् ऋषभदेव गाथापति थे। उस समय उनका जीवन ऐसा दिव्य था कि श्रीमन्त होते हुए भी वे गरीबो से भेदभाव नही रखते थे।

आज तो बढिया खाने और बढिया पहनने मे ही श्रीमताई समझी जाती है, लेकिन इस बढ़िया खाने-पहनने के कारण श्रीमतो और गरीबो के बीच एक जबर्दस्त दीवार खडी हो गई है। यही कारण है कि आज वर्गयुद्ध हो रहा है और समाज पगु बन रहा है।

मित्रो! सत्य की खोज करो और सत्य को ही अपनाओ। कथा को सुनकर यह देखो कि मुझमे सत्य

कितना है ? कथा सुनने का यही प्रयोजन है ।

मैं पूछता हू— जो पुरुष बढिया कपडे पहनेगा, वह गरीबो के साथ रहेगा ?

'नही !'

तो सोचिए कि उसकी श्रीमताई गरीबो का साथ देने के लिए है या गरीबो से दूर भागने के लिए है ? बढिया चटकीले कपडे पहन लेने पर गरीबो की तो मानो छूत लगती है ! मगर स्मरण रक्खो, सम्पत्ति होने पर जो गरीबो से दूर भागता है उसकी सम्पत्ति पापरूप हो जाती है । सम्पत्ति मे प्राय यह बात पाई जाती है, इसी कारण सम्पत्ति—परिग्रह—की गणना पाप मे की गई है ।

पाप सोना चाँदी मे नही बैठा है, किन्तु धन की ममता मे फँसकर गरीबो से दूर रहने और गरीबो का रक्त-शोषण करके धन बढाने की तृष्णा मे पाप है ।

कल्पना कीजिए—एक सेठ बग्घी मे बैठा जा रहा है और एक किसान अपनी बैलगाडी मे बैठा जा रहा है । मार्ग मे एक तीसरा गरीव और बेहाल थका हुआ पथिक मिला । वह अगर बग्घी और गाडी मे अपने को बिठा लेने की प्रार्थना करे तो उसे कौन बैठा लेगा ?

'किसान !'

बग्घी वाले को तो वह थका हुआ बटोही भूत-सा दिखाई देगा । लेकिन किसान के दिल मे दया उपजेगी और वह अपनी गाडी मे उसे बिठा लेगा । इन दोनो मे से किसे पुण्यवान् समझना चाहिए ? इसीलिए कहा है—

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवत पावे ।
जाने दया की वात्त सुहावे जी ॥
भारी कर्मी ने अनन्त ससारी,
जारे दया दाय नहिं आवें जी ॥दया०॥

गरीबो और अमीरो के बीच भेदभाव की दीवाल खडी हो गई है, जिससे अमीर लोग गरीबो से अलग रहते है। इस दीवाल को गिराने के लिए ही सत-महात्मा कहते हैं कि गरीबो के अनुकूल रहो, प्रतिकूल मत रहो। अनु-कूल रहने वाला ही पुण्यवान् है।

अमीरो को यह नही सोचना चाहिए कि हमे गरीबों की क्या परवाह है! उनके बिना हमारा कौन-सा काम अटकता है? वास्तव मे अमीर लोग गरीबो की सहायता के विना एक दिन भी नही जी सकते। धर्म तो ऊँची चीज है। पर मैं नैतिक जीवन के लिए ही कहता हू। नैतिक जीवन मे गरीवो की सहायता की पद–पद पर आवश्यकता रहती है। अमीरो की विशाल और सुन्दर हवेलियाँ गरीबो के परिश्रम ने ही तैयार की है, अमीरो का पट्रस भोजन गरीबो के पसीने से ही बना है। अमीरो के वारीक और मुलायम वस्त्र गरीबो की मिहनत के तारो से ही वने है। याद रक्खो, आध्यात्मिक जीवन का पाया नैतिक जीवन है। जिसकी सहायता के विना एक दिन भी काम नही चल सकता उसकी सहयता को भुला देना और यह कहना कि गरीवो के बिना हमारा क्या काम अटकता है, घोर कृतघ्नता है। यह कृतघ्नता नैतिक पतन को सूचित करती है।

जैन शास्त्रो मे पृथ्वी, पानी आदि की दया इसलिए

भी बतलाई गई है कि उनकी सहायता से ही जीवन टिकता है। जिनकी सहायता पर जीवन निर्भर है, समय पर उनकी याद न करना कृतघ्नता है। विवाह के अवसर पर गरीबों का चाहे चूरा हो जावे, लेकिन लोग अमीरो की ही सेवा करते हैं और उनके लिए ही थाल सजाते हैं। पर गरीबों के प्रति ध्यान नहीं देते। यह बडी कृतघ्नता है।

अमीर और गरीब के बीच की दीवाल गिराने के लिए ही शास्त्र की कथाएं हैं। श्रीकृष्णजी ने गरीब बूढे की ईंटे उठवाई तो ऐसा करने से वह दीवाल मजबूत हुई या टूटी ?

'टूटी !'

घर का कोई आदमी बीमार हो जाय तो छैल-छबीले लोगो को वह भी प्यारा नही लगता। ऐसे समय मे गरीब ही सेवा करते हैं। छैल-छबीली बाई को बीमार सासू की सेवा कब अच्छी लगेगी ? बहुत हुआ तो वह किसी नौकरानी को रख देगी, मगर नौकरानी भी तो गरीबिनी ही है। तो फिर दया किस पर होनी चाहिए--गरीबो पर या अमीरो पर ? कौन अधिक दया का पात्र है ?

आप मैनचेस्टर का मलमल पहनने मे अपना गौरव समझते हैं और खादी पहनने मे गौरवहीनता मानते है। तो आपके दिल मे दया कहाँ रही ? जिस दिन आपके दिल मे दया उपजेगी उस दिन आपके शरीर पर बारीक वस्त्र नही रहेगे। भारत की बहुत-सी बहिने विदेशी वस्त्रो पर पिकेटिंग करने के कारण अपने कोमल शरीर पर लाठियाँ और वेत सहन करती है और आप मर्द होकर भी बेपरवाह हैं ? अगर आप पिकेटिंग नही कर सकते

तो कम से कम स्वय तो चर्बी लगे विदेशी वस्त्रो के पहनने का परित्याग कर सकते हैं ? विदेशी वस्त्रो के व्यवसाय का त्याग तो कर सकते है ? मगर आपको तो पैसा चाहिए, देश रहे या डूबे, इस बात की चिन्ता ही क्या है ? धरना देने वाली बहिने जो बुरी तरह मार खा रही है उनकी उस मार–पीट का कारण कौन है ? व्यापारी अगर विदेशी वस्त्र न बेचे और खरीददार न खरीदे तो उन्हे क्यो इतना कष्ट सहन करना पडे ? मगर लोग पैसे के लोभ मे पडकर दया भूल गये है, धर्म को बिसर गये है । आप मर्द है और आपकी माँ–बहिने पापमय विदेशी वस्त्रो का व्यवहार बन्द कराने के लिए मार खा रही है । फिर भी आपको लज्जा नही आती ? यहा तक कि आप उन वस्त्रो का त्याग नही कर सकते । अहकार त्याग कर देश की भलाई के लिए मार खाने वाली बहिनो की तपस्या कम नही है । महारानी देवकी बिना अपराध हथकडी–बेडी पहनकर कारागार मे रही, चन्दनबाला बिना अपराध हथकडी–बेडी मे जकडी भौंयरे मे बन्द रही, अजना ने बिना अपराध घोर अपमान सहन किया, तो क्या इन देवियो के नाम प्रात–स्मरणीय नही हो गये ? जिन देवियो ने घोर सकट सहकर भी सत्य को नही छोडा है, उनमे कैसी शक्ति रही होगी, इस बात पर विचार करो । थोडे दिनो पहले किसी को खयाल ही न होगा कि बहिने इस प्रकार लाठियो की मार खाएँगी, पर सत्य न मालूम कब, किस रूप मे प्रकट होता है ।

बहिनो, अगर आपको अजना, द्रौपदी आदि सतियों की बात याद हो तो आप अपने धर्म का विचार करो ।

अपने धर्म का विचार करने और उसे व्यवहार में लाने से ही चरितकथा सुनने का लाभ मिलेगा ।

आपको चन्दनबाला की कौन-सी पोशाक महत्वपूर्ण मालूम होती है ? देवो द्वारा अपनाई हुई या हथकडी-बेडी के समय की ? चन्दनबाला के जीवन मे एक समय वह था जब उसका सिर मुड़ा हुआ था और हाथ-पैर हथकडियो-बेडियो से उसके जकड़े हुए थे और वह भौयरे मे बँधी पडी थी । दूसरा समय वह था जब देवो ने उसे पोशाक पहनाकर सिहासन पर विराजमान किया था । आपको इन दोनो अवस्थाओं मे से कौन–सी अवस्था अच्छी लगती है ?

'हथकडी—बेडी वाली !'

भाइयो, तप दुर्लभ है । न मालूम उसका तप कितने महत्त्व का था कि उस अवस्था मे भी उसे आनन्द का ही अनुभव हुआ । वह समझती थी कि धर्म की सजा भुगतने मे तो आनन्द ही है ! पश्चात्ताप तो तब हो जब मैं पाप की सजा भुगतूँ !

यह भावना और दया आपमे कहाँ है ? इसीलिए तो अमीरो और गरीबों के बीच दीवाल खडी है । इसी कारण तो अमीर लोग गरीबो पर निर्भर होते हुए भी उनके सुख-दुख की परवाह नही करते ।

परिग्रह मे आदि से ही पाप है । इस पाप को मिटाने के लिए ही महापुरुषो ने परिग्रह के त्याग की कथा बनाई है । श्रीकृष्ण मे ऐसी शक्ति थी कि वे गर्भ मे रहे हुए कस को मार सकते थे । फिर भी वे ग्वालो के साथ रहे, ग्वालो का काम करते रहे, ग्वालो के वस्त्र पहनते रहे ।

इसका उद्देश्य क्या था ? सादगी का महत्त्व प्रकट करने के लिए ही उन्होने ऐसा किया । उन्होने समाज मे बडे समझे जाने वालो का सम्पर्क गरीबों के साथ कर दिया । गरीब–अमीर के बीच की दीवाल तोड दी और यह दिखा दिया कि सादगी मे ही धर्म है । इसी लिए कवियो ने उनके स्तोत्र बनाये हैं । एक कवि कहता है––

मोर मुकुट सिर पर धरें, उर गुंजन की माल ।
वा छवि मेरे उर बसो, सदा विहारीलाल ॥

कवि विहारीलाल कहते है–– मेरे हृदय मे वही वेष बसा रहे जिसमे सिर पर मोर-पख का मुकुट है, गले मे चिर्मियो की माला है और कमर मे लगोटा है ।

कवि ने यहाँ उस रूप की कामना की है जिसके लिए धन की आवश्यकता नही होती । उसने धनिको के वेष की कामना नही की । श्रीकृष्ण ने धनिको और गरीबो के बीच की दीवाल तोडने के लिए ही यह चरित रचा था ।

श्रीमतो और गरीबो के बीच की दीवाल तोडने वाले महापुरुषो मे भगवान् ऋषभदेव सब से प्रथम हैं । उन्होने उस समय के निरुद्यम लोगो से कहा था कि कल्पवृक्ष की आशा छोडकर उद्योगी बनो । उन्होने स्वय कला और विज्ञान द्वारा लोगो को स्वावलम्बी बनना सिखलाया था । इसी से प्रजा स्वतन्त्र जीवन का लाभ लेने वाली बन सकी । उन्होने अपने लम्बे जीवन का एक बडा भाग प्रजा के नैतिक जीवन का सुधार करने मे लगाया । जब वे नैतिक जीवन की शिक्षा दे चुके तो बाद मे उन्होने धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का पाठ पढाया । नैतिक जीवन के अभाव मे धार्मिक जीवन व्यतीत नही किया जा सकता ।

इसी कारण भगवान् ने धार्मिक जीवन की शिक्षा देने से पहले जीवन को नीतिमय बनाने की शिक्षा दी थी। आध्यात्मिक जीवन ऊँचा अवश्य है पर उसका आधार तो नैतिक जीवन ही है।

धन्ना सेठ ने ढिंढोरा पिटवा दिया था कि जिसके पास कपडा, भोजन, पूंजी या सवारी न हो, वह मुझ से ले ले। मेरे साथ जो चलना चाहे, चल सकता है। परदेश में जो खर्च होगा, मेरा होगा और जो आमदनी होगी, कमाने वाले की होगी। ऐसा करने से गरीब–अमीर के बीच की दीवाल टूटी या मजबूत हुई ?

इसलिए मानतुंगाचार्य कहते है—'प्रभो! आपकी कथा का रहस्य समझने वाले के भी पाप धुल जाते हैं।' अगर आप अपने पाप धोना चाहते हैं तो आप भी गरीबो की सुध लीजिए। एक गरीब आपके पास भूख का मारा तडफडाता रहे और आप बादामपाक उडाते रहे, दूसरा कडाके की सर्दी में सिकुडता और काँपता रहे और आपकी पेटियाँ कपडो से भरी पडी रहे, यह कितनी घोर निष्ठुरता है ? ऐसा निष्ठुर व्यक्ति कभी दयाधर्म पा सकता है ?

'नही!'

आश्चर्य की बात तो यह है कि आजकल के कतिपय धर्मगुरु कहलाने वाले लोग भी यह शिक्षा देते है कि तुम तो मौज करो और दूसरे मरते हैं तो उन्हे मरने दो। उनका कथन है कि जो मोटर या बग्घी मे बैठा है वह पुण्यवान है और जो थका हुआ पडा है वह पापी है। पापी अपने कर्म खपाता है। उसे सहायता देकर कर्म खपाने मे बाधा क्यो पहुचाते हो ? कैसी अनोखी शिक्षा है ? ऐसे

पाखडों को चलते भी देखोगे और डूबते भी देखोगे। वास्तविक बात तो यह है कि जिसका नैतिक जीवन पतित है उसका आध्यात्मिक जीवन ऊँचा हो ही नही सकता। अतएव जीवन को नीतिमय बनाओ। हृदय मे दीन-दुखियों के प्रति प्रेम रक्खो, सत्य का आचरण करो, सादगी से रहो और परमात्मा की कथा का स्मरण करो।

अपने सघ को साथ लेकर जब धन्ना सेठ व्यापार के लिए जा रहे थे, तब एक मुनि ने कहा— इस जगल को पार करने के लिए हम भी तुम्हारे साथ चलते हैं। धन्ना सेठ ने कहा— अवश्य चलिए। आपके साथ चलने से बढ-कर बात और क्या होगी। मेरा अहोभाग्य है कि आप साथ चल रहे हैं।

जगल मे सेठ ने अपनें सब साथियो की रक्षा की। सब को अपने खेमे रक्खा। सब की सार-सँभाल की। परन्तु मुनि गुफा मे बैठे थे, इस कारण धन्ना सेठ उनकी सँभाल नही कर सके। इस कारण रात भर उन्हे मुनि की चिन्ता लगी। प्रात काल होते ही सेठ, मुनि के पास पहुचे और आँखों मे आंसू भर कर उनसे क्षमाप्रार्थना करनें लगे। मुनि ने कहा— हम तेरी सहायता से बड़े मजे मे आये हैं। तू चिन्ता क्यों करता है।

इन मुनि की सेवा के प्रभाव से धन्ना सेठ ने तीर्थं-कर गोत्र की नीव डाल दी।

मित्रो ! उनकी यह कथा पाप को हरण करेगी या नही ? आप गरीबों की ओर ध्यान दो और ऐसा उपाय करो कि कोई भूखों न मरे। गरीबों मे आज जो अश-क्तता है वह आप लोगो मे सादगी न होने के कारण है।

आप सादगी को अपनाएँ तो गरीबो की दुर्दशा बहुत कुछ दूर हो सकती है। ऐसा करने पर ही परमात्मा की भक्ति सार्थक होगी। प्रभु की कथा का यही आदेश है। प्राणी-मात्र के सुख के लिए यत्नशील होना और स्वार्थभावना का परित्याग कर देना ही परमात्मा की भक्ति करना है। ऐसा करने वाले निष्पाप और निस्ताप बनते हैं।

बीकानेर,
१३-८-३०

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ॥१०॥

अर्थ हे लोक के भूषण ! हे प्राणियो के नाथ ! आपके वास्तविक गुणो के द्वारा आपकी स्तुति करने वाले भक्त आपके ही समान हो जाते हैं, यह कोई अद्भुत वात नही है । आखिर उस स्वामी से लाभ ही क्या है जो अपने आश्रितजन को अपने समान वैभव वाला नही वना देता है !

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षार जल जलनिधेरसितुम् क इच्छेत् ॥११॥

अर्थ-- प्रभो ! आप टकटकी लगाकर देखने योग्य है । आपको देख लेने के वाद भक्त के नेत्र किसी दूसरे को देखकर सतोष नही पाते । चन्द्रमा की किरणो के समान धवल क्षीरसागर का जल पी लेने के पश्चात् साधारण समुद्र का जल कौन पीना चाहेगा ?

(क)

हे भुवनभूषण ! हे भूतनाथ ! मुझे इस बात से आश्चर्य नही होता कि आपके गुणो का अभ्यास करने वाला, आपके गुणों मे तल्लीन हो जाने वाला, और आपका स्मरण करने वाला आप सरीखा ही हो जाता है। ऐसा होना कोई अद्भुत बात नही है। ससार मे भी देखा जाता है कि लक्ष्मीवान् की सेवा करने वाले को लक्ष्मीवान् अपना-सा बना लेता है। फिर जो तेरा भजन करके तेरी शरण मे आए, वह अगर तेरे ही समान बन जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

समुद्र मे पडे हुए को जब कोई आधार न मिल रहा हो, तब अचानक ही अगर नौका का आश्रय मिल जाय तो उसके आनन्द का पार नही रहता। वह नौका पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। इसी प्रकार भवसागर मे पडे हुए प्राणियो के लिए परमात्मा परम आधार है और भक्तजन इस आधार को पाकर असीम और अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव करते है।

किसी सेठ की सेवा करने पर सेठ सेवक पर प्रसन्न होकर उसके दारिद्रय दूर कर देता है। सेठ की सच्ची सेठाई इसी मे है कि वह अपने उपकारक या सहायक के उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे और उसे अपना-सा बना ले। जो सेठ अपने सेवक की सम्पूर्ण शक्तियो को अपने हित मे प्रयुक्त करता रहता है, उसके द्वारा धन-दौलत, यश, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करता है, किन्तु उस सेवा का

बदला अपनी ओर से उचित रूप मे नही देता, उसे कृतज्ञ या कर्त्तव्यनिष्ठ नही कहा जा सकता। सच्चा श्रीमान् ऐसा नही करेगा।

इसी प्रकार ग्रामस्वामी, देशस्वामी और चक्रवर्ती की सेवा से अधिक-अधिक लाभ होता है। चक्रवर्ती की सेवा करने पर चक्रवर्ती राजा का भी पद दे देता है और चक्रवर्ती भी अपने राज्य की उन्नति की आशा से इन्द्र की सेवा करता है। अर्थात् चक्रवर्ती भी इन्द्र की आशा रखता है और हे प्रभो! इन्द्र भी तेरा दास है। ऐसी स्थिति मे अगर मुझे आप मिल गये तो फिर क्या प्राप्त करना शेष रह गया ?

गरीव लोग सेठ की सेवा करते है और सेठ ग्रामधनी की सेवा करता है। वह जानता है ग्रामधनी ग्राम का स्वामी है। मेरा वैभव उसी के अनुग्रह पर निर्भर है। वह चाहेगा तो रह सकूंगा, नही चाहेगा तो गाव छोडकर भागना पडेगा। ऐसा सोचकर सेठ, ग्रामधनी की सेवा करता है और ग्रामधनी, देशधनी की सेवा करता है। देशधनी चक्रवर्त्ती की आशा रखता है और सोचता है कि चक्रवर्त्ती की कृपा रहने पर ही मैं राजा रह सकता हू। मगर चक्रवर्त्ती भी देव की आशा रखता है। वह समझता है कि मेरा अखड-एकछत्र राज्य दैवीकृपा पर ही निर्भर है। दैवीकृपा से अनायास ही जो कार्य हो जाता है वह दैवीकृपा के अभाव मे वहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी नही हो सकता। इस कारण चक्रवर्त्ती, इन्द्र की आशा रखता है और चक्रवर्त्ती का आराध्य देवराज इन्द्र भी तेरी आराधना मे ही अपनी कृतार्थता समझता है और सव तो

भौतिक लालसा से एक-दूसरे की सेवा करते हैं, परन्तु इन्द्र को भगवान् से क्या लालसा पूरी करनी है ? प्रभो ! इन्द्र किस आशा से तेरी सेवा करता है ?

इन्द्र भगवान् की सेवा करता है, इस बात पर विचार करने से विदित होता है कि इन्द्र बन जाने पर भी और इन्द्र की सेवा करने पर भी आत्मा सनाथ नही हो सकता। इन्द स्वर्ग का स्वामो है, देवगण का राजा है, लोकोत्तार शक्तियो का निधान है, अनुपम वैभव उसे प्राप्त है फिर भी वह सनाथ नही है। जब इन्द्र की आयु पूर्ण हो जाती है और वह अपने पद से च्युत होता है तो उसे आधार देने वाला दूसरा कोई नही है। इन्द्राणी अपने स्वामी की रक्षा नही कर सकती। सामानिक देव, लोकपाल या आत्मरक्षक देव देखते रह जाते हैं, मगर इन्द्र को गिरने से नही बचा सकते। उस समय इन्द्र भी अनाथ हो जाता है। जो अपने कृपाकटाक्ष से एक दिन दूसरे को निहाल कर देता था, काल आने पर उसे कोई बचा नही सकता और न वह आप ही बच सकता है। इसी कारण इन्द्र भी कालविजेता परमात्मा की शरण मे जाता है। परमात्मा की शरण ग्रहण करने के पश्चात् काल का जोर नही चलता।

इस प्रकार इस विशाल विश्व मे एक पर दूसरे की सत्ता चल रही है। परन्तु एक सत्ता वह है जिस पर किसी की सत्ता नही चलती। उस सत्ता का आश्रय समस्त दु खों का अन्त करने वाला है। वह स्वत मगलमती सत्ता अपने आश्रित को मगलमय बना लेती है। वह सत्ता क्या है ?

अनन्त जिनेश्वर नित नमूं,
अद्भुत ज्योति अलेख ।
ना कहिये ना देखिये,
जाके रूप न रेख ।।अनन्त०।।

यहाँ भगवान् अनन्तनाथ को नमस्कार किया गया है । भगवान् को चाहे अनन्तनाथ कहो, चाहे आदिनाथ कहो, बात एक ही है । भक्तामरस्तोत्र मे ही इसका स्पष्टीकरण कर दिया गया है —

त्वामव्यय विभुमचिन्त्यमसख्यमाद्यम्,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनककेतुम् ।
योगीश्वर विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममल प्रवदन्ति सन्त. ।।

अर्थात् हे प्रभो ! सत पुरुप अनेक नामो से तेरी उपासना करते है । कोई तुझे अव्यय (अच्युत) कहता है, कोई विभु, अचिन्त्य, असख्य, आद्य, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनगकेतु आदि नामो से तुझे पुकारता है । मगर तू वास्तव मे एक है । इन सब नामो मे तेरी ही शक्ति व्याप्त है । परमात्मा के वाचक सभी शब्द तेरे ही गुणो पर प्रकाश डालते हैं ।

वह परमात्मशक्ति बडी अद्भुत है । न आँख उसे देख सकती है, न जिह्वा उसे कह सकती है । वहाँ किसी इन्द्रिय की पहुच नही हो पाती ।

प्रश्न हो सकता है—जब वह शक्ति इतनी अगम अगोचर है तो हमे उसका पता किस प्रकार लग सकता है ? हम उसे कैसे ध्यान मे लावे ?

आज सयोगवश शरद्पूर्णिमा है ? ग्रन्थों मे आज की पूर्णिमा की बडी महिमा गाई गई है । ग्रन्थो के कथनानुसार आज वनस्पति मे रस आता है। आज आपके अन्तःकरण मे भी ऐसा रस उत्पन्न होना चाहिए, जिससे लोहा भी कचन वन जाता है । इस रसायन को बनाने के लिए मेरी वात पर ध्यान दो । अगर आपने ध्यान दिया तो रसायन अवश्य बनेगी ।

जो शक्ति आँखो से देखी नही जा सकती और जिसका वाणी द्वारा वर्णन नही हो सकता, उस पर विश्वास हुआ, वह शक्ति आपके ध्यान मे आ गई तो आपके भीतर एक अभूतपूर्व और अद्भुत शक्ति पैदा होगी । वही शक्ति तो रसायन है ! उसे देखकर कह नही सकते फिर भी उसकी सत्ता अखड और अबाधित है । दृश्य शक्ति मे अदृश्य शक्ति काम करती है । उस अदृश्य शक्ति को पहिचान लो तो बस रसायन बन गई । लेकिन उस शक्ति की ओर आपका ध्यान नही जाता । आपकी आत्मा तो इन्द्रियो का खेल देखने मे ही लगी रहती है । उसे उस अदृश्य-सत्ता को पहिचानने का अवकाश नही मिलता । फिर वह ज्ञान मे आवे कैसे ? अदृश्य शक्ति को जानने के लिए एक उदाहरण लीजिए——

एक सेठ कलकत्ता मे है और सेठानी घर पर है । सेठ कलकत्ता मे धन कमाता है और सेठानी बीकानेर मे, अपनी हवेली मे बैठी रहती है । फिर भी सेठ की कमाई मे सेठानी की शक्ति कुछ काम करती है या नही ?

'करती है ।'

सेठानी कमाई के लिए कोई काम करती हो, यह

नही देखा जाता और न सेठानी की शक्ति ही देखी है, फिर कैसे मान लिया कि सेठानी की शक्ति कलकत्ते मे भी अदृश्य रूप मे काम करती है ?

आप यहाँ बैठे है। आपको मालूम नही कि मेरे घर खाने को क्या बना है। लेकिन आप भोजन करने बैठे और मेवे की खिचड़ी आपके सामने आई, जो आपको प्रिय लगी। अब आप विचार कीजिए कि आपकी शक्ति ने मेवे की खिचडी बनाने मे कुछ भाग लिया है या नही ?

लिया है।'

इष्ट गध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्श आदि विषय पुण्य के प्रभाव से प्राप्त होते है। वह पुण्य क्या है ? आपका पुण्य आपकी ही शक्ति है, जिसके द्वारा नाना देशों मे आपके लिए नाना प्रकार के उपभोग के योग्य पदार्थ तैयार होते है। जिस पदार्थ मे आपकी शक्ति ने काम नही किया होगा वह आपको मिल ही नही सकता। मगर देखना तो यह चाहिए कि वह किस प्रकार अपना काम करती है। इन उदाहरणो के आधार से अदृश्य शक्ति को पहचानने का प्रयत्न करो और कहो—

> अनन्त जिनेश्वर नित नमूं,
> अद्भुत ज्योति अलेख।
> ना कहिये ना देखिए,
> जा के रूप न रेख ॥

मैं अनन्तनाथ या आदिनाथ भगवान् की जिस शक्ति के विषय मे कह रहा हू, यह अनन्त है। आपकी शक्ति का अन्त है, मगर उस शक्ति का अन्त नही है। वह काल

से अनन्त है और परिमाण से भी अनन्त है। ऐसी शक्ति कितनी अद्‌भुत होगी, जरा इस बात पर विचार कीजिए। अपने मन को उस शक्ति की ओर खीच ले जाइए।

उस शक्ति की ओर मन की गति किस प्रकार हो सकती है ? इस प्रश्न का उत्तर शब्दो द्वारा देना कठिन नही है, यद्यपि उन शब्दो के अनुसार साधना करने मे कठिनाई हो सकती है। पर वह कठिनाई आरभ मे ही मालूम होगी, आगे नही। आलस्य से यह काम न होगा। वह शक्ति तुम्हारे उद्योग और तुम्हारी निष्ठा मे है। शुद्ध निष्ठा रखकर उद्योग मे लगने से ही उस शक्ति के दर्शन हो सकते है।

भारत मे अगरेजी राज्य के सस्थापक लार्ड क्लाइव के सम्बन्ध मे एक बात सुनी थी। उसने एक बार ढाका के नवाब से मिलने को इच्छा प्रकट की। नवाब ने मिलने का समय दिया और साथ ही कहला भेजा कि तुम्हे नीचे खडा रहना पडेगा। क्लाइव ने उत्तर दिया-- मुझे जहा खडा करोगे वही खडा रह जाऊँगा।

नवाब ने क्लाइव से मिलने की तैयारी की। उसने अपने गुलामो को अच्छी पोशाक पहनाकर कतार मे खडा किया। गुलाम नियमानुसार हाथ बाधकर और सिर नीचा करके खडे हो गये। क्लाइव को नीचे स्थान पर विठलाया गया और नवाब साहब रौब के साथ तख्त पर विराजमान हुए।

नवाब की धारणा थी कि जिसके पास जितने ज्यादा गुलाम हो, वह उतना ही बडा आदमी होता है। अतएव

नवाब ने क्लाइव से पूछा – तुम्हारे बादशाह के यहा कितने गुलाम हैं ?

क्लाइव—गुलाम हैं ही नहीं ।

नवाब—तुम्हारा बादशाह इतना बडा है और गुलाम है ही नही ?

क्लाइव ने अपना विचार पलट कर कहा—नही, हैं तो सही ।

नवाब—कितने हैं ?

क्लाइव—उनकी कोई निश्चित सख्या नही है ।

नवाब—परस्पर विरोधी बाते कैसे कह रहे हो ?

क्लाइव—समझ मे फर्क है, बाते विरोधी नही है ।

नवाब—समझ मे फर्क कैसा ?

क्लाइव—हमारे बादशाह के यहाँ गुलाम तो है, पर जिस्म के नही, दिल के गुलाम है ।

नवाब को कुछ नवीनता मालूम हुई । उसने पूछा—क्या मतलब है ? दिल के गुलाम कैसे होते है ।

क्लाइव—जिस्म का गुलाम गुलामी के बदले मे धन चाहता है और वह तभी तक गुलाम रहता है जब तक उसे रकाबियो मे अच्छा खाना मिलता रहता है । लेकिन दिल का गुलाम ऐसा है कि गुलामी छोड देने के लिए उसके टुकडे-टुकडे कर दिये जाएँ तो भी वह अपने मालिक से नही बदलता । उन्ही गुलामो मे से एक मैं भी हू ।

दीनदयाल दीनबन्धु के ।
खानाजाद कहास्या राज ॥

तन धन प्राण समर्पो प्रभु ने।
इन पर वेगि रिझास्या राज ॥
आज म्हारा सभव जिनजी रा।
हित चित से गुण गास्या ॥राज०॥

परम प्रभु के ऐसे गुलाम बनो तो ससार तुच्छ जान पडेगा और प्राण जाने पर भी स्वामी से विमुख न होओगे। हृदय मे परमात्मा का वास होते ही रस का ऐसा प्रवाह वहने लगेगा मानो शरद्पूर्णिमा के चन्द्र का रस आपके ही हृदय मे आ गया है। मगर विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है।

महाभारत के अनुसार अर्जुन और दुर्योधन श्रीकृष्ण को अपनी-अपनी ओर से युद्ध मे सम्मिलित होने का निमत्रण देने गये थे। कृष्ण उस समय सो रहे थे। उन्हे जगाने का तो किसी मे साहस नही था, अतएव दोनो उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे। अर्जुन मे कृष्ण के प्रति सेवकभाव था, अतएव उसने उनके चरणो की ओर खडा रहना उचित समझा। वह चरणो की ओर ही खडा हो गया। दुर्योधन मे अहकार था। वह सोचता था—मै राजा होकर पैरो की ओर कैसे खडा रह सकता हू ? इस अभिमान के कारण वह कृष्ण के सिर की ओर खडा हुआ। कृष्ण जागे। कोई भी मनुष्य जब सोकर उठता है तो स्वाभाविक रूप से पैरो की ओर वाले मनुष्य के समीप और सिर की ओर वाले ममुष्य से दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त पहले उसी पर दृष्टि पडती है जो पैरो की ओर खडा होता है। इस नियम के अनुसार अर्जुन, कृष्ण के नजदीक हो गये और अर्जुन पर ही उनकी दृष्टि

पहले पडी ।

दुर्योधन पश्चात्ताप करने लगा कि सिर की तरफ क्यो खडा हो गया ! हाय ! मैं पैरो की तरफ क्यो नही खडा हुआ ! अर्जुन, कृष्ण से पहले मिल रहा है । कही ऐसा न हो कि वे उसका साथ देना स्वीकार कर ले । मैंने इतनी दौड-धूप की । कही ऐसा न हो कि मेरा आना वृथा हो जाय !

इस प्रकार सोचकर दुर्योधन ने किसी सकेत द्वारा कृष्ण पर अपना आना प्रकट कर दिया ।

अर्जुन के प्रणाम करने पर श्रीकृष्ण ने आने का कारण पूछा । अर्जुन ने कहा— कौरवो के साथ युद्ध होना निश्चित हो चुका है । अतएव मैं आपको युद्ध का निमन्त्रण देने आया हू ।

श्रीकृष्ण— मुझे जो आमत्रित करे, मै उसी के यहाँ जाने को तैयार हूं । लेकिन दुर्योधन भी आया है । उसे भी निराश करना उचित नही होगा । इसलिए एक ओर मैं हू और दूसरी ओर मेरी सेना है । दोनो मे से जिसे चाहो, पसद कर लो ।

अर्जुन को श्रीकृष्ण पर विश्वास था । उसने कहा— मै आपको ही चाहता हू ।

अर्जुन की माँग सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ । वह मन मे सोचने लगा—मेरा भाग्य अच्छा है, इसी कारण तो अर्जुन ने सेना नही मागी । युद्ध मे तो आखिर सेना ही काम आएगी । अकेले कृष्ण क्या करेगे ?

अर्जुन के बाद दुर्योधन की बारी आई । उससे भी

आने का प्रयोजन पूछा गया। दुर्योधन ने भी यही कहा कि मैं युद्ध का निमत्रण देने आया हू। श्रीकृष्ण ने कहा— ठीक है। एक ओर मैं और दूसरी ओर मेरी सेना! अर्जुन ने मुझे माग लिया है। तुम क्या चाहते हो ?

दुर्योधन मन में सोच रहा था कि मैं अकेले कृष्ण को लेकर क्या करूँगा ? मुझे तो सेना चाहिए जो काम आएगी। मगर प्रकट रूप मे वह ऐसा नही कह सका। उसने कहा— जिसे अर्जुन ने मांग लिया है उसे मागने से क्या लाभ ? मागी हुई चीज को फिर मांगना क्षत्रियो का काम नही है, अतएव आप अपनी सेना मुझे दे दीजिए।

कृष्ण बड़े चतुर थे। दुर्योधन की समझ पर मन ही मन वह हँसे और सोचने लगे— दुर्योधन को मुझ पर विश्वास नही है, मेरी सेना पर विश्वास है! आखिर उन्होने कहा— अर्जुन मैं तुम्हारा हूं और दुर्योधन! सेना तुम्हारी है।

अर्जुन को कृष्ण पर और दुर्योधन को सेना पर विश्वास था। फल क्या हुआ ? गीता के अन्त मे कहा है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

सजय धृतराष्ट्र से कहते हैं—आप युद्ध के विषय में क्या पूछते है ? यह निश्चित समझिए कि जिस ओर योगेश्वर कृष्ण और धनुर्धर अर्जुन है, विजय उसी पक्ष की होगी। विरोधी पक्ष को विजय मिलना असभव है।

गीता की आलकारिक भाषा मे उलझा रहने वाला यही समझेगा कि गीता लडाई के लिए उत्साहित करने

वाली पुस्तक है। लेकिन अलकारो के आवरण को दूर करके उसके तथ्यो को समझते वाला ही उसके मर्म को समझ सकता है। गीता अगर सिर्फ महाभारत युद्ध के लिए ही थी तो अब किस काम की ? और लडाई कराने वाली पुस्तक को हाथ मे लेने की आवश्यकता ही क्या है ? मगर वात ऐसी नही है। सम्यग्दृष्टि के साथ उसे समझने का प्रयत्न करने पर उसमे कई खूबिया मिलती हैं।

शास्त्र वह है जिसके सुनने पर आत्मा मे नवीन ज्योति जागृत होती है। जिसके सुन लेने पर भी नवीन ज्योति नही जागती, उसे सुनो भले ही, पर ज्योति जागने पर कुछ निराली ही वात होती है।

गाधीजी ने गीता की अन्तिम टिप्पणी मे लिखा है— योगेश्वर कृष्ण का अर्थ है, अनुभवसिद्ध शुद्ध ज्ञान और अर्जुन का आशय है— उस शुद्ध ज्ञान के अनुसार की जाने वाली क्रिया। थोथा ज्ञान काम का नही। थोथी क्रिया भी निकम्मी है। अनुभवसिद्ध शुद्ध ज्ञान से युक्त शुद्ध क्रिया ही सुफलदायिनी होती है। जहाँ दोनो का समन्वय है, वहाँ सिद्धि हाथ वाधे खडी रहती है।

श्रीकृष्ण ने कहा था—– हम शस्त्र नही उठाएँगे, केवल ज्ञान देंगे। इसका अर्थ यही है कि ज्ञान प्राप्त करके क्रिया करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

हत ज्ञानं क्रियाहीनं, हता चाज्ञानिना क्रिया।

क्रिया से शून्य ज्ञान और ज्ञान से शून्य क्रिया दोनो वेकार है। साराश यह है कि उस अदृश्य शक्ति पर विश्वास रखकर निष्काम भाव से, ज्ञानयुक्त क्रिया करोगे तो वेडा पार हुए विना नही रहेगा।

(ख)

आचार्य मानतुंग कहते है-- हे भुवनभूषण ! मुझे इस बात मे कोई आश्चर्य नही जान पडता कि आपकी स्तुति करने वाला आप जैसा बन जाता है। ऐसा होना तो स्वाभाविक है। या तो अनहोनी बात हो जाने पर आश्चर्य होता है या जिससे जो काम होना सभव न प्रतीत होता हो, फिर भी वह उसे कर डाले। विनीत पुत्र पिता की और पतिव्रता स्त्री पति की सेवा करे तो आश्चर्य नही। आश्चर्य तो तब है, जब अविनीत पुत्र पिता की और असती स्त्री पति की सेवा करे ! इस कथन के अनुसार परमात्मा के गुणो का स्तवन करने से, स्तवन करने वाला अगर स्वय परमात्मा बन जाता है तो आश्चर्य ही क्या है !

प्रश्न किया जा सकता है-- परमात्मा अनादि और अनन्त है। ऐसी स्थिति मे परमात्मा के गुणो का स्तवन करने वाला परमात्मा किस प्रकार बन सकता है ? क्या आत्मा मे ऐसे गुण हैं कि वह परमात्मा के साथ एकाग्रता साध कर परमात्मा बन जाए ? आत्मा और परमात्मा जब अलग-अलग हैं तो आत्मा का परमात्मा बन जाना अचरज की बात क्यो नही है ?

जब तक वस्तु का ठीक-ठीक स्वभाव मालूम नही होता तब तक भ्रम बना ही रहता है। परन्तु गम्भीर विचार करके वस्तुस्वरूप समझ लेने पर भ्रम हट जाता है। आत्मा और परमात्मा के विषय मे पहली बात यह समझ लेना आवश्यक है कि वास्तव मे दोनो मे कोई मौलिक अन्तर नही है। मैं अनेक बार कह चुका हू कि आत्मा

जब तक आवरणों से लिपटा है, जब तक उसकी अनन्त शक्तियाँ कुण्ठित हैं, तब तक वह आत्मा है। आत्मा की सम्पूर्ण मलीनता हट जाती है, आत्मा अपनी शुद्ध दशा में आ जाता है, तब उसमे 'परम' विशेषण लगा दिया जाता है। अर्थात् आत्मा परम–आत्म–परमात्मा कहलाने लगता है। परमात्मा को अनादि मानना भ्रमपूर्ण है। अगर आत्मा लाख प्रयत्न करने पर भी परमात्मा नही बन सकता तो उसका पुरुपार्थ व्यर्थ ही सिद्ध होता है। अतएव यह निश्चित है कि आत्मा परमात्मा के प्रति जब एकाग्र बन जाता है तो वह स्वय परमात्मा का रूप धारण कर लेता हैं।

आप भोजन करते हैं। भोज्य पदार्थो मे किसी का नाम रोटी है, किसी का नाम भात है, किसी का और कुछ। इन भोज्य वस्तुओ को जब आप ग्रहण करते है तो वह शरीर का रूप धारण कर लेती हैं। पहले जो आहार के रूप मे थी वही अब शरीर के रूप मे परिणत हो जाती हैं। शरीर मे भी उनके नाना रूप बनते हैं, जैसे रक्त, मज्जा, हड्डी आदि। यह सब धातुएँ अन्न से ही बनी हैं। अन्न में यह जो विलक्षण परिवर्तन हुआ है सो आपकी चैतन्यशक्ति के प्रताप से ही हुआ है। मुर्दे के पेट मे रोटी ठूंस दी जाय तो वह सड-गल जायगी। उससे रस, रक्त आदि नही बनेगा। चैतन्य शक्ति के सयोग से अन्न के द्वारा रक्त आदि धातुओ के निर्माण का कार्य प्रतिदिन, यहाँ तक कि प्रतिक्षण होता रहता है। अपनी चेतना मे ऐसी अद्-भुत शक्ति है। मगर हम लोग इसका विचार ही नही करते कि चेतन आत्मा मे कैसी-कैसी शक्तियाँ भरी हे। रोटी से रक्त बनता है, इस बात को छोड कर अब आगे

की बात पर विचार कीजिए । यह देखिए कि उस रोटी से आत्मा मे कौन-कौन-सी शक्तियाँ निखरती है । दूध का आहार नही किया गया हो और वह पात्र मे पडा हो तो जगत् के किसी भी वैज्ञानिक मे यह शक्ति है कि वह उसे आँख के रूप मे परिणत कर सके ? जिन आँखो से आप देखते है, उन्हे बनाने की किसी मे ताकत है ? लेकिन आपका चिदानन्द नित्य ही बनाता रहता है ।

जब आप चैतन्य शक्ति के द्वारा जड से भी सब काम करा सकते है, जड भी आपकी चैतन्य शक्ति से मिल जाता है और उस जड को भी आपके चैतन्य से शक्ति मिलती है । तो फिर क्या आश्चर्य है कि आत्मा, परमात्मा से लगकर परमात्मा बन जाता है ? जब उस अन्न को आपकी आत्मा शक्ति प्रदान करती है तो आत्मा को परमात्मा शक्ति क्यो नही देगा ?

मित्रो ! ससार की समस्त शक्तियो से आपकी चैतन्य शक्ति बढकर है और अलौकिक है । जड शक्तियो को एकत्रित करके अगर आप चैतन्य शक्ति से तोलेंगे तो पता चलेगा कि अन्य शक्तियाँ चैतन्य शक्ति के सामने कुछ भी नही हैं— नगण्य हैं ।

डाक्टर नकली आँख बनाते हैं, लेकिन उससे दिखाई नही देता । परन्तु जिन आँखो से आप देख सकते हैं, जिनकी उत्पत्ति स्वाभाविक रूप से, अन्न से, या माता-पित के रक्त से हुई है, जो आँखे आपकी आन्तरिक शक्ति से बनी हैं, उन सरीखी आखे कोई बना सकता है ?

'नही !'

चीटी और रेल मे से किसकी शक्ति अधिक है ?

शक्ति वैसे ही बढ जाती है, जैसे तीन इकाइयाँ मिल जाने पर एक सौ ग्यारह हो जाते है। इन तीनो के होने पर भी अगर विवेक हुआ तो वह इन्हे ठीक रास्ते पर लगा देता है। अगर अविवेक हुआ तो मत पूछिये बात ! फिर तो अनर्थ की सीमा नही रहती।

टाल्सटाय को तीनो शक्तिया प्राप्त थी और ऊपर से अविवेक था। इस कारण उसने कुवारी कन्या को भ्रष्ट कर दिया। कन्या गर्भवती हो गई। घर वालो ने सगर्भा समझ कर उसे घर से निकाल दिया। कुछ दिन तक तो वह इधर-उधर भटकती रही, मगर दूसरा मार्ग न मिलने से उसने वेश्यावृत्ति अङ्गीकार कर ली। कहा है—

विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपात· शतमुख·।

जो एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है उसका पतन होता ही चला जाता है। कोई भी स्त्री जब पतित होती है और उसकी पवित्रता मलीनता के रूप मे परिणत हो जाती है तो फिर उसके पतन का ठिकाना नही रहता। वेश्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। वेश्या किन-किन नीच कार्यों मे प्रवृत्ति नही करती, यह कहना कठिन है। इस वेश्या ने भी किसी धनिक को अपने चगुल मे फास लिया और धन के लोभ मे पडकर उसे मार डाला। पुलिस ने पता लगा लिया और वेश्या अदालत मे पेश की गई। सयोगवश उस अदालत का न्यायाधीश वही टाल्सटाय था, जिसने उसे भ्रष्ट किया था और जिसकी बदौलत उसे वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा था। वेश्या ने तो उसे नही पहचान पाया, मगर वह वेश्या को पहचान गया। टाल्सटाय ने उस वेश्या को धैर्य बन्धाकर

हत्या के विषय में पूछा। वेश्या ने हत्या करने का अपराध स्वीकार करते हुए कहा— 'मुझे एक पापी ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया। उस समय मैं अबोध थी और उस पाप के परिणाम को नही समझ सकी थी। इसी कारण मै उसके चगुल मे आ गई। मैं गर्भवती हुई। घर से निकाली गई। निरुपाय होकर मैंने वेश्यावृत्ति स्वीकार कर ली। एक दूसरी वेश्या की बातों मे आकर धन के लिए मैंने इस धनिक की हत्या की।'

वेश्या का बयान सुनते-सुनते टाल्सटाय घबरा उठा। उसकी अन्तरात्मा प्रश्न करने लगी— इस हत्या के लिए कौन उत्तरदायी है वेश्या या मैं ? वास्तव मे इस पाप के लिए यह अपराधिनी नही है। अपराधी मै हूं।

लोग अपने अपराधों को छिपाना जानते हैं, उन्हे स्वीकार करना नही आता। इस अविद्या से आज ससार पतित हो रहा है।

टाल्सटाय अपने पाप की भीषणता का विचार करके इतने घबराये कि पसीने से तर हो गये। पास मे बैठे हुए दूसरे न्यायाधीश उसकी यह दशा देखकर आश्चर्य करने लगे। टाल्सटाय की परेशानी और घबराहट का कारण समझ मे नही आया। टाल्सटाय ने अपना आसन छोड दिया। उनकी जगह दूसरा जज अभियोग का विचार करने के लिए बैठा। टाल्सटाय ने जाते हुए अपने स्थानापन्न जज से कहा— किसी भी उपाय से इस वेश्या को फासी से बचा लेना।

टाल्सटाय एकान्त मे जाकर जी भर रोये और अपने

'रेल की !'

क्योकि आप समझते हैं कि रेल सवारी का काम देती है और हजारो मन बोझ खीचती है लेकिन चीटी तो बेचारी चीटी ही रही ! लेकिन यह उत्तर देते समय आपने अपनी बुद्धि का ठीक उपयोग नही किया । वास्तव मे जो शक्ति चीटी मे है वह रेल मे कदापि नही हो सकती । रेल जड़ है । वह घुमाने से घूमती है, चलाने से चलती है । उसे चलाने के लिए पटरी, ड्राइवर आदि की आवश्यकता होती है और इजिनियर उसे बनाता है । चीटी बिना किसी की सहायता के स्वय ही दीवाल पर चढ जाती है और उतर जाती है । क्या रेल इस प्रकार चढ़-उतर सकती है ?

'नही !'

तो फिर विचार करना चाहिए कि चीटी और रेल मे स्वतन्त्रशक्ति सम्पन्न कौन है ? आप परतत्रता के सस्कारों मे पडकर स्वतन्त्रता को भूल गये है । मगर आप विचार करेंगे तो चीटी के सामने रेल तुच्छ दिखाई देगी । चीटी क्या-क्या करती है, किस-किस प्रकार से कैसी-कैसी बातो का पता लगाती है और किस प्रकार सगठित होकर कार्य को सम्पादित करती है, इत्यादि बातो पर विचार करेंगे तो चीटी के सामने मनुष्य को भी लज्जित हो जाना पडेगा ।

कहने का आशय यह है कि जब दूध का खून आदि बन जाता है तो यह सिद्ध है कि आत्मा मे शक्ति है । प्रश्न यही है कि उस शक्ति का उपयोग कहाँ किया जाय ? इस सम्बन्ध मे विद्वानो और शास्त्रकारो का मत है कि जड पदार्थों के प्रति जो अहकार है, उसे हटा लिया जाय और

आत्मा की समस्त शक्ति उसे ऊर्ध्वगामी बनाने में ही लगाई जाय । ऐसा करने से आत्मा की शक्ति बढ़ेगी और वह परमात्मा बन जायगा ।

कल एक सज्जन (श्री रामनरेश त्रिपाठी) के सामने मैंने टाल्सटाय का जिक्र किया । तब उन्होंने उसके जीवन की एक बात मुझे सुनाई । उसके पतित जीवन का उत्थान किस प्रकार हुआ, यह दिखलाने के लिए ही मैं उस घटना का उल्लेख कर रहा हू । टाल्सटाय का पतन इतना अधिक हो चुका था कि उसके कुकृत्यो की पराकाष्ठा हो चुकी थी । शायद ही कोई कुकर्म शेष रहा होगा, जिसका टाल्सटाय ने सेवन न किया हो । ऐसी पतित आत्मा एक वेश्या की घटना से जागृत हो उठी ।

एक सुन्दर कुवारी कन्या को टाल्सटाय ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया था । वह उस समय युवक तो था ही, धन भी उसके पास चालीस लाख रूबेल का था और साथ ही सत्ता भी प्राप्त थी । एक रूबेल करीब डेढ रुपये के बराबर माना जाता है । टाल्सटाय राजघराने मे जन्मा था, अतएव अधिकार भी उसे प्राप्त था ।

> यौवन धनसम्पत्ति. प्रभुत्वमविवेकिता ।
> एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ?

जवानी, धन, अधिकार और अविवेक मे से कोई एक भी अनर्थ का कारण हो जाता है । जहाँ चारों मिल जाएँ वहाँ तो कहना ही क्या है ? यह चाण्डाल-चौकडी सभी अनर्थों का कारण बन जाती है । प्रथम तो युवावस्था को ही शान्तिपूर्वक बिताना कठिन है । फिर ऊपर से धन-सम्पत्ति और अधिकार मिल जाय तो उसकी अनर्थकारी

शक्ति वैसे ही बढ जाती है, जैसे तीन इकाइयाँ मिल जाने पर एक सौ ग्यारह हो जाते है। इन तीनो के होने पर भी अगर विवेक हुआ तो वह इन्हे ठीक रास्ते पर लगा देता है। अगर अविवेक हुआ तो मत पूछिये बात! फिर तो अनर्थ की सीमा नही रहती।

टाल्सटाय को तीनो शक्तिया प्राप्त थी और ऊपर से अविवेक था। इस कारण उसने कुवारी कन्या को भ्रष्ट कर दिया। कन्या गर्भवती हो गई। घर वालो ने सगर्भा समझ कर उसे घर से निकाल दिया। कुछ दिन तक तो वह इधर-उधर भटकती रही, मगर दूसरा मार्ग न मिलने से उसने वेश्यावृत्ति अङ्गीकार कर ली। कहा है—

विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपात. शतमुख.।

जो एक बार विवेक से भ्रष्ट हो जाता है उसका पतन होता ही चला जाता है। कोई भी स्त्री जब पतित होती है और उसकी पवित्रता मलीनता के रूप मे परिणत हो जाती है तो फिर उसके पतन का ठिकाना नही रहता। वेश्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। वेश्या किन-किन नीच कार्यों मे प्रवृत्ति नही करती, यह कहना कठिन है। इस वेश्या ने भी किसी धनिक को अपने चगुल मे फास लिया और धन के लोभ मे पडकर उसे मार डाला। पुलिस ने पता लगा लिया और वेश्या अदालत मे पेश की गई। सयोगवश उस अदालत का न्यायाधीश वही टाल्सटाय था, जिसने उसे भ्रष्ट किया था और जिसकी बदौलत उसे वेश्यावृत्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पडा था। वेश्या ने तो उसे नही पहचान पाया, मगर वह वेश्या को पहचान गया। टाल्सटाय ने उस वेश्या को धैर्य बन्धाकर

हत्या के विषय में पूछा। वेश्या ने हत्या करने का अपराध स्वीकार करते हुए कहा— 'मुझे एक पापी ने धन का लोभ देकर भ्रष्ट किया। उस समय मैं अबोध थी और उस पाप के परिणाम को नही समझ सकी थी। इसी कारण मै उसके चगुल मे आ गई। मैं गर्भवती हुई। घर से निकाली गई। निरुपाय होकर मैंने वेश्यावृत्ति स्वीकार कर ली। एक दूसरी वेश्या की बातों मे आकर धन के लिए मैंने इस धनिक की हत्या की।'

वेश्या का बयान सुनते-सुनते टाल्सटाय घबरा उठा। उसकी अन्तरात्मा प्रश्न करने लगी— इस हत्या के लिए कौन उत्तरदायी है - वेश्या या मैं ? वास्तव मे इस पाप के लिए यह अपराधिनी नही है। अपराधी मैं हूं।

लोग अपने अपराधों को छिपाना जानते हैं, उन्हे स्वीकार करना नही आता। इस अविद्या से आज ससार पतित हो रहा है।

टाल्सटाय अपने पाप की भीपणता का विचार करके इतने घबराये कि पसीने से तर हो गये। पास मे बैठे हुए दूसरे न्यायाधीश उसकी यह दशा देखकर आश्चर्य करने लगे। टाल्सटाय की परेशानी और घबराहट का कारण समझ मे नही आया। टाल्सटाय ने अपना आसन छोड दिया। उनकी जगह दूसरा जज अभियोग का विचार करने के लिए बैठा। टाल्सटाय ने जाते हुए अपने स्थानापन्न जज से कहा— किसी भी उपाय से इस वेश्या को फासी से बचा लेना।

टाल्सटाय एकान्त मे जाकर जी भर रोये और अपने

अपराध के लिए पश्चात्ताप करने लगे। वह सोचने लगे—इस वेश्या के समस्त पापो का कारण मै ही हू। वेश्या पापिनी नही, मैं पापी हू। मैंने ही इसे पापकार्य में प्रवृत्त किया है। ईश्वर का उपदेश दूसरी जगह नही, उन बधुओ से ही मिल सकता है, जिन्हे हमने हानि पहुचाई है, वे हमारे विषय मे क्या कहते होगे? इस वेश्या ने यथार्थ ही कहा है।

अदालत ने वेश्या को साइबेरिया भेज दिया। साइबेरिया रूस का वह भाग है जो वहाँ का काला पानी समझा जाता है और जहाँ शीत अधिक पडता है।

टाल्सटाय सोचने लगे— वेश्या को तो दड मिल गया। पर असली अपराधी बच गया। मगर दूसरे की निगाहो से बच गया तो क्या हुआ, मैं अपनी निगाह से कैसे बच सकता हू? टाल्सटाय ने साइबेरिया के अधिकारियो से मिल-जुल कर उस वेश्या को सहायता पहुचाना आरम्भ किया। उसने यह भी प्रबन्ध कर लिया कि वेश्या के समाचार उसे मिलते रहे। यद्यपि टाल्सटाय उसकी यथायोग्य सहायता कर रहा था, किन्तु किसी के पूछने पर वह यही उत्तर देती थी कि एक दुष्ट ने मुझे भ्रष्ट कर दिया था और उसी पापी का पाप मै यहाँ भोग रही हू।

वेश्या के यह उद्गार टाल्सटाय को मालूम होते रहते थे। दूसरा होता तो कह सकता था—क्या मैं अकेला ही पापी हू? उसने भी तो पाप किया था। उस पापिनी की मैंने जान बचाई और सहायता भी कर रहा हू, इतने पर भी वह ऐसा कहती है! लेकिन इस घटना से टाल्सटाय की आँखे खुल चुकी थी। वह उस वेश्या की बाते सुनकर

पश्चात्ताप करते और उसकी अधिकाधिक सहायता करते थे । वह सोचते— मेरा ही पाप उसके पास पहुचकर ऐसा कहला रहा है । वह मुझे अपशव्द नही कहती वरन् मगल-उपदेश दे रही है । धीरे-धीरे टाल्सटाय के जीवन मे आमूल परिवर्त्तन हो गया ।

सन्देह किया जा सकता है कि कही गालियो से या वेश्या से भी उपदेश मिल सकता है ? इसका उत्तर यही है कि हम सब मे और वेश्या मे मूल तत्त्व तो एक ही है । मगर उसे समझने के लिए गहराई मे घुसना पडता है । इसी प्रकार आत्मा और परमात्मा मे भी मूल तत्त्व समान है । उसे खोज लेने, उस तक पहुचने और प्राप्त करने के लिए जिस उपाय की आवश्यकता है, वह आचार्य मानतु ग ने प्रकट कर दिया है ।

मित्रो ! आप लोग दूसरो की बुराई देखना छोडकर अपनी बुराइयॉ देखो । यह देखो कि आपने दूसरो को पतित ही किया है या किसी का उत्थान भी किया है ? इस बात पर विचार करने से आपका उत्थान होगा । ईश्वर दूर नही है । जिनको तुमने पतित किया है, उनके अन्त करण से निकलने वाली ध्वनि अपने कानो से सुनो और सोचो कि वह तुम्हारे विषय मे क्या कहते है ?

टाल्सटाय ने वेश्या को भ्रष्ट किया था । अगर आपके जीवन मे ऐसा कोई काला धव्वा नही है तो आप भाग्यशाली है ! लेकिन दूसरे पदार्थों को तो आप भ्रष्ट करते ही है । यह कपडे जव तक आपने नही पहने थे, पवित्र माने जाते थे, मगर आपके पहन लेने पर यह निर्मा-ल्य हो गये । इसी प्रकार आप स्वादिष्ट और सुगधित

भोजन पेट में डालते है । मगर पेट मे पहुंचकर उसकी क्या स्थिति हो जाती है ? क्या आप पवित्र वस्तु को अपवित्र करने के लिए ही पैदा हुए है ? मित्रो ! दूसरे के कल्याण मे अपना कल्याण मानने से आत्मा का उद्धार होने मे देर नही लगती । इसलिए शास्त्र मे कहा गया है--

परोपकाराय सता विभूतयः ।

अर्थात्-- सत्पुरुषो की विभूतियाँ परोपकार के लिए होती हैं ।

टालसटाय ने धीरे-धीरे ही सही, पर अपनी सम्पत्ति किस प्रकार परोपकार मे लगाई, यह देखने योग्य है ।

आप सदा माल खाते है । आपके खाने के समय एक दिन कोई भूखा आ गया और आपने उसे थोड़ा-सा दे दिया तो बुरा नही है, पर ऐसा करने मे आपकी कोई विशेषता भी नही है । विशेषता तो तब है जब आप इस बात का विचार करे कि- 'यह भूखा क्यो मर रहा है ? एक जून का भोजन तो मैंने दिया है, पर इससे क्या इस की दरिद्रता जीवन भर की दूर हो जायगी ? इसका यह दुःख किस प्रकार दूर हो सकता है ? अगर आप इस प्रकार विचार करेंगे और आपके हृदय मे थोडी-बहुत भी दयाभावना होगी तो आपका खाना-पीना छूट जायगा और उसका दुःख दूर करने की चिन्ता लग जायगी । इसी प्रकार विचार कर बडी-बडी ऋद्धि वाले अपनी ऋद्धि छोड देते हैं । धन्नाजी बत्तीस कोटि दीनारो का त्याग करके मुनि बने थे । मुनि होने के बाद वे ऐसा भोजन करते थे जैसा गरीब से गरीब भी करना पसद नही कर सकता । आज

यह बाते आपको अद्भुत मालूम होती हैं और आपकी कल्पना मे भी नही आती, लेकिन जैन कथाओ पर विचार करो कि वे क्या सन्देश देती हैं ? उनसे क्या परिणाम निकलता है ? बत्तीस कोटि दीनारों के स्वामी का भोजन कैसा रहा होगा ? और अब वही दो दिन के बाद तीसरे दिन भोजन करते हैं और वह भी रूखा-सूखा, नीरस, बचा-खुचा, जिसे भिखारी भी खाना पसद न करे। यह बात आज कल्पना मे भी आती है ? थोडी देर के लिए इसे कल्पना ही मान लो, फिर भी टालसटाय आदि के सिद्धातो पर दृष्टि डालते हुए विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह कल्पना भी कितनी सहृदयतापूर्ण, सत्य, शिव, सुन्दर और बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण है। लेकिन एक बात बात आप ध्यान मे रखिए। कल्पना किसी सर्वथा असत् पदार्थ की नही की जाती। जो वस्तु किसी अ श मे विद्यमान होती है, जिसका किसी रूप मे सिलसिला चालू होता है, उसी की कल्पना की जाती है। कल्पना के लिए कोई आधार तो होना ही चाहिए। निराधार कल्पना सभव नही है। धन्ना (धन्यकुमार) मुनि के इस चरित से प्रकट होता है कि उस समय अनेक महात्माओ ने आश्चर्यजनक सादगी धारण की थी।

राम ने जनक के घर और अपने घर कैसे-कैसे बढिया भोजन किये होंगे ? परन्तु वनवास के समय वे अपने साथ कुछ ले गये थे ?

'नही।'

उन्होने वन मे खट्टे-मीठे कटुक-कसैले वनफल खाये थे। उन फलों को पकाने वाली सीता थी और लाने वाले

लक्ष्मण थे। क्या आज के वनिक लोग इस प्रकार का जीवन व्यतीत कर सकते हैं ? आज तो ऐसी स्थिति की कल्पना मात्र से ही लोगो का गला सूखने लगता है !

राणा प्रताप अठारह वर्ष तक अपनी रानी और अपने बाल-बच्चों के साथ वन मे भटकते रहे। जगली अन्न और फलो से गुजारा करते रहे। उस रूखे-सूखे भोजन के समय भी जब शत्रु आ पहुचते तो भोजन त्याग कर उनका सामना करते रहे। आज के लोग भोगो के कीडे बन रहे हैं, इसी से उन्हे यह घटनाएँ कल्पित मालूम पड़ती है।

रामचन्द्र को वन के कटुक फल क्यो अच्छे लगे थे ? क्या कारण था कि भरत और कैकेयी के अयोध्या लौटने के आग्रह को ठुकराकर उन्होने वनवास के कष्टो को स्वेच्छापूर्वक अगीकार किया ? राम समग्र भारत के समक्ष एक आदर्श उपस्थित करना चाहते थे। इसीलिए उन्होने हँसते-हँसते सकटो का सामना किया। आज आप लोग चाहे जितनी कायरता दिखलाएँ, मगर इस भारतभूमि पर उन महात्माओ के चरण पड़ चुके हैं। अतएव भारत मे कब कौन-सी शक्ति आ जाएगी, यह नही कहा जा सकता।

जैसे टाल्सटाय ने विचार किया था कि इस बाई को विगाडने वाला कौन है, उसी प्रकार राम भी विचारते थे कि मेरी माता के पवित्र हृदय को बिगाडने वाला कौन है ?

मैं आपसे प्रश्न करता हू कि हिन्दुस्तान को बिगाडने वाला कौन है ? अगर आप परावलम्बी जीवन का त्याग कर दे, तो स्वतन्त्रजीवी बनें, फिजूल के खाने-पीने और

पहनने-ओढने के चक्कर में न पडे तथा अपने कर्त्तव्य का विचार कर पालन करे तो देश मे पाप आ सकता है ?

'नही !'

कौन इस बात को अस्वीकार कर सकता है कि हमारे कर्त्तव्य न पालने से ही देश मे पाप आ घुसा है ?

राम ने विचार किया कि माता कैकयी के मन में यह भेदभाव क्यो आया कि राम हमारा बेटा नही है, भरत हमारा बेटा है, राम को राज्य मिलेगा तो कौशल्या प्रसन्न होगी और भरत को राज्य मिलेगा तो मैं प्रसन्न होऊँगी ।

आप कैकयी को बुरी कह देने मे देर नही लगाते, मगर राम ने उसे बुरी क्यो नही कहा, अगर यह समझ ले तो आप का दु:ख ही मिट जाय । जिस दिन ससार राम के इस कार्य का मर्म समझ लेगा उस दिन ससार स्वर्ग बन जायगा । राम अगर राम सरीखे ही न होकर जैसा आप सोचते हैं वैसे हो तो उनके राज्य को छीनने की किसी मे शक्ति नही थी । कैकयी को छोडकर सभी उनके पक्ष मे थे । राम कह सकते थे— 'तुम स्त्री हो । घर का काम सभालो । राज्य हमारा है और हमारा ही रहेगा ।' पर उन्होने ऐसा नही कहा ।

राम अगर भरत के लिए अपने अधिकार का राज्य न छोडते और अयोध्या मे ही मौज उडाते रहते तो आज उनका नाम कौन लेता ? मगर उन्होने कैकयी के हृदय को पहचाना और उसमे पैदा होने वाली दुई को भी समझ लिया । वह कहने लगे— जिस घर मे मैं पैदा हुआ हूं

उस घर मे माता के हृदय में इस प्रकार के विचार उत्पन्न होना मेरा दुर्भाग्य है। माता की यह दुर्भावना मेरी तपस्या से ही दूर होगी। यहाँ के राज्य का कार्य तो भरत सभाल ही लेगा, मगर ससार की शुद्धि का काम मुझे ही करना होगा। अगर मैंने सादगी धारण न की, गरीबों के योग्य वस्त्र न पहने और गरीबो जैसा भोजन न किया तथा राज-महल को न त्यागा तो मेरे द्वारा गरीबो का कल्याण न होगा।

इन महान् आदर्शों पर ही टाल्सटाय आदि के विचार वने है। लेकिन हमारा देश कितनी पतन-अवस्था मे पहुच गया है कि इन कथाओ को ही असभव मानता है !

राम को अगर रावण का पराजय ही करना अभीष्ट होता तो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वन मे जाने की क्या आवश्यकता थी ? अयोध्या मे रहते हुए ही उसे परा-स्त करने की तैयारी वे कर सकते थे। अयोध्या मे सेना सजाकर रावण पर चढाई कर सकते थे और उसे जीत सकते थे। फिर ऐसा न करके वन मे जाकर नगे पैर घूमने, वनफल खाने, सर्दी-गर्मी और वर्षा का कष्ट सहने, महल छोडकर झाडो के नीचे सोने और कुटिया मे रहने की क्या आवश्यकता थी ? क्या राम को, जो राजकुमार थे और राज्य के उत्तराधिकारी थे, ऐसा करना शोभा देता है ? पर इसका रहस्य तो वही समझ सकता है जिसने शुद्ध चित्त से मनन किया हो। दुखी जीवन मे किस प्रकार उत्थान भरा है, यह देखने के लिए राम का जीवन स्वच्छ दर्पण है। वे लोगो को त्याग की महिमा दिखलाना चाहते थे और अपनी जीवनी से ही वतलाना चाहते थे कि

जो काम शस्त्रो से भी संभव नहीं है वह त्याग के प्रभाव से सहज ही हो सकता है। राम ने बड़ी खूबी के साथ यह दिखला दिया है।

राम की महिमा रावण को मारने से नही, त्याग के कारण है। वन-भ्रमण के कष्टो से उनका शरीर तो अवश्य दुबला हुआ होगा पर आत्मा तो उनका बलवान् ही हुआ। आत्मा को बलवान् बनाने की यह सीधी चर्या सीखाने से ही राम सब के हृदयेश्वर हुए हैं। अगर राम ने शस्त्रों से ही काम लिया होता तो वे चाहे बडे-राजा हो जाते पर आज जैसे सब के स्मरणीय बने हुए है, वैसे न हो सके होते।

भगवान् महावीर की तरफ खयाल करो। उन्होने तप का कष्ट क्यो सहन किया ? उन्हे कर्म ही खपाने थे तो कर्म खपाने के लिए शुक्लध्यान आदि साधनों को वे भलीभाँति जानते थे। मगर भगवान् ने व्यवस्थित रूप से धर्मशासन चालू रह सके, इस उद्देश्य से सघ की स्थापना की और सघ का उद्धार करने के लिए, जनता को सिखाने के लिए तप किया। इसी हेतु भगवान् ने पाच मास और पच्चीस दिन के महान् उपवास के पारणे मे उडद के छिलके खाये। ऐसा करके उन्होने तप, त्याग और सादगी का आदर्श स्थापित किया। ऐसी स्थिति मे आप लोग सादगी न धारण करके मौज-शौक मे रहते हुए ही धर्म माने तो कहना होगा कि अभी आप दया-धर्म से दूर है।

जो भावनाशील व्यक्ति ससार के दुखों को अपना ही दुख मानता है, उसे अपना व्यक्तिगत दुख जान ही नही पडता। रोग होने पर आप दुर्गंधयुक्त और कडवी

दवाई गले के नीचे उतार जाते है। आप जानते है कि हमारे पेट मे रोग है और यह दवा हमे शाति पहुचायगी। इसी विचार से आप दवा पी जाते हैं और वैद्य को पुरस्कार देते हैं। ऐसी ही बात महापुरुषो के कष्टसहन मे भी है। अन्तर है तो यही कि आप सिर्फ अपने ही दुख को दुख समझते है और महापुरुष ससार के दुख को अपना दुख मानते है। राम को अपनी माता का हृदय शुद्ध करना था। महावीर स्वामी को साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का सघ चलाकर उनके दुखो का अन्त करना था। धन्यकुमार (धन्ना) मुनि को दूसरे मुनियो के सामने आदर्श उपस्थित करना था। इसीलिए तो चौदह हजार मुनियो मे यह बहुत उत्तम मुनि माने जाते थे।

मतलब यह है कि दूसरो के दुख को अपना दुख मानकर उनकी सहायता करना और अपनी सकीर्ण वृत्तियो को व्यापक बना लेना ही आध्यात्मिक उत्कर्ष का उपाय है। आध्यात्मिक उत्कर्ष की चरम सीमा ही परमात्मदशा प्राप्त होना है। भगवान् की स्तुति और भावना से उसकी प्राप्ति होती है।

(ग)

स्तुतिकार ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए उन्हें भुवनभूषण और भूतनाथ कहकर सम्बोधित किया है।

भगवान् की स्तुति ऐसी प्यारी वस्तु है कि हार्दिक भावना के साथ उस पर विचार करने पर ऐसा आनन्द होता है कि कहा नही जा सकता। हृदय अपूर्व आनन्द का केन्द्र बन जाता है। हृदय की दुर्बलता भी उससे दूर

हो जाती है ।

शरीर के शृंगार के लिए बहुत से आभूषण पहिने जाते है । विशेषतया स्त्रिया हाथ, कान आदि अवयवो को सिंगारती हैं । यह भूषण शरीर के भूषण है और शरीर सिंगारते हैं । इसी प्रकार घर का भूषण घर को, कुल का भूषण कुल को, ग्राम का भूषण ग्राम को, नगर का भूषण नगर को और देश का भूषण देश को सिंगारता है । इसी तरह जो जगत् का भूषण है वह जगत् को सिंगारता है ।

लोग अपने-अपने आभूषण से प्रेम करते हैं । गृह-भूषण से गृहवालो का और राष्ट्रभूषण से राष्ट्र का प्रेम होता है । ऐसी दशा मे विचारणीय बात यह है कि जो अखिल विश्व का भूषण है और जिसे हम इसी रूप मे मानते हैं, उसमे किस प्रकार प्रेम किया जाय ?

अगर हम यह स्तुति हृदय से करते हो तब तो जगद्भूषण का विचार बहुत विशाल हो सकता है । मगर हम लोग यह भूल कर रहे हैं कि हम जगद्भूषण की स्तुति तो करते है किन्तु साथ ही उनके कामो का विरोध भी करते है । वास्तव मे विश्व के कल्याण मे ही परमेश्वर का वास है । ससार के कल्याण की आन्तरिक कामना ही परमेश्वर का दर्शन कराती है । अगर हम हृदय से भुवन-भूषण का स्मरण करे और उनके कामो मे बाधा न डाले तो कोई त्रुटि ही न रह जाय ।

आप जानना चाहते होगे कि हम भुवनभूषण के काम मे क्या बाधा डाल रहे हैं ? अगर यह बतलाने के लिए मैं ससार-व्यवहार सम्बन्धी कामो मे से ही कुछ उदाहरण देता हू । उनसे आप समझ जाएँगे कि आप

किस प्रकार बाधा डाल रहे हैं !

राजा आपको मुफ्त में बिजली दे दे तो आप अपना गौरव समझेंगे। आपकी प्रसन्नता का पार नही रहेगा। मगर राजा उदार होकर सभी के घर अगर मुफ्त बिजली पहुचा दे तो आपको उतना आनन्द होगा ?

'नही !'

क्यो ? क्या सबके घर बिजली चली जाने से आपके घर की बिजली का प्रकाश कम हो गया ? ऐसा नही है तो प्रसन्नता क्यो नही होती ? इसी कारण न कि आप यह चाहते है कि मेरे यहा हो और दूसरो के यहाँ न हो ! राजा ने सब के घर बिजली भेजकर आपके यहाँ अन्ध-कार नही कर दिया है। आपके घर भी उजाला है और दूसरो के घर भी। फिर आपकी प्रसन्नता क्यो मिट गई ? हृदय की सकीर्णता ने आपके आनन्द को नष्ट कर दिया। बस भुवनभूषण को पहिचानने मे भी हृदय की सकीर्णता, हृदय की दुर्बलता और हृदय की क्षुद्रता ही बाधा डालती है।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।

हे अर्जुन ! हृदय की क्षुद्र दुर्बलता को छोड़कर तैयार हो जा।

यह हृदय की दुर्बलता ही है जो आप से कहलाती है कि बिजली दूसरो के घर न हो सिर्फ मेरे घर हो। तभी मैं सुख का अनुभव करूँगा।

आपने कान मे मोती पहिने है। अब किसी गरीब को भी मोती मिल जावें और वह भी कान मे पहन ले तो

आपको प्रसन्न होना चाहिए या अप्रसन्न होना चाहिए ?

'प्रसन्न होना चाहिए ।'

लेकिन आपको प्रसन्नता नही होती । यही नही, उस समय आपकी क्षुद्रता जाग उठती है और अभिमान मिस-मिसाने लगता है । कई जगह तो हरिजनो की स्त्रियो को सिर्फ इसलिए पीटा गया है कि उन्होने पैरो मे चादी के गहने पहन लिये ! इस अभिमान और क्षुद्रता की कोई सीमा है ! अगर इस प्रकार की क्षुद्रता मन मे रखना है तो फिर भुवनभूषण के गुण गाने की आवश्यकता ही क्या है ? आप अपने ही भूषणो के गुण क्यो नही गाते ? इस तरह की विचारधारा रखकर परमात्मा के गुण गाने वाले को परमात्मा नही मिल सकता ।

बहिनो का भी यही हाल है । वे भी यही सोचती है कि मेरे ही हाथो मे मोतियो की बँगडियाँ रहे और दूसरी के हाथ मे न रहे । अगर उन्ही के हाथ मे रही तो उनका सेठानीपन कायम रहेगा और दूसरी के हाथ मे भी हो गई तो सेठानीपन डूब जाएगा !

मित्रो ! हृदय की दुर्बलता के ही कारण इस प्रकार के विचार आपके मस्तिष्क मे पैदा होते है ! आप दूसरो के सुख को अपना सुख नही समझते बल्कि दुःख समझते हैं । सिर्फ आप सुखी बनना चाहते है और चाहते हैं कि ससार का सारा सुख आपके ही घर मे आकर जमा हो जाय । किसी दूसरे के हिस्से मे न आवे !

अच्छा आप बतलाइए कि सूर्य का प्रकाश अधिक है या बिजली का ?

'सूर्य का !'

विज्ञान द्वारा लाख प्रयोग करके भी सूर्य के समान दूसरा प्रकाश नही बनाया जा सकता । कदाचित् सूर्य के समान प्रकाश देने वाली बिजली कोई बना भी दे तो भी उससे भयकर बीमारियो के उत्पन्न होने की सभावना है । आज जो बिजली प्रकाश दे रही है उससे भी अनेक हानियाँ हुई हे । चन्द्रमा फलो मे जैसा रस उत्पन्न करता है, सूर्य उन्हे जिस प्रकार पकाता है, वैसा दूसरा कोई नही कर सकता । इसीलिए सूर्य को जगत्पोषक की पदवी मिली है । यह पदवी सूर्य ने स्वय नही माँगी, किन्तु बडे-बडे ऋषियो ने, विद्वानो ने और तत्त्ववेताओ ने गभीर अनुसधान करने के पश्चात् सूर्य को जगत्पोषक आदि पदवियाँ प्रदान की है। शरीर मे रक्त का बेगवान् सचार हो रहा हैं, इन्द्रियो में जो विकास है, शब्द दूसरो के कानो तक पहुचकर सुनाई देता है, इन सब का निमित्त कारण सूर्य है । सूर्य न हो तो न शरीर मे खून दौडे, न शब्द सुनाई दे और न जीवन ही स्थिर रहे । एक वृक्ष ऐसी जगह हो जहाँ सूर्य की किरणे न पहुच पाती हो, और दूसरा ऐसी खुली जगह में हो कि जहाँ बिना रुकावट सूर्य की किरणे पहुचती हो, तो इन दोनो मे से कौन-सा वृक्ष हरा-भरा रहेगा और बढेगा ?

'जिसके पास किरणे पहुचती हैं ।'

वैज्ञानिको का कहना है कि रग भी सूर्य की किरणो से ही वनता है । सूर्य की किरणो के आदान-प्रदान पर ही रग को विशेषता निर्भर है । सूर्य किसी फूल को अपनी जितनी किरणे देता है, उन सव किरणो को अगर फूल लौटा देता है तो वह फूल सफेद होता है। सफेद रग सब

रगो मे अच्छा समझा जाता है। इस रग को प्राप्त करने वाले फूल सूर्य की जितनी किरणे लेते हैं, उतनी या उससे भी अधिक सूर्य को लौटा भी देते हैं। फिर जो फूल किरणे लेते ज्यादा हैं और लौटाते कम हैं, उनमें लौटाने की कमी के अनुपात से ही रगभेद हो जाता है। गुलाब का फूल सूर्य से जितनी किरणे ग्रहण करता है उतनी वापिस नही लौटाता, कम लौटाता है। इस कारण उसका रग गुलाबी होता है। जो फूल जितनी किरणें कम लौटाता है उसका रग उतना ही खराब होता जाता है। जो फूल सूर्य की किरणे लेता तो है मगर लौटाता बिलकुल नही, उसका रग काला हो जाता है।

सूर्य की किरणों के आधार पर फूलो के रगो मे वैज्ञानिको ने जो भेद बतलाये हैं, वैसे ही भेद ज्ञानियो ने लेश्या के बतलाये हैं। सफेद फूल के जो गुण बतलाये गये है वही गुण उदार पुरुष मे होते है। इसी प्रकार उन लोगो को काले फूल के समान बतलाया गया है जो प्रकृति की सहायता लेते तो है मगर देने के समय कह देते है कि हमे इसके बाप का क्या देना है!

फोटो खीचते समय काला कपडा ढँकने का कारण यही बतलाया जाता है कि काला कपडा सूर्य की किरणो को केमरे मे प्रवेश नही करने देता, आप ही हजम कर जाता है। तात्पर्य यह है कि जिसमे कालिमा होगी, जिसका हृदय काला होगा, वह ले तो लेगा परन्तु देगा नही।

सूर्य की किरणों मे अलौकिक गुण हैं। उन्ही गुणो के कारण वह जगत् का चक्षु हो रहा है। सूर्य आपको प्रकाश देता है सो बदले मे क्या कुछ लेता भी है?

'नही !'

अगर आपको बिजली मुफ्त मे मिल जाय तो आप बिजली देने वाले का उपकार मानते हैं और उसे बडा समझते हैं, लेकिन सूर्य का प्रकाश मुफ्त मे लेकर के भी कभी सूर्य का उपकार माना है ?

अगर सूर्य सिर्फ आपको ही प्रकाश देता और दूसरो को न देता तो आपके घमड का अन्त न रहता। आप इतना आनन्द मानते कि फूले न समाते। आप अपने को ईश्वर समझने लगते। लेकिन सूर्य सभी को प्रकाश देता है, यह बात आपके लिए आनन्ददायक नही है। इसीलिए आप सूर्य के प्रति कृतज्ञ नही होते।

आप थोडा विचार तो कीजिए कि सूर्य ने सब को प्रकाश दिया तो आपकी क्या हानि हो गई ? आपके हिस्से का प्रकाश तो सूर्य ने दूसरो को नही दिया है ! सूर्य ने समान रूप से सब को प्रकाश दिया है, यह उसकी महिमा है या बुराई है ?

'महिमा है।'

तो फिर सूर्य का प्रकाश पाकर आप प्रसन्नता का अनुभव क्यो नही करते ? आपको प्रकृति पर ध्यान देकर विचार करना चाहिए कि मुझे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि से आनन्द मिला है तो मैं इनका उपकार क्यो न मानूं ? लेकिन हृदय की क्षुद्रता आपकी प्रसन्नता को उत्पन्न ही नही होने देती। इसीलिए आचार्य कहते है कि आप भुवन-भूपण के गुण जानोगे तो न आत्मा मे द्वेष उत्पन्न होगा, न गर्व होगा और न दीनता ही आएगी। आपको सतोप

प्राप्त होगा। परमात्मा की स्तुति से दर्प और दीनता दोनों दूर हो जाएँगे।

अपने मनोभावों को आप पर प्रकट करने के लिए मैं अधिक से अधिक सरल पद्धति से काम लेता हूं। आप मेरे भाव को समझ गये होंगे। फिर भी एक उदाहरण और लीजिये।

आपके ऊपर पखा किया जाय या चँवर ढोरा जाय तो आपको आनन्द होता है, लेकिन प्रकृति ने सभी को समान रूप से पखा कर दिया तो आपको आनन्द क्यों नही होता ? क्या सब पर पखा होने से आपकी कुछ हानि हो गई ? फिर आपका आनन्द क्यो चला गया ? मगर आप सोचते हैं – प्राकृतिक पंखा अर्थात् पवन तो सभी के लिए समान है। इस मे आनन्द की क्या बात है ? आप उसी वस्तु मे आनन्द मानते हैं जो सिर्फ आपके लिए ही हो, औरो के लिए न हो !

अकृत्रिम पवन में जो गुण हैं वे क्या कृत्रिम पखे के पवन मे हो सकते हैं ?

'नही !'

फिर भी आप नैसर्गिक पवन में आनन्द न मानकर कृत्रिम में आनन्द मानते है। आपने कभी सोचा है कि आपके हृदय की कौन-सी भावना इसमे कार्य कर रही है ? ऐसा करके आप ससार के कल्याण का परोक्ष रूप मे विरोध करते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि विश्व-कल्याण का विरोध न करने वाला ही परमात्मा को पहिचान सकता है। आपकी जीभ 'ईश्वर-ईश्वर' भले ही जपती हो परन्तु

आपका हृदय ईश्वर को भूला हुआ है और मस्तिष्क ईश्वर के विरोधी कामो मे उलझा हुआ है। हृदय और मस्तिष्क दोनो जब परमात्मा के आदेश को शिरोधार्य करते है तभी कल्याण होता है।

हृदय और मस्तिष्क का अन्तर समझ लेने की आवश्यकता है। हृदय के काम प्राय जगत्-कल्याण के लिए होते है और मस्तिष्क के काम प्राय जगत् के अकल्याण के लिए हुआ करते है। कपटाचार मस्तिष्क की उपज है, जिसमे दिखलाया कुछ जाता है और किया कुछ और जाता है। यथा बिजली के विषय में कहा तो यह जाता है कि लोगो के आराम के लिए इसकी खोज की गई है परन्तु वास्तव मे यह अपना स्वार्थ साधने और लोगो को पराधीन रखने का साधन है। इस प्रकार की बाते ससार को खराब कर रही है।

बिजली, रेल, कल, कारखाने आदि मस्तक की उपज हैं। यह हृदय की उपज नही है। हृदय की उपज के काम तो भगवान् ऋषभदेव ने बतलाये है। एक हल बैलो से चलता है और दूसरा एंजिन से। बैलो से चलने वाले हल की उपज हृदय की है और एंजिन से चलने वाले हल की उपज मस्तिष्क की है। हृदय की उपज और मस्तक की उपज के कामो की पहचान यह है कि जिस काम मे अपना भी भला हो और दूसरे का भी भला हो वह काम हृदय की उपज है। जिन कामो से अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना होता है, दूसरे के कल्याण की ओर दृष्टिपात नही किया जाता किन्तु दूसरो को पगु बनाना अभीष्ट होता है, वे काम मस्तिष्क की उपज है। मस्तिष्क की उपज के

काम राक्षसी राज्य के है और हृदय की उपज के काम रामराज्य के है। सिक्का भी मस्तक की उपज का नमूना है। उसके सम्बन्ध मे कहा तो यह जाता है कि सिक्के से दुनिया के व्यवहार मे बडा सुभीता होता है और इसीलिए उसका निर्माण किया गया है; लेकिन वास्तविक बात यह नही है। थोडी देर के लिए यह कथन सही मान लिया जाय तो सिक्का बना लेने की छूट सब के लिए क्यो नही है? प्राचीनकाल मे सोनैया (स्वर्ण मोहरे) थे। मगर उनका मूल्य कल्पित नही था, अतएव उनसे कोई हानि नही होती थी। मगर कल्पित मूल्यो के सिक्को ने जगत् को बडी हानि पहुचाई है। सिक्को के प्रताप से आज विश्व मे आर्थिक विषमता रूपी पिशाचिनी का भैरवनृत्य हो रहा है।

यह हृदय और मस्तिष्क के सम्बन्ध मे व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया गया है। आध्यात्मिक कार्यों मे भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है।

हृदय और मस्तक के कार्यों की तुलना की जाय तो दोनो का भेद अनायास ही समझ मे आ जायगा। हृदय मे दया, करुणा, परोपकार, संवेदना, सहानुभूति, सहृदयता आदि गुण भरे है। मस्तिष्क जब हृदयशून्य होता है तो स्वार्थबुद्धि की प्रबलता के कारण इन सब दिव्य और मृदुल भावनाओ को नष्ट कर देता है। वह स्वार्थ भी थोडे ही दिनो का मेहमान होता है। कुछ दिनो बाद स्वार्थ भी नष्ट हो जाता है और सारा ससार चक्कर मे पड जाता है।

ठडाई, शर्बत, शराब आदि से स्वास्थ्यनाश के सिवाय

कुछ भी लाभ नही है। क्या पानी के बिना जीवन निभ सकता है ?

'नही।'

फिर भी आप पानी मे आनन्द न मानकर गुलाब के शर्बत मे ही आनन्द मानते हैं। यह ससार के कल्याण से विरुद्ध है या नही ?

एकान्त रूप से धर्म का आचरण करने वालो को भी पाँच वस्तुओ का उपकार नही भूलना चाहिए, ऐसा शास्त्र का आदेश है। उनमे से छह काय का बहुत बडा उपकार बतलाया गया है। क्या पृथ्वी की सहायता के बिना सयम पल सकता है ?

'नही !'

इसीलिए भगवान् महावीर कहते हैं कि पृथ्वी का उपकार मानो। जिस भूमि पर पैर टेक कर खडे हो वह स्वर्ग से भी बड़ी है। भूमि कही की हो, लेकिन जो हमारा वजन उठा रही है और जिस भूमि पर हमारी सयम की क्रिया पल रही है, उसे अगर स्वर्ग से हीन माने तो उस पर पैर धरने का क्या अधिकार है ? इस भूमि पर आप सामायिक करते है। क्या स्वर्गभूमि मे सामायिक की जा सकती है ?

'नही।'

यहाँ के पवन से और पुद्गलो से आपका शरीर पल रहा है, आपका धर्मध्यान हो रहा है, फिर आप अपनी जन्मभूमि की महिमा न समझकर स्वर्ग की भूमि को वडी समझे, यह कैसे उचित कहा जा सकता है ?

रामनरेशजी त्रिपाठी ने एक ग्राम्यगीत सुनाया। उसका आशय यह है कि— एक ओर राजा का महल है जिसमे सब प्रकार की तैयारी के साथ प्रकाश जगमगा रहा है और दूसरी ओर एक किसान का टूटा झोंपडा है, जिसमे शीत, ताप और वर्षा नही रुकती। किसान इतना गरीब है कि घर मे जलाने के लिए दीपक तक नही है। फिर भी किसान खडा हुआ मस्ती के साथ गा रहा है। वह कहता है— प्रभो! तूने राजा के घर तो दीपक का प्रकाश किया परन्तु मेरे घर का तो अन्धकार ही हर लिया!

गरीब किसान ऐसी अवस्था मे, जब कि उसकी झोपडी टूटी-फूटी है और सामने राजमहल है, क्यो मस्त होकर गा रहा है? जो लोग मस्तक से ही विचार करते है उन्हे इसका कारण मालूम नही हो सकता। अहिंसा, सयम और तप हृदय की उपज हैं। कोरे मस्तिष्क की सहायता से इनका महत्त्व और रहस्य कैसे समझा जा सकता है?

किसान के गाने मे कौन–सी प्रेरणा काम कर रही है, यह कौन कह सकता है? फिर भी कल्पना की जा सकती है। वह दरिद्रता की अवस्था मे दूसरो की तरह परमात्मा को गालियाँ न देकर उनका उपकार मान रहा है। उपकार इसलिए कि राजा के घर मे ससार के समस्त अन्यायो का पैसा है। वेश्या, शराबी, कसाई, चोर, डाकू, निस्सतान आदि सबका पैसा राजा के घर मे जाता है। उन्ही पैसो से राजा के घर मे दीपक जग-मगा रहे हैं। किसान ऐसे दीपको की मौजूदगी मे भी अन्धकार ही मानता है। वह प्रसन्न है, क्योकि वह अन्याय और अत्याचार मे

दूर है। वह किसी दूसरे के परिश्रम को नही खाता। स्वय परिश्रम करता है और उसके बदले में जो कुछ पाता है, सतोष के साथ खा लेता है।

जो सहृदय होगा वह अवश्य ही विचार करेगा कि मेरे किसी भी कार्य से दूसरे को दुःख न उठाना पड़े। जिन कार्यों मे करुणा का अभाव होगा वे हृदय की नहीं वरन् मस्तिष्क की उपज होगे। हृदय मे करुणा होने पर ही भुवनभूषण को पहिचाना जा सकता है। दयाधर्म को पाने वाला ही पुण्यवान् होता है। जिसका हृदय दया से भरपूर है, वह स्वर्गीय सम्पत्ति से सुशोभित है। आप ऊपरी वैभव देखकर ही किसी को पुण्यवान् मान लेते है, पर हृदय के विचारो से पता लगता है कि वास्तव मे कौन पुण्यशाली है और कौन नही ?

एक करोडपति गहनो और कपडों से सजा हुआ मोटर मे बैठा हुआ है। मोटर तेजी के साथ जा रही है। किसी गरीब को मोटर की ठेस लगी। इधर तो मोटर की ठेस लगी, उधर सेठजी उसे डाटकर कहने लगे—'मूर्ख कही का! देखता नही मोटर आ रही है! एक किनारे हटने के बदले सामने आता है और हमें बदनाम करना चाहता है!' इतना कहकर सेठजी चले गये। उस चोट खाये गरीब को उठाना या सहानुभूति प्रकट करना उन्होने आवश्यक नही समझा। इतने मे दूसरा गरीब वहाँ आ पहुचा। उसने आहत गरीब को उठाकर छाती से लगाया, चिकित्सालय मे पहुचा दिया और उसकी यथोचित सेवा की। अब आपका हृदय किसे पुण्यवान् कहता है—उस अमीर को या इस गरीब को ?

'गरीब को !'

इस निर्णय मे आपको शंका तो नही है ?

'नही।'

यद्यपि हृदय गरीब को पुण्यवान् स्वीकार करता है, लेकिन जब मस्तिष्क के विचार हृदय की भावना को दबा लेते हैं तब उस अमीर को ही पुण्यशाली मान लिया जाता है। यह अविवेक है।

भगवान् के लिए भूतनाथ शब्द का भी प्रयोग किया गया है। इस शब्द से क्या भाव भरा है, यह समझाने के लिए बहुत समय चाहिए। सक्षेप मे अभी इतना ही कहता हू कि प्रभु प्राणीमात्र के नाथ है। भगवान् जब प्राणीमात्र के नाथ हैं तो किसी भी प्राणी को कष्ट पहुचाना, उसके सुख मे बाधा डालना अथवा अपने स्वार्थ मे अन्धे होकर दूसरे के सुख-दुख की परवाह न करना उचित नही। ऐसा करने वाला भगवान् का सच्चा भक्त नही हो सकता। भगवद्भक्ति की प्राथमिक भूमिका भूतमात्र को अपना भाई मानकर उसके प्रति सहानुभूति रखता है। प्राणीमात्र के प्रति आत्मभाव रखकर भगवान् की स्तुति करने से कल्याण का द्वार खुलता है।

(घ)

हे प्रभो ! आपके विद्यमान गुणों का यथावस्थित रूप से अभ्यास करने वाला आप सरीखा हो जाता है, इस बात मे मुझे कोई आश्चर्य नही लगता। यह तो ससार मे भी देखा जाता है कि किसी लक्ष्मीवान् की सेवा करके

सेवक स्वय लक्ष्मीवान् बन जाता है । साधारण मनुष्य भी अपने सेवक को अपना सरीखा बना लेता है तो आपके गुणो मे लीन हो जाने वाला अगर आप सरीखा ही हो जाता है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

प्रश्न हो सकता है कि भगवान् के गुणो का अभ्यास किस प्रकार किया जाय ? भगवान् अरूपी सत्ता है, उनके अनन्त गुण है, ऐसी दशा मे उनके गुणो का अभ्यास करने की क्या विधि हो सकती है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानियो का कहना है कि भगवान् के गुणो का अभ्यास करना कठिन नही है । लेकिन लोगो ने ऊपरी आडम्बर मे पडकर कठिनाई मान ली है, इसी कारण कठिनाई मालूम होती है। भगवान् मे जो गुण है वे उनके नाम से अच्छी तरह प्रकट हो जाते हैं ।

भगवान् के 'भुवनभूषण' नाम के विषय मे कहा जा चुका है । भगवान् को 'भूतनाथ' भी कहा है । अर्थात् परमात्मा प्राणीमात्र का मालिक है ।

अभ्यास करने के लिए एक ही वस्तु काफी होती है । एक ही वस्तु पर विचार करके अभ्यास किया जाय तो यह शका नही रह सकती कि भगवान् दिखाई नही देते, उनके गुण हमारी बुद्धि मे नही आते, ऐसी दशा मे हम भगवान् की सेवा कैसे करे और उनके गुणो का अभ्यास कैसे करे ?

भगवान् अरूपी सत्ता है, उसे देखे विना उसकी उपासना किस प्रकार हो सकती, इस तर्क को मिटाने के लिए ईश्वर की मूर्ति बनाकर उसके द्वारा ईश्वर की उपासना

करने की पद्धति स्वीकार की है। अव्यक्त का ध्यान करना कठिन है, इस विचार से लोग मूर्ति स्थापित करते है। लेकिन मेरा कथन यह है कि जब परमात्मा की मूर्ति बिना बनाये ही मौजूद है तो फिर दूसरी मूर्ति के बदले क्यो नही उसी पर अपना लक्ष्य स्थापित करते ? परमात्मा की मूर्ति किस प्रकार विद्यमान है, यह समझ लेना चाहिए।

ईश्वर मनुष्य देह मे ही हुआ है और मनुष्य आज भी मौजूद है। मनुष्य शरीर स्वाभाविक रीति से बनी हुई ईश्वर की आकृति है। लाख प्रयत्न करने पर भी कोई कारीगर ऐसी आकृति नही बना सकता। जब मनुष्य परमात्मा की मूर्ति है तो इन्हें देखकर परमात्मा का ध्यान आना चाहिए। सोचना चाहिए कि यह शरीर वह है जिसमे परमात्मा हुआ था। ईश्वर की मूर्ति की कोई अवज्ञा करेगा ?

'नही !'

तो यह मनुष्य शरीर ईश्वर की मूर्ति है, ऐसा समझकर मनुष्यो की अवहेलना या घृणा न करना ही सच्ची मूर्तिपूजा है।

परमात्मा की मूर्ति की अवहेलना किस प्रकार नही करना चाहिए, इसके लिए सर्वप्रथम तो प्राणातिपात का त्याग करना आवश्यक है। ऐसा करने से परमात्मा की आराधना होगी। क्योकि मनुष्य परमात्मा की मूर्ति है, इसलिए इनकी हिंसा न करना, न कराना और न हिंसा का अनुमोदन करना चाहिए। ऐसा करके उस अहिंसा को परमात्मा के लिए समर्पित कर देने से ईश्वर की पूजा हो जायगी।

मनुष्य की हिंसा त्यागने के लिए कहा गया है सो इसका अर्थ यह नही समझना चाहिए कि अन्य प्राणियो की हिंसा त्याज्य नही है। हिंसा तो प्राणीमात्र की त्याज्य है। लेकिन मनुष्य, मनुष्य की विशेष और अन्य प्राणियो की सामान्य हिंसा करता है। इसी कारण यहाँ मनुष्य-हिंसा के त्याग पर जोर दिया गया है। मनुष्य विशेष मूर्ति है और अन्य जीव सामान्य मूर्ति हैं। यो तो सभी शरीर मूर्ति ही है। भगवान् ने कहा है--

पुढवीकायमइगश्रो उक्कस जीवो उ सवसे।
काल सखाईयं, समय गोयम ! मा पमायए ॥

हे गौतम! हमारा–तुम्हारा यह जीव असख्यात काल तक पृथ्वीकाय मे रहा।

इस प्रकार भगवान् की आत्मा कभी पृथ्वीकाय मे रही और कभी मनुष्य शरीर मे। अतएव सोचना चाहिए कि सन्निकट मे तो मनुष्य शरीर को भगवान् महावीर का स्वरूप मानूँ और दूर मे पृथ्वी मे भी ईश्वरीय सत्ता मानूँ। ऐसा समझकर किसी की हिंसा न करने से परमात्मा की पूजा हो जायगी।

जब भगवान् भूतनाथ है तो पृथ्वीकाय के भी नाथ हैं। कदाचित् आप परमात्मा को नही देख सकते तो भी वे जिनके नाथ है, उन्हे तो देखते है? अतएव परमात्मा के नाते से ही सब प्राणियो के साथ सलूक करो। प्राणियो की सेवा करने से ईश्वर की सेवा हो जायगी। ईश्वरीय आदेश का पालन ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। और ईश्वर का आदेश है कि किसी भी प्राणी को कष्ट मत पहुचाओ।

मनुष्य का मनुष्य के साथ विशेप सम्बन्ध है, इसलिए

मनुष्य की हिसा त्यागने के लिए विशेष रूप से कहा जाता है। जो मनुष्य पर दयाभाव रक्खेगा वह दूसरे जीवधारियो पर भी दया रक्खेगा। मगर मनुष्य ही मनुष्य को अधिक सताता है। पशुओ को तो केवल हाड, मास, चर्बी आदि के लिए मारा जाता है, लेकिन मनुष्य, मनुष्य का सैकडो तरह से घात करता है। मनुष्य को मनुष्य से जितना भय लगा रहता है, उतना किसी पिशाच और राक्षस से भी नही लगता। यह मशीनगनें, तोप, बदूक आदि किसलिए बने हैं।

'मनुष्यो को मारने के लिए।'

मनुष्यो ने मनुष्य को मारने के लिए जितने उपाय रचे हैं, उतने उपाय पशु को मारने के लिए नही रचे। मनुष्य को मनुष्य पर जितना द्वेष होता है और मनुष्य, मनुष्य को जितनी हानि पहुचाता है, उतनी पशु को नही पहुचाता और न पशु ही पशु या मनुष्य को पहुचा सकता है। पशु मनुष्य को कदाचित् हानि पहुचाता है तो अल्प ही पहुचाता है। इसी कारण मनुष्यो पर विशेप रूप से दया करने की आवश्यकता है। जो मनुष्य पर दयावान् होगा उसे अन्य सत्तरह पाप भी छोडने होगे।

मनुष्य की दया करने वाले को सब से पहले झूठ का त्याग करना पडेगा, क्योकि झूठ मनुष्य से ही बोला जाता है, पशु से नही। झूठ-कपट आदि पापो का सेवन मनुष्य, मनुष्य को ठगने के लिए ही करता है। ऐसा साहित्य तो मिल सकता है जिससे लाखो—करोडो मनुष्य भ्रष्ट हो गये हो, लेकिन क्या ऐसा भी कोई साहित्य मिल सकता है जिससे पशु भ्रष्ट हो गये हो ?

'नही !'

तो जो ऐसा साहित्य नही रचता है और मनुष्य-जाति के उत्थान के लिए साहित्य की रचना करता है वह क्या परमात्मा की सेवा नही करता ?

नियमित रूप से सत्य वही बोलेगा जो मनुष्य के प्रति अहिंसक होगा। जिसके हृदय मे मनुष्य के प्रति दया होगी वह झूठ नही बोलेगा। जो कपट करेगा उसमे हिंसकता आये बिना नही रहेगी। ससार मे प्रचण्ड हिंसा के प्रसार का प्रधान कारण यही है कि मनुष्य, मनुष्य के साथ झूठ-कपटमय व्यवहार कर रहा है।

मनुष्य मुख्य रूप से मनुष्य की ही चोरी करता है। वह पशुओ को चुराता है तो वे पशु भी आखिर मनुष्य के ही होते हैं। जो मनुष्य, मनुष्य पर दयालु होगा वह किसी की वस्तु चुराकर उसे दु.खी न करेगा।

अगर आपके हृदय मे इस प्रकार की भावना बद्ध-मूल हो गई कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसके प्रति दुर्व्यवहार करना परमात्मा के प्रति दुर्व्यवहार करना है तो आप थोडे ही दिनो मे देखेगे कि आपके अन्त करण मे अपूर्व भक्तिभाव पैदा होगा और आप परमात्मा के सच्चे उपासक बन जाएँगे। पाषाण की बनी परमात्मा की मूर्ति की पूजा करता हुआ भी अगर कोई मनुष्यरूप मूर्ति की चोरी करता है तो समझना चाहिए कि वह परमात्मा की उपासना के मर्म को नही समझता।

इसी प्रकार जिसके हृदय मे दया होगी वह दूसरे की स्त्री की तरफ कदापि बुरी दृष्टि से नही देखेगा। वह कभी

किसी स्त्री को भ्रष्ट करने की इच्छा नही करेगा ।

जिसका अन्त करण दया से द्रवित रहता है वह कभी अनुचित सग्रह नही करेगा । वह दूसरो का भाग हडपने की चेष्टा से सदा घृणा करेगा । दूसरे को दु खी करके आप मोटा बनने की इच्छा नही करेगा ।

जहाँ परिग्रह है वहाँ आरभ है । बहुतेरे परिग्रहशील व्यक्ति इतना अमर्याद सग्रह करते हैं कि वह सग्रह न उनके काम आता है, न दूसरो के काम आ पाता है । हृदय मे अहिसा या करुणा न होने के कारण ही लोग चाहते हैं कि मैं ही सबका मालिक बना रहू । दूसरे मरते हैं तो मरे । उन्हे मरने वालो की परवाह नही ।

मनुष्य दूसरे मनुष्यो का ही हिस्सा छीनकर सग्रह करता है और दूसरो के प्रति दया न होने के कारण ही सग्रह करता है । इसी कारण महात्मा पुरुष पूण रूप से निष्परिग्रह बन कर जगल मे जाकर तप करते हैं और वह तप भी कितना कठोर ! कहा है—

शीत पड़े कपि-मद भरे, दाझे सब वनराय ॥
ताल तरगिनि के निकट ठाड़े ध्यान लगाय ।
वे गुरु मेरे मन वसो तारण तरण जहाज ॥

जिन महानुभाव के चित्त मे ईश्वर का दिव्य स्वरूप वस जाता है, जो दया से भूपित है, अहिसा की भावना से जिसका हृदय उन्नत है, वह कभी किसी प्राणी का अनिष्ट नही करता । अगर कोई उसका अनिष्ट करता है तो भी वह उससे वदला लेने का विचार नही करता । वह सोचता है— यह मेरा अनिष्ट नही कर रहा है किन्तु मेरा अदृष्ट

ही मुझे सता रहा है। यह मनुष्य जिस क्रोध के वश होकर मुझे पीडा पहुचा रहा है वह क्रोध मेरे अन्तःकरण मे आविर्भूत न हो तो मेरे लिए बहुत है। अगर मुझमे भी काम-क्रोध आ गया तो मै भी भ्रष्ट हो जाऊँगा। अतएव अपने अन्तःकरण मे किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न होने देना परमात्मा की सच्ची उपासना है।

जीवन व्यवहार जब अहिंसामय बन जाता है तो काम, क्रोध आदि विकार सहज ही जीते जा सकते हैं। जो पुरुष, मनुष्य को ईश्वर का प्रतिनिधि मानेगा वह उसके प्रति असत्यमय व्यवहार कैसे करेगा ?

> चन्दन पड्यो चमार घर, नित उठ चीरे चाम।
> कह चन्दन! कैसी भई पड्यो नीचे से काम॥

जो चन्दन-देवता पर चढाया जाता है, ललाट पर लगाया जाता है और पवित्र कार्यो मे, व्यवहृत होता है, उस चन्दन का वृक्ष एक चमार के घर था। चमार उस पर चमडा सुखाया करता था। किसी ने चन्दन से पूछा—कहो चन्दन, कैसी बीती! चन्दन ने कहा—जिसके घर रहते हैं, वैसा ही गुण आ जाता है।

चन्दन के वृक्ष पर चमार चमडा सुखाता है, इससे चन्दन की महिमा नही घटी, वरन् चमार की ही महिमा घटी। ऐसा करने वाले चमार को आप बुरा कह सकते है लेकिन आप अपनी तरफ भी देखें। यह तुम्हारा मनुष्य शरीर जो ईश्वर को मिला था और जो समस्त शरीरो मे उत्तम है, चन्दन के समान है। लेकिन यह चमार के घर पडा है। चमार के घर किस प्रकार पडा है, यह बात मैं

भक्तो की ही वाणी में कहता हूं। तुलसीदास जी कहते है—

चतुराई चूल्हे पडो, धिक्-धिक् पडे अचार।
तुलसी हरि के भजन विन, चारो वर्ण चमार॥

जो लोग ऊपर से चतुराई करते हैं, लेकिन जिनके हृदय मे दया नही है—भक्ति नही है, जो ऊपरी आचार-विचार से ही ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हैं, ऐसे लोगों की गणना तुलसीदासजी चमार मे ही करते है, चाहे वह किसी भी वर्ण का हो।

कोई दूसरे को चाण्डाल कहते और घृणित समझते है, लेकिन स्वय क्रोध करके चाण्डाल बनते हैं। उन्हे इसका पता ही नही होता! परमात्मा ऊपर की चतुराई से कभी नही रीझता। मैं बाहरी आचार या चतुराई की बुराई नही करता, लेकिन अन्त करण की पवित्रता के अभाव मे, लोकदिखावे के लिए किये जाने वाले वाह्याचार से ईश्वर प्रसन्न नही हो सकता। अतएव आन्तरिक शुद्धता पर ध्यान देने की बडी आवश्यकता है।

तुलसीदासजी कहते हैं— जिसने ऊपरी चतुराई तो की, आडम्बर दिखाने के लिए द्रव्य आचार तो पाला, लेकिन हृदय से भक्ति नही की वह दूसरे वर्ण मे होता हुआ भी चमार ही है।

माला फेर लेना ही भक्ति नही है किन्तु परमात्मा के मार्ग पर चलने के लिए तन, धन, प्राण देने के लिए तैयार होना ही भक्ति है। सुदर्शन सेठ आदर्श भक्त था। उसे घर मे बैठकर माला फेरने से कोई रोकता नही था।

फिर वह मरने का खतरा उठाने के लिए क्यो गया ? वह भी आजकल के लोगो की तरह वहाना कर सकता था कि आने-जाने मे क्रिया लगती है, इसलिए मै घर वैठा–वैठा ही वन्दना कर लेता हूं। मगर इस क्रिया को वचाना वास्तव मे क्रिया वचाना नही, मगर प्राण वचाने के लिए वहाना करना ही होगा।

वहुत से लोग दान करने मे पाप लगने का वहाना करते हैं, मगर वे लोग पाप को देखते होते तो व्याह ही न करते। सच तो यह है कि इस प्रकार की वहानेवाजी से धर्म की घोर निन्दा होती है और लोग समझने लगते है कि धर्म स्वार्थ-साधना का उपाय है। तुलसीदासजी के कथनानुसार भगवान् का भजन न करने वाले चारो वर्ण चमार है।

चमडे का धोना, रगना और सजाना चमार का काम है। चमार यह काम अपने लिए नही, दूसरो के लिए करते है। चमार अपना काम छोड वैठे तो लोगो को वडी कठिनाई हो जाय। ऐसी हालत मे अगर आप चमार को एकातत वुरा ही कहेगे तो आपको जूते पहनना छोडना होगा। चमार को वुरा कहने वाले जरा अपनी ओर देखे। वे क्या कर रहे हैं ? क्या वे चमार की तरह ही शरीर के चमडे को नहलाने–धुलाने और सिगारने मे ही नही लगे रहते है ? क्या यह काम चर्मकार का काम नही है ? वढिया-वढिया कपडे और मोतियो के गहने क्या चमडी को सजाने के लिए ही नही पहने जाते ? अगर आप अपने शरीर के चमडे को सिगार कर दयाभाव रक्खे, भक्ति करे, शरीर को दूसरो की सेवा और परोपकार मे लगावे, तव तो

आपका चमडा रगना चमारपन नही कहलाएगा, और यदि यह कुछ भी न किया, सिर्फ चमडो की सजावट मे ही लगे रहे तो तुलसीदासजी का कथन आप पर भी लागू होगा ही।

कई लोग कहते हैं—हमसे खादी नही पहिनी जाती। वह चमडी मे चुभती है। ऐसे लोगो को चमडी का भक्त कहा जाय या नही? महीन कपडो के लिए चाहे पचेन्द्रिय पशुओं की चमडी उतारी जाय, चर्बी निकाली जाय और चाहे देश बर्बाद हो जाय, पर इनकी चमडी की सुकुमारता कायम रहनी चाहिए! इनकी चमडी खादी से नही छिलनी चाहिए! ऐसा विचार करने वाले लोगो के दिल मे दया का वास कैसे हो सकता है? किसी पतिव्रता स्त्री ने शृगार किया और वह शृगार पति को प्रिय न लगा तो वह शृगार भी कोई शृगार है? इसी प्रकार जिन वस्त्रों के पहिनने से दया का घात होता है और दया का घात होने से जो परमात्मा के प्रतिकूल है, वे कपडे क्या पहनने योग्य है?

'नही!'

प्रेम, दया, अहिंसा, परोपकार, सयम और सादगी का निर्वाह खादी पहनने से अधिक हो सकता है या मैन्-चेष्टर के हिंसामय वस्त्रो के पहनने से? खादी पहनने से गरूर कम होता है, भावना मे सात्विकता आती है, देश-प्रेम जागृत होता है। मिलो का बना वस्त्र राक्षसी वस्त्र है जो सयम और सादगी का विनाश करता है, प्रेम का अन्त कर देता है। इन वस्त्रो के कारण पशुओ की ही नही, मनुष्यो की भी हिंसा होती है।

अब मैं अपनी मूल बात पर आता हू। ऊपर के

विवेचन से समझा जा सकता है कि जिसके हृदय मे मनुष्यो के प्रति दयाभाव होगा प्राय वह न हिंसा, करेगा न झूठ बोलेगा, न चोरी करेगा, न परस्त्रीगमन करेगा और न अनुचित सग्रह ही करेगा। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश आदि मानसिक विकारों की उत्पत्ति प्रायः मनुष्य के प्रति ही होती है। हृदय मे मानव-दया उत्पन्न होने पर इन सब विकारो पर तुषारपात हो जाता है और जो इन सब पापो एव विकारो से बच जायगा, स्वाभाविक है कि वह परमात्मा के निकट पहुचेगा। इसलिए मै कहता हूं कि इन पापो का परित्याग करो। अगर यकायक पूर्ण रूप से त्याग नही कर सकते तो धीरे-धीरे करो। पापों के परित्याग के पथ पर एक कदम भी जो चलेगा और उसी पथ पर आगे बढ चलने की भावना रक्खेगा वह एक दिन अपनी मजिल पूरी कर लेगा। मगर ऐसे काम तो सर्व-प्रथम त्यागने योग्य हैं जिनसे मनुष्यो का घात होता हो। ऐसा मत करो कि पराया भोजन छीनकर आप मौज करें और वह बेचारा भूखा मरे। ज्यादा कुछ न कर सको तो कम से कम परोपकार को तो पाप मत मानो ! आवश्यकता से अधिक सग्रह तो न करो। इस बात को मत भूलो कि अन्तत धन-दौलत काम नही आयगी। शास्त्र में कहा है—

वित्तेण ताण न लभे पमत्ते।

अर्थात्—प्रमादशील पुरुष धन-दौलत के द्वारा अपना बचाव नही कर सकता।

मत भूलो कि आज जो लखपती है, वही कल कगाल हो जाता है। फिर परोपकार करने मे क्यो कृपण बनते हो ? कृपणता करके बचाया हुआ धन साथ नहीं जायगा,

किन्तु कृपणता के द्वारा लगने वाला पाप साथ जायगा। यह जानते हुए भी लोग जब खर्च मे कमी करना चाहते है तो सबसे पहले परोपकार के ही काम बन्द करते हैं।

मित्रो! यह परमात्माप्राप्ति का मार्ग नही है। उदार हृदय से, शुद्ध बुद्धि से और निर्मल मस्तिष्क से परमात्मा के आदेशो को समझो और पालन करो। ऐसा करने से आप परमात्मा के ही समान बन जाएंगे।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

तीनो लोको मे अद्वितीय सुन्दर प्रभो ! जिन शान्त और सुन्दर परमाणुओ के द्वारा आपका निर्माण हुआ है, जान पडता है कि पृथ्वी पर वे परमाणु उतने ही थे ; क्योकि तुम्हारे समान दूसरा कोई रूप नही है ।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

अर्थ--प्रभो ! सुर, नर और नागकुमारो के नेत्रों को हरण करने वाला और तीन लोक की समस्त उपमाओं को जीतने वाला कहाँ तो आपका मुख और कहाँ कलक से मलीन चन्द्रमा का विम्ब ! चन्द्रमा का विम्ब तो दिन मे ढाक के सूखे पत्ते के समान फीका पड जाता है ! उसके साथ आपके मुख की तुलना नही की जा सकती ।

आचार्य मानतुगजी ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुति

करते हुए यहाँ उनके शरीर सौन्दर्य का आलकारिक वर्णन किया है। कहा गया है कि भगवान् का रूप, जिसे देख-चण्डकौशिक जैसे क्रूर प्राणियो को भी शान्ति मिली है, ऐसे पुद्गल–परमाणुओ से बना है जो तीन लोक मे सर्वश्रेष्ठ थे। मैं अनुमान करता हू कि जिन परमाणुओ से तेरा शरीर बना है वे परमाणु ससार भर मे उतने ही थे। उनसे अधिक नही थे। अधिक होते तो तेरे शरीर के समान कोई दूसरा शरीर भी बना होता। लेकिन तेरे शरीर के समान शातिमय और सुन्दर शरीर दूसरा नही है। इस कारण यही अनुमान होता है कि जितने श्रेष्ठ परमाणु तेरे शरीर मे लगे हैं, उतने ही ससार मे थे।

यह परमात्मा की स्तुति है। स्तुति वह है जिसके उच्चारण से आत्मा की परमात्मा के प्रति प्रीति जागृत होकर बँध जाय। आज जो स्तुति की गई है उसमे बत-लाया गया है कि कहाँ तो आप[illegible]ा वह सुर–नर उरग के नेत्रो को हरण करने वाला और देखने पर भी तृप्ति न हो ऐसा, ससार को आनन्द देने वाला मुख और कहाँ चन्द्रमण्डल ! ससार की किसी भी श्रेष्ठ और सुन्दर वस्तु से आपके मुख की उपमा दी जाय किन्तु वह उपमा ठीक नही बैठती। आपका मुख सभी उपमाओ को जीत चुका है। ससार की कोई भी वस्तु आपके मुख की समानता नही कर सकती।

कहा जा सकता है कि चन्द्रमा सौम्य, शीतल और आह्लादजनक है, फिर भगवान् के मुख के साथ उसकी तुलना क्यो नही की जा सकती ? लेकिन आचार्य मानतुग चन्द्रमण्डल को घृणापूर्वक देखकर कहते हैं कि यह चन्द्र–

विम्व तो स्पष्ट ही कलक से मलीन हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा की काति तभी तक रहती है जब तक सूर्य का उदय नही होता। सूर्य का उदय होते ही वह सूखे पत्ते के समान कान्तिहीन फीका पड जाता है। चन्द्रमा को राहु भी ग्रस लेता है। इस प्रकार कहाँ तो इस स्थिति मे रहने वाला चन्द्रमा का विम्व और कहाँ भगवान् का मुख-मण्डल ! यह मुखमण्डल जो सुर–नर और उरग के नेत्रो को भी हरण करने वाला है। इसलिए प्रभो ! आपके मुख के सामने तीनो भुवन के पदार्थ तुच्छ दिखाई देते हैं और आपका मुख अनुपम है, अद्वितीय सौन्दर्य से युक्त है।

इस भक्तामरस्तोत्र के द्वारा परमात्मा से भेट करना सभी को इष्ट है। इस स्तोत्र को दिगम्बर, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक सभी मानते है। सभी परम प्रीति के साथ इसका पाठ करके शातिलाभ करना चाहते हैं। अतएव इसके भावो को ध्यानपूर्वक समझना चाहिए।

आचार्य ने यहाँ जो कुछ कहा है, यदि वह सत्य है तो उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। आज हमे स्थूल दृष्टि से परमात्मा के दर्शन नही हो सकते, फिर भी चन्द्र-मण्डल तो दिखाई देता ही है। वैज्ञानिको ने सर्चलाइट आदि नाना प्रकार के प्रकाशो का आविष्कार किया है लेकिन चन्द्रमा की समता करने वाला एक भी प्रकाश वे नही बना सके हैं। इस पर से हे मनुष्य ! तू अपनी अपूर्णता और अशक्ति का विचार कर। अपनी शक्ति पर गर्व मत कर। सच तो यह है कि जहाँ सूर्य और चन्द्रमा विद्यमान है वहाँ दूसरे प्रकाश की आवश्यकता ही नही है। कोई कितना ही प्रयत्न करे लेकिन चन्द्रमा और सूर्य के

समान प्रकाश नही बन सकता । यह विचार कर खटपट मे पडने की आवश्यकता नही थी लेकिन मनुष्य गजब का प्राणी है । उसमे ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है। अतएव वह प्रकृति से भी लडाई कर रहा है । मनुष्य प्रकृति से भी लडाई कर रहा है । मनुष्य प्रकृति पर विजय पाना चाहता है और प्रकृति को नीचा दिखाना चाहता है ।

प्रकृति से लडाई करने वालो को सोचना चाहिए कि मैंने विज्ञान के द्वारा जो वस्तुए बनाई हैं, उनसे पहले की वस्तुओं का विकास हुआ है या विनाश हुआ है ? कल्पना कीजिए, किसी के घर मे बिजली का सुन्दर प्रकाश हो परन्तु घर मे कोई बीमार पडा हो । एक ओर बीमारी बढती जाय और दूसरी ओर बिजली का प्रकाश बढता जाय । ऐसी स्थिति मे प्रकाश का बढना किस काम का ? अगर बिजली का प्रकाश न हो और सूर्य-चन्द्र की किरणो से ही शान्ति पहुचती हो तो समझना चाहिए कि हमे किसी की ओर से यह सकेत मिल रहा है कि तुम्हे प्रकृति के ही भरोसे रहना चाहिए । प्रकृति के विरुद्ध आचरण करने से विकृति बढेगी ।

आपके पूर्वजो के सामने बिजली का प्रकाश नही था । नकली घी और नकली आटा आदि भी नही था । लेकिन शारीरिक बल मे, बौद्धिक विकास मे और मानसिक चिन्तन में वे बडे थे या आप बडे है ?

'पूर्वज बडे थे ।'

उन्हे मोटर, बिजली, नकली घी आदि चीजे पसद ही नही थी । वे इन चीजो से घृणा करते थे और आप इनसे प्रेम करते है । आपने इन सब को अपनाया है सही,

पर इसका परिणाम क्या हुआ है ? यही कि पहले के लोगो को वृद्धावस्था मे भी चश्मे की आवश्यकता नही होती थी लेकिन आजकल के नवयुवको को भी चश्मा लगाना पडता है। इस अन्तर का क्या कारण है ? आज 'इलेक्ट्रिक लाइट' का आविष्कार हुआ तो नेत्रो का प्राकृतिक प्रकाश कहाँ विलीन हो गया ? पहले के लोग क्या आजकल की तरह दवाइयो का सेवन करते थे ? वे दही और बाजरे की रोटियाँ खाते थे, फिर भी उनमे जैसी शक्ति थी वैसी आप माल-मलीदा खाने वालो मे है ?

'नही।'

आप लोग प्रकृति से लडाई करके चाहे आगे बढने की आकाक्षा करे और चाहे 'वैज्ञानिक' नाम धराकर अभिमान करें लेकिन आप प्रकृति के विज्ञान का मुकाबिला नही कर सकते। जहाँ सूर्य का प्रकाश नही पहुचता वहाँ की हवा तो गन्दी होती सुनी जाती है लेकिन जहाँ बिजली का प्रकाश न हो वहाँ की हवा गन्दी होती सुनी है ?

'नही।'

इतना ही नही, वल्कि जहाँ बिजली का प्रचुर प्रचार है वहाँ की हवा गन्दी होती जाती है, ऐसा सुना गया है। नयी-नयी वस्तुएँ देखकर आपका मन फिसल जाता है और आप उन्हे अपनाने के लिए तैयार हो जाते है परन्तु यह क्यो नही देखते कि ये वस्तुएँ प्रकृतिप्रदत्त लाभो को बढाने वाली है या घटाने वाली ?

ससार मे अगर बिजली की रोशनी, बिजली के पखे, बिजली की सहायता से तैयार होने वाली दवाइयाँ न हो

तो मनुष्य की मूल प्रकृति को कोई हानि पहुंचने वाली नही है। यही नहीं, वरन् इनके अभाव मे मनुष्य ज्यादा सुखी, ज्यादा समृद्ध और ज्यादा सतुष्ट होगा। लेकिन अगर प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तुएँ न हो तो कैसी बीतेगी? अगर सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश न हो तो मनुष्यो की क्या स्थिति होगी? सुनते हैं, दक्षिणी ध्रुवप्रदेश की तलाश करने के लिए कई अग्रेजो ने जाने का साहस किया और वे कुछ दूरी तक गये भी, फिर भी उन्हे सफलता नही मिली। सूर्य का प्रकाश न मिलने के कारण उन्हे मृत्यु का आलिगन करना पडा। तात्पर्य यह है कि जहाँ नियमित रूप से सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश पहुचता है वही मनुष्य जीवित रह सकता है। जहाँ यह प्रकाश नही मिलेगा वहा मनुष्य लम्बे समय तक प्राण धारण नही किये रह सकता।

भगवान् ने इन्द्रियो का स्वरूप बतलाने के साथ ही उनके निग्रह का भी स्वरूप बतलाया है। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे भगवान् ने मुनि के लिए नाटक देखने का निषेध किया है पर कही सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश को भी देखने का निषेध किया है।

'नही!'

'क्यो?' क्योकि इसके विना काम नही चलता और इससे नेत्रो मे विकार भी उत्पन्न नही होता।

दुनिया का कोई भी धर्मशास्त्र प्रकृति की वातो को रोकने की हिमायत नही करता। सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश जीवन की अनिवार्य वस्तु है। उसके विना जीवन का निर्वाह सभव नही है। ऐसी दशा मे अगर कोई सूर्य-चन्द्र को देखने का निषेध करता है तो वह अज्ञानी ही

समझा जायगा । जो मनुष्य हठपूर्वक सूरज के प्रकाश से वचने की कोशिश करेगा उसका जीवन ही कठिन हो जायगा ।

भगवान् ने साधुओ को दीपक आदि के कृत्रिम प्रकाश के उपयोग की मनाई नही की है । अगर साधु दीपक के प्रकाश का उपयोग करे तो वह सयम से च्युत हो जाता है । लेकिन वह यदि सूर्य के प्रकाश का उपयोग न करे तो सयम का पालन नही हो सकता । सूर्य की साक्षी से हम लोग भोजन कर सकते है और सयम का परिपालन कर सकते है । सूर्य की साक्षी के अभाव मे साधु को भोजन करने का निपेध है ।

आपमे समभाव होता तो आप विजली की अपेक्षा सूर्य-चन्द्र से अधिक प्रसन्न होते । विजली, सूर्य और चन्द्र की तरह व्यापक नही है, जीवन के लिए अनिवार्य भी नही है और लाभदायक भी नही है, फिर भी आपको उसकी कीमत देनी पडती है, इसी कारण आप उसकी कद्र करते हे । सूर्य और चन्द्रमा की कीमत नही देनी पडती, इस कारण उसकी कद्र नही की जाती और न उसका उपकार ही माना जाता है ।

प्रकाश असल मे प्रकृति की देन है । उसे राजा अपनी मिल्कियत समझे, यह राजधर्म न जाने कहाँ से निकल पडा है ? राजा समाज की शक्ति के लिए होता है । अगर वह धीरे-धीरे सव आवश्यक वस्तुओ को अपने कव्जे मे कर ले और अपनी निजी चीज समझ कर मन-कर लगा दे तो ससार का काम किस प्रकार चलेगा ?

विशिप्ट पुण्य का उदय होने पर मनुप्य राजा वनता है। अतएव उसे प्रकृति के नियमो का विशिप्ट रूप से

पालन करना चाहिए । दूसरो की भूलो से उतनी हानि नही होती, जितनी राजा की भूल से ।

ईसाई लोगो की मान्यता के अनुसार राजा ईश्वर का भेजा हुआ होता है । ईश्वर के द्वारा भेजा हुआ पुरुष कोई भूल नही कर सकता । अतएव वह जो भी कुछ करता है, उचित ही करता है । मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है । मै आचार्य हू । अगर मै कहने लगू कि मुझे ईश्वर ने आचार्य बनाया है, इसलिए मै अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करूँगा और जो कुछ भी करूँगा वही उचित समझा जायगा । तो आप क्या कहेगे ? आप फौरन कहेगे कि ईश्वर ने नही, सघ ने आपको आचार्य बनाया है और सघ को अधिकार है कि वह शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने पर आचार्य को पदवी छीन ले । अगर कोई व्यक्ति अपराध करता है तो वह अपराध उसी व्यक्ति का समझा जाता है । लेकिन आचार्य के विषय मे यह बात नही है । आचार्य अपराध करे तो वह न सिर्फ आचार्य का ही किन्तु उस सघ का भी समझा जायगा, जिस सघ का वह आचार्य है । क्योकि सघ ने ही आचार्य को नियत किया है । यही बात राजा के विषय मे है । प्रकृति के नियमो का पालन करके सब को सुविधा पहुचाना राजा का धर्म है । इसके बदले वह प्रकृति का मालिक बन बैठे और कहने लगे कि मै जैसे पृथ्वीपति हू उसी प्रकार सूर्यपति, चन्द्रपति, जलपति और वायुपति भी हू, तो यह राजा का अन्याय समझा जायगा । राजा जीवन की सुविधाओ का स्वामी नही बन सकता और न उनसे किसी को वचित ही कर सकता है । अप्राकृतिक वस्तुओ का स्वामी बनकर उन पर भले ही वह

टैक्स लगा दे, पर प्राकृतिक वस्तुओं पर, जो जीवननिर्वाह के लिए अनिवार्य रूप से उपयोगी है, टैक्स लगाना उचित नही और न पूरी तरह शक्य ही है। विजली का टैक्स न चुकाने पर विजली रोकी जा सकती है, क्योंकि उसकी चाबी राजा के हाथ मे है। अगर वह सूर्य के प्रकाश पर या पवन पर कर लगा दे और प्रजा कर देना अस्वीकार कर दे तो राजा सूर्य या पवन को रोक देने मे समर्थ नही है। इनकी चाबी उसके हाथ मे नही है। यह बात दूसरी है कि प्रजा अपनी कमजोरी के कारण इन वस्तुओं का भी कर देती रहे। ऐसी निर्वीर्य प्रजा तो शायद श्वास लेने का भी कर देने को तैयार हो जाएगी।

मेरे कहने का आशय यह है कि प्राकृतिक पदार्थों मे जैसा सौन्दर्य होता है और वे जैसे लाभदायक होते हैं वैसे कृत्रिम पदार्थ नही हो सकते। सूर्य और चन्द्रमा निसर्ग के सर्वोत्तम उपहारो मे है। अतएव आचार्य मानतुंग ने चन्द्रमा के साथ भगवान् के मुख की तुलना की है। आचार्य का कथन है कि परमात्मा के मुख की समानता चन्द्रमा भी नही कर सकता। चन्द्रमा, सूर्य का उदय होने पर पीले पत्ते के समान निस्तेज और फीका पड जाता है। अतएव उससे भगवान् के मुख की उपमा कैसे दी जाय! जब प्रकृति-रानी का सर्वोत्तम शृंगार चन्द्रमा भी भगवान् के मुख के सामने नगण्य है तो मनुष्य के दिमाग से उपजने वाला कोई भी कृत्रिम पदार्थ उसकी वरावरी कैसे कर सकता है?

भगवान् का स्वरूप कितना सुन्दर और मनोरम है, यह वात इस काव्य से भलीभाँति मालूम हो जाती है।

उस सौन्दर्य को परखने के लिए दृष्टि निर्मल होनी चाहिए। निर्मल दृष्टि से और साथ ही स्वच्छ अन्त करण से अगर आप परमात्मा के स्वरूप पर विचार करेंगे तो ससार के पदार्थ आप को निस्सार प्रतीत हुए बिना नही रह सकते। इसलिए मेरा कथन है कि पक्षपात की दृष्टि दूर करके ईश्वरीय प्रेम को अपनाओ। ईश्वरीय प्रेम को अपनाने के लिए चार उपाय हैं और वे कामधेनु के समान हैं। इनमे पहली मैत्रीभावना दूसरी प्रमोदभावना, तीसरी करुणा-भावना और चौथी मध्यस्थभावना है।

मैत्रीभावना का अर्थ चूरमा खाने–खिलाने वाले मित्र बनाना नही है। ससार मे ऐसे भी मित्र होते है जिसके विषय मे यह कहा गया है कि—

> **आओ मियाजी खाना खाओ,**
> **करो विसमिल्ला हाथ धुलाओ।**
> **आओ मियांजी छप्पर उठाओ,**
> **हम बुड्ढे कोई ज्वान बुलाओ॥**

इस प्रकार की मित्रता वास्तविक मित्रता नही है। मित्रता सूर्य के प्रकाश के समान होती है। सूर्य समान रूप से समस्त ससार को प्रकाश देता है। किसी को कम और किसी को अधिक नही देता। या किसी को प्रकाश दे और किसी को न दे, ऐसा भी नही करता। इसी प्रकार मनुष्य के हृदयरूपी आकाश मे जब मैत्रीभाव का सूर्य उदित होता है तो उसका प्रकाश प्राणीमात्र को समान रूप से मिलता है। जिसका अन्त करण मैत्रीभावना से उज्ज्वल हो जाता है, वह प्रत्येक प्राणी को अपना मित्र समझता है। किसी के प्रति उसके चित्त मे दुर्भावना नही

आत्मा को शुद्ध करने के लिए ही देगा ।

दूसरी प्रमोदभावना है । यह भावना सदा गुणीजनो का ध्यान कराती है । एक आदमी शत्रु है मगर मुनि बन गया है और दूसरा मित्र है मगर पतित हो गया है । प्रमोदभावना वाला पुरुष इन दोनो मे से गुणी को ही अपनाएगा, गुणी का ही आदर करेगा । घर मे भी गुण के आदर की आवश्यकता है, केवल हड्डियो के आदर की नही । भाई का लडका गुणी है फिर भी उसे पराया मानो और उसका आदर न करो और अपने निर्गुण लडके का भी आदर करो और उसे अपना मानो, यह प्रमोदभावना के विरुद्ध है । प्रमोदभावना का विकास करके गुणी की पूजा-सेवा की वृद्धि करो तो आप स्वय गुणमय बन जाएँगे और आपको प्रमोद की प्राप्ति होगी । अतएव गुणीजनो का सत्कार करो, उनके गुणो को अपनाओ । अगर उनमे कोई त्रुटि दिखती हो तो उनका अनुसरण मत करो ।

कहा जा सकता है कि यह परस्पर विरोधी उपदेश है । एक ओर प्राणीमात्र पर मैत्रीभावना रखने का उपदेश दिया जाता है और दूसरी ओर गुणीजनों के आदर का उपदेश दिया जाता है । यह दोनो उपदेश कैसे सगत हो सकते है ?

गाय के चार पैर और चार ही स्तन होते है । गाय लगडी हो तो उसके स्तनो मे भी त्रुटि हो जायगी । अतएव लगड़ी गाय उतने काम की नही होती । इसीलिए करुणा भावना कही है । जिसमे गुण न हो उसके प्रति करुणा भावना धारण करो । किसी को दु खी मत करो और कोई दु खी दिखाई दे तो उस पर करुणा भाव लाओ ।

करुणा इतनी उदार होती है कि वह गुण-अवगुण नही देखती। गुणी की पूजा होती है और दुखी पर करुणा की जाती है। मुनि को आहार दिया जाता है सो करुणा से नही वरन् गुणपूजा के भाव से दिया जाता है। गुणपूजा ही मुनि को वदना करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार प्रमोदभावना गुणीजनो के प्रति और करुणा भावना दीन-दुखियो के प्रति धारण की जाती है।

भगवान् ऋषभदेव ने मनुष्यो को दुखी देखकर ही इस स्थिति पर पहुचाया था; कहा जा सकता है कि इस स्थिति पर पहुचाने से तो आरभ-समारभ बढ गया, परन्तु करुणा मे डूबा हुआ आरभ-समारभ या भूत-भविष्य के विचार से अपने कर्त्तव्य का परित्याग नही करता और न अपनी मर्यादा का ही लोप करता है। वह पराये दुख को भी अपना ही दुख मानता है और जब तक उसे दूर नही कर देता तब तक चैन नही लेता। ऐसी भावना वाला सब का मित्र बन सकता है। हाँ जिसके दिल मे यह विचार होगा कि अमुक की दया करूँ और अमुक की नही, वह पक्षपाती है। करुणा सर्वभूती होती चाहिए।

कल्पना करो कि आपके शत्रु का लडका और आपका लडका-दोनो साथ-साथ खेल रहे है। शत्रु का लडका किसी गाडी की टक्कर लगने से गिर पडा। ऐसे समय पर आप क्या करेंगे ? अगर आपके हृदय मे करुणाभाव है तो आप उस समय वैर का विचार नही करेंगे। अगर दोनो लडके गिर पडे हो और अपना लडका दूर तथा शत्रु का लडका पास हो तो करुणाभाव वाला मनुष्य पहले शत्रु के लडके को ही उठायेगा। अगर वह पास मे पडे हुए

हो सकती । इस प्रकार मैत्रीभावना की आराधना के लिए आपको प्राणीमात्र का मित्र बनना चाहिए ।

प्रश्न हो सकता है कि गृहस्थ सब प्राणियो का मित्र कैसे बन सकता है ? उसे लेन-देन करना पड़ता है, कहना-सुनना पडता है और पचासो काम करने पडते है, जिससे प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभावना मे बाधा पडती है । ऐसी स्थिति मे मैत्रीभावना की बात साधुओ को भले ही उपयोगी हो, गृहस्थो के लिए वह उपयोगी नही हो सकती ।

इस तरह का विचार भ्रमपूर्ण है । गृहस्थ अगर मैत्रीभावना को धारण नही कर सकता तो इसके मायने यह हुए कि वह धर्म का ही पालन नही कर सकता । क्या धर्म इतना सकीर्ण है कि सर्वसाधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते ? नही, ऐसा नही है । धर्म का प्रागण बहुत विशाल है । उसमे सभी के लिए स्थान है । अगर गृहस्थ समझदारी से काम ले तो मैत्रीभावना की आराधना उसके लिए कठिन नही है । गृहस्थ को गृहस्थ की भाँति, साधु को साधु के समान और वीतराग को वीतराग की तरह मैत्रीभावना रखनी होती है ।

राजा राज्य करते हुए भी मैत्रीभावना का पालन कर सकता है । कहा जा सकता है कि राजा किसी को फाँसी देता है और किसी को जागीर देता है । तब उसमे मैत्रीभावना कहाँ रही ? लेकिन राजा फाँसी देते और जागीर देते समय यह समझता है कि कि मै प्रजा का मित्र हू, प्रजा की सेवा करना, रक्षा करना और इस प्रकार अपने राजधर्म का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है । मै किसी को दण्ड देता हू और किसी का सत्कार करता हू,

मगर यह सब मित्र बनकर ही करता हू, शत्रु बनकर नही। किसी के प्रति मेरे अन्त करण मे पक्षपात नही है, शत्रुता नही है, द्वेषभाव नही है। फिर ऐसा कौन–सा पुण्यमय दिवस होगा जब मै इस कर्त्तव्य का भी त्याग करके इससे भी बहुत ऊँची श्रेणी के कर्त्तव्य का पालन करने मे समर्थ हो सकूँगा। हे प्रभो ! मेरे हृदय मे ऐसा भाव भर दो कि मैं किसी के प्रति अन्याय न करूँ। राजसत्ता का मद मेरे मन को मलीन न होने दे। मैं प्रजा की सुख-शाति के लिए अपने स्वार्थों को त्यागने के लिए सदैव उद्यत रहू। इस प्रकार की निष्पक्ष और उदार भावना से जो राजा राज्य करेगा वह अवश्य ही मैत्रीभावना का अधिकारी हो सकता है।

माता अपने पुत्र पर मैत्रीभावना रखती है, फिर भी समय पर उसे दड देने से नही चूकती। उसकी दड देने की क्रिया मे पुत्र के कल्याण की ही भावना होती है। वास्तव मे चाहे कोई त्यागी हो या गृहस्थ हो, राजा हो या व्यापारी हो, किसान हो या सराफ हो, अगर उसके अन्त करण मे न्याय का भाव है, निष्पक्षता है और स्वार्थ-साधना के लिए दूसरो का अनिष्ट करने का इरादा नही है तो अवश्य ही वह मैत्रीभावना की आराधना कर सकता है। समाज रूप विराट पुरुप की सेवा का जो भी काम किसी ने अपने हाथ मे लिया हो, उसे प्रामाणिकतापूर्वक करने पर ही मैत्रीभावना होती है। जिसके हृदय मे मैत्री-भावना जागृत होगी वह किसी को धोखा नही देगा। वह किसी से ईर्षा-द्वेप नही रक्खेगा। सच्चाई और सरलता के साथ ही वह सबके प्रति वर्त्ताव करेगा। वह दड देगा तो

आत्मा को शुद्ध करने के लिए ही देगा ।

दूसरी प्रमोदभावना है । यह भावना सदा गुणीजनो का ध्यान कराती है । एक आदमी शत्रु है मगर मुनि बन गया है और दूसरा मित्र है मगर पतित हो गया है । प्रमोदभावना वाला पुरुष इन दोनो मे से गुणी को ही अपनाएगा, गुणी का ही आदर करेगा । घर मे भी गुण के आदर की आवश्यकता है, केवल हड्डियो के आदर की नही । भाई का लडका गुणी है फिर भी उसे पराया मानो और उसका आदर न करो और अपने निर्गुण लडके का भी आदर करो और उसे अपना मानो, यह प्रमोदभावना के विरुद्ध है । प्रमोदभावना का विकास करके गुणी की पूजा-सेवा की वृद्धि करो तो आप स्वय गुणमय बन जाएँगे और आपको प्रमोद की प्राप्ति होगी । अतएव गुणीजनो का सत्कार करो, उनके गुणो को अपनाओ । अगर उनमे कोई त्रुटि दिखती हो तो उनका अनुसरण मत करो ।

कहा जा सकता है कि यह परस्पर विरोधी उपदेश है । एक ओर प्राणीमात्र पर मैत्रीभावना रखने का उपदेश दिया जाता है और दूसरी ओर गुणीजनो के आदर का उपदेश दिया जाता है । यह दोनो उपदेश कैसे सगत हो सकते है ?

गाय के चार पैर और चार ही स्तन होते है । गाय लगडी हो तो उसके स्तनो मे भी त्रुटि हो जायगी । अतएव लगडी गाय उतने काम की नही होती । इसीलिए करुणा भावना कही है । जिसमे गुण न हो उसके प्रति करुणा भावना धारण करो । किसी को दुखी मत करो और कोई दुखी दिखाई दे तो उस पर करुणा भाव लाओ ।

लड़के की अपेक्षा करता है तो पक्षपात करता है ।

चौथी मध्यस्थभावना है । सारा ससार आपकी इच्छा के अनुसार कभी नही बन सकता । तीर्थंकरो के समय मे भी संसार एक-सा नही हुआ तो अब क्या होगा ? अतएव किसी को अपने से विरुद्ध मार्ग पर चलते देखो, कोई धर्म के मार्ग में काँटे बिखेरता दिखाई दे तो भी उस पर समभाव रखना चाहिए ।

इन चार भावनाओ का सेवन करने वाला भगवान् ऋषभदेव के पथ पर अग्रसर हो सकता है और अपने जीवन को धन्य बना सकता है । भगवान् की स्तुति करने के साथ उनके मार्ग पर चलने वाला ही कल्याण का भागी होता है ।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतम गणी ।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या जैनधर्मोऽस्तु मगलम् ॥